उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका – अप्रैल-जून, 2017 (संयुक्तांक) (पृष्ठ संख्या 153 – 300)

अप्रैल-जून, **2017** (संयुक्तांक)

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक
कमला कान्त

महत्वपूर्ण निर्णय

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – 100, 151 और आदेश 41 का नियम 27 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65] – द्वितीय अपील – अतिरिक्त साक्ष्य की ग्राह्यता – यदि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों से अपीली न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि समुचित निर्णय सुनाने के लिए अतिरिक्त साक्ष्य लिया जाना आवश्यक है तभी वह अतिरिक्त साक्ष्य ग्रहण कर सकता है अन्यथा नहीं ।

वेद प्रकाश बनाम **गोपाला और अन्य** 266

संसद् के अधिनियम

सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (33) – (63)

पृष्ठ संख्या 153 – 300 **(2017) 1 सि. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान भवन

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री विनोद कुमार आर्य,
संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री असलम खान और पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 36

वार्षिक : ₹ 135

© 2017 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अप्रैल-जून, 2017

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
दीना नाथ (मार्फत उसके विधिक प्रतिनिधि विशाल पुरी) **बनाम** मुन्नी लाल	210
बलजीत सिंह और अन्य **बनाम** जीवन सिंह (मृत) **मार्फत** उसके विधिक प्रतिनिधिगण	227
मांगी लाल **बनाम** सूरज मल	190
वेद प्रकाश **बनाम** गोपाला और अन्य	266
श्री धनी राम पुत्र श्री चौधरी राम **बनाम** श्री कृष्णा प्रसाद पुत्र श्री सत्य नारायण	248
संतोष पोपट चवन और अन्य **बनाम** श्रीमती सुलोचना राजीव और अन्य	153

संसद् के अधिनियम

सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	33 – 63

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 100 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 65] – द्वितीय अपील – प्रश्नगत सम्पत्ति में प्रतिकूल कब्जे के आधार पर हक का दावा करना – कब्जे का दावा, शान्तिपूर्ण, खुला, सार्वभौमिक, अनन्य, निर्बाधित और कानूनी अवधि 12 वर्ष से अधिक अवधि तक निरन्तर रहना साबित नहीं होना – प्रतिकूल कब्जे के आधार पर हक खारिज होना – यदि कोई व्यक्ति किसी प्रश्नगत संपत्ति में प्रतिकूल कब्जे के आधार पर हक प्राप्त करने का दावा करता है तो उसे यह साबित करना होगा कि वह प्रश्नगत संपत्ति में, शान्तिपूर्ण, खुला, सार्वभौमिक, अनन्य, निर्बाधित और कानूनी अवधि 12 वर्षों से अधिक समय से निरन्तर कब्जे में है अन्यथा प्रतिकूल कब्जे के आधार पर प्रश्नगत सम्पत्ति में उसका दावा कायम रखे जाने योग्य नहीं होगा ।

दीना नाथ (मार्फत उसके विधिक प्रतिनिधि विशाल पुरी) बनाम **मुन्नी लाल** 210

– धारा 100 [सपठित राजस्थान परिसर (किराया और बेदखली नियंत्रण) अधिनियम, 1950 की धारा 14(1)(ई)] – भू-स्वामी द्वारा किराएदार की बेदखली हेतु वाद – किराएदार द्वारा वाद संपत्ति को खाली न किया जाना – भू-स्वामी को विवादित परिसर की सद्भाविक आवश्यकता होना – जहां पर भू-स्वामी को अपने कुटुंब के लिए, किराए पर दिए गए परिसर की सद्भाविक आवश्यकता हो तो वह किराएदार से उक्त परिसर खाली करा सकता है और किराएदार को वह परिसर खाली करना पड़ेगा ।

मांगी लाल बनाम **सूरज मल** 190

पृष्ठ संख्या

– 100 [सपठित हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 की धारा 31] – यदि कोई अभिधारी अपने अभिधृति अधिकारों का त्यजन/अभ्यर्पण करना चाहता है तो वह राज्य के पक्ष में ही कर सकता है किसी अन्य अभिधारी के पक्ष में नहीं – यदि कोई अभिधारी किसी अन्य व्यक्ति/अभिधारी के पक्ष में अपने अभिधृति अधिकारों का त्यजन/अभ्यर्पण करता है तो वह अवैध, अकृत और शून्य होगा ।

वेद प्रकाश बनाम **गोपाला और अन्य** 266

– धारा 100, 11 तथा आदेश 2 का नियम 2 – पूर्ववर्ती वाद में विवादित रास्ते में बाधा पहुंचाने के बारे में विनिश्चय होना – लगभग 10 वर्ष पश्चात् विरोधी पक्षकार द्वारा विवादित रास्ते में पुनः बाधा पहुंचाया जाना – वादी द्वारा नया वाद फाइल करना – विरोधी पक्षकार द्वारा प्रांङ्-न्याय के आधार पर वाद का विरोध करना – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि वर्तमान वाद की विवाद्य विषयवस्तु पूर्ववर्ती वाद की विवाद्य विषयवस्तु से भिन्न है तो ऐसे मामले में प्रांङ्-न्याय का सिद्धांत लागू नहीं होगा और वादी नया वाद लाने के लिए स्वतंत्र होगा ।

बलजीत सिंह और अन्य बनाम **जीवन सिंह (मृत)** मार्फत **उसके विधिक प्रतिनिधिगण** 227

– 100, 151 और आदेश 41 का नियम 27 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65] – द्वितीय अपील – अतिरिक्त साक्ष्य की ग्राह्यता – यदि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों से अपीली न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि समुचित निर्णय सुनाने के लिए अतिरिक्त साक्ष्य लिया जाना आवश्यक है तभी वह अतिरिक्त साक्ष्य ग्रहण कर सकता है अन्यथा नहीं ।

वेद प्रकाश बनाम **गोपाला और अन्य** 266

पृष्ठ संख्या

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (1956 का 30)

– धारा 6 और 14 [सपठित निरसित हिन्दू स्त्री का संपत्ति का अधिकार अधिनियम, 1937 की धारा 3(3)] – हिन्दू अविभक्त कौटुम्बिक संपत्ति में विधवा द्वारा संपत्ति में अपने मृत पति के हिस्से के लिए वाद फाइल किया जाना – किसी अन्य सहदायिक द्वारा विभाजन की मांग न करने के आधार पर वाद का विरोध किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा वाद डिक्री किया जाना और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा डिक्री को कायम रखा जाना – द्वितीय अपील – अधिनियम के अधीन विधवा या माता को संपत्ति में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार दिए जाने पर यह नहीं कहा जा सकता है कि उसे विभाजन के लिए वाद फाइल करने का अधिकार नहीं है क्योंकि जहां अधिकार है वहां उपचार का होना भी आवश्यक है ।

संतोष पोपट चवन और अन्य बनाम **श्रीमती सुलोचना राजीव और अन्य** 153

हिमाचल प्रदेश शहरी किराया नियंत्रण अधिनियम, 1987

– धारा 14 और 24(5) – पुनरीक्षण आवेदन – मकान-मालिक की विवादित परिसरों का पुनर्निर्माण और पुनरोद्धार कराने की सद्भाविक आवश्यकता – किराएदार द्वारा विवादित परिसर खाली नहीं करना – बेदखली – किराएदार का पुनः प्रवेश करने का अधिकार – यदि यह साबित कर दिया जाता है कि विवादित परिसर के पुनर्निर्माण और पुनरोद्धार करने के लिए मकान-मालिक को विवादित परिसरों की सद्भाविक आवश्यकता है तो किराएदार को विवादित परिसर खाली करना पड़ेगा किन्तु विवादित परिसरों की पुनर्निर्माण और पुनरोद्धार करने के

पृष्ठ संख्या

पश्चात् किराएदार को उसमें पुनः प्रवेश करने का अधिकार होगा ।

श्री धनी राम पुत्र श्री चौधरी राम बनाम **श्री कृष्णा प्रसाद पुत्र श्री सत्य नारायण** 248

संतोष पोपट चवन और अन्य

बनाम

श्रीमती सुलोचना राजीव और अन्य

तारीख 12 दिसम्बर, 2014

न्यायमूर्ति ए. बी. चौधरी

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (1956 का 30) – धारा 6 और 14 [सपठित निरसित हिन्दू स्त्री का संपत्ति का अधिकार अधिनियम, 1937 की धारा 3(3)] – हिन्दू अविभक्त कौटुम्बिक संपत्ति में विधवा द्वारा संपत्ति में अपने मृत पति के हिस्से के लिए वाद फाइल किया जाना – किसी अन्य सहदायिक द्वारा विभाजन की मांग न करने के आधार पर वाद का विरोध किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा वाद डिक्री किया जाना और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा डिक्री को कायम रखा जाना – द्वितीय अपील – अधिनियम के अधीन विधवा या माता को संपत्ति में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार दिए जाने पर यह नहीं कहा जा सकता है कि उसे विभाजन के लिए वाद फाइल करने का अधिकार नहीं है क्योंकि जहां अधिकार है वहां उपचार का होना भी आवश्यक है ।

वर्तमान मामले मे, प्रत्यर्थी-वादी का पति घर छोड़कर चला गया था और दस वर्ष से अधिक का समय बीत जाने के पश्चात् भी उसे ढूंढा नहीं जा सका । वादी ने अपने पति की सिविल मृत्यु की घोषणा के लिए सिविल न्यायालय में वाद फाइल किया और सिविल मृत्यु की घोषणा की डिक्री प्राप्त होने के पश्चात् अविभक्त कौटुम्बिक संपत्ति में अपने मृत के हिस्से के लिए वाद फाइल किया । उसके मृत पति के भाइयों-प्रतिवादियों ने यह दलील देते हुए वाद का विरोध किया कि कुटुम्ब के किसी अन्य सहदायिक द्वारा विभाजन की मांग न करने के अभाव में विधवा को विभाजन के लिए वाद फाइल करने का अधिकार नहीं है । तथापि, विचारण न्यायालय द्वारा वादी के पक्ष में वाद डिक्री किया गया । प्रथम अपील न्यायालय द्वारा डिक्री को कायम रखा गया । प्रथम अपील न्यायालय के

निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में द्वितीय अपील फाइल की गई । इसके अतिरिक्त, एक अन्य मामले में निःसंतान विधवा ने पैतृक संपत्ति के विभाजन और अलग कब्जे के लिए सिविल वाद फाइल किया । वाद का इस आधार पर विरोध किया गया कि वादांतर्गत संपत्ति स्व-अर्जित संपत्ति है न कि पैतृक संपत्ति । विचारण न्यायालय ने वाद भागतः डिक्रीत किया और निचले अपील न्यायालय ने डिक्री की पुष्टि की । प्रतिवादियों ने व्यथित होकर दोनों निचले न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में द्वितीय अपील फाइल की । दोनों द्वितीय अपीलों में विधि का एक-समान प्रश्न अंतर्वलित होने के कारण इनकी एक साथ सुनवाई की गई । उच्च न्यायालय द्वारा दोनों द्वितीय अपीलों को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह सही है कि हिंदू स्त्री का संपत्ति का अधिकार अधिनियम, 1937 प्रवर्तन में आने से पूर्व हिन्दू विधवा के पास संपत्ति का आत्यंतिक अधिकार नहीं था । यहां तक कि माता भी, जिसके पास संपत्ति में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार तो था, किंतु विभाजन के लिए वाद फाइल करके इसे प्रवर्तित नहीं करा सकती थी और उसे पुत्र या पिता द्वारा कौटुम्बिक संपत्ति का विभाजन कराने का विनिश्चय करने तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी । अधिनियम, 1937 विधवा को संपत्ति में कुछ प्रवर्तनीय अधिकार देने के लिए प्रवर्तन में लाया गया था किन्तु तब इस अधिकार को एक सीमित अधिकार बनाया गया था और वह भी प्रतिवर्तन के अधीन रहते हुए था । दूसरे शब्दों में, विधवा को संपत्ति में अधिकार प्राप्त करने के लिए वाद फाइल करने का अधिकार तो दिया गया था, किन्तु सीमित सीमा तक अर्थात् उसकी मृत्यु के पश्चात् संपत्ति वापस कुटुम्ब को प्रतिवर्तित हो जाती और उसे संपत्ति का लेन-देन करने के लिए संपत्ति पर कोई अनन्य अधिकार नहीं था । तथापि, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम वर्ष 1956 में प्रवर्तन में लाया गया और स्त्री के अधिकार का उद्धार करने के लिए विधवा को उस सीमित अधिकार को हटाकर जो उसे दिया गया था, अनन्य अधिकार दिया गया और हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की अनुसूची के अनुसार विधवा श्रेणी-1 की वारिस है । अधिनियम, 1956 में उसे अविभक्त कौटुम्बिक संपत्ति में अपने पति के हिस्से का दावा करने का अधिकार दिया गया है । उसके पति की मृत्यु के कारण संपत्ति के प्रत्युद्धरण के अधिकार को अधिनियम, 1956 के अनुसार उसे दिए गए संपत्ति के अधिकार का अभिन्न भाग अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए, अन्यथा उसे अधिकार देने का विधान-मंडल का आशय ही निरर्थक और व्यर्थ हो जाएगा । एक और

विभेद है जो स्पष्ट है और इस तर्क का उत्तर है कि अधिनियम, 1956 में अधिनियम, 1937 की धारा 3(3) के समान स्त्री के पति की मृत्यु के पश्चात् अविभक्त हिन्दू कुटुम्ब की संपत्ति में पुत्र या किसी अन्य सहदायिक द्वारा विभाजन की मांग करने के अभाव में उसके द्वारा विभाजन के लिए वाद फाइल करने के अधिकार का उपबंध नहीं किया गया है । न्यायालय की राय में, यह तर्क भ्रामक है, क्योंकि धारा 3(3) में विभाजन के लिए वाद फाइल करने के अधिकार का इसलिए उपबंध किया गया था क्योंकि विधवा को गुजर-बसर तक करने के लिए भी अपने पति की संपत्ति प्राप्त करने का कतई कोई अधिकार नहीं था । उसकी गुजर-बसर हो और भरण-पोषण के लिए आय का कुछ स्रोत हो, इसीलिए इस बात को ध्यान में रखते हुए कि उसे उसका हिस्सा मिले, धारा 3(3) विरचित की गई थी किन्तु फिर भी हिन्दुओं की स्वीय विधि के निबंधनों के अनुसार उसे एक सीमित अधिकार दिया गया था । इसके विपरीत, अधिनियम, 1956 में विधवा को अपने मृत पति के हिस्से के लिए किसी निर्बंधन के बिना और अपने पति के हिस्से का अपनी इच्छानुसार व्यौहार करने के लिए पूर्ण अधिकार प्रदान किया गया है । स्त्री के उद्धार के इसी प्रगतिशील कारण से अधिनियम, 1956 लाया गया था । विधि सक्षम/समान अधिकार (सुई जूरिस/ऐक्वाली जूरा) : सुई जूरिस से अभिप्रेत है, "किसी व्यक्ति का अपना अधिकार" । जैसी कि पहले चर्चा की गई है, अधिनियम, 1956 के अनुसार, विधवा को अपने पति की मृत्यु के उपरान्त हिस्सा प्राप्त करने का जो अधिकार दिया गया है, वह अधिनियम, 1937 की धारा 3(3) के अनुसार सीमित प्रकृति का अधिकार था । इसलिए, वह विधि-सक्षम के रूप में कार्यवाही कर सकती है । इसके अतिरिक्त, अधिनियम, 1956 में उसे स्वतंत्रतापूर्वक वाद फाइल करने से प्रतिषिद्ध करने वाला कोई उपबंध नहीं है । इसलिए, विधि सक्षम होते हुए, यह अभिनिर्धारित करना आवश्यक है कि उसे स्वतंत्रतापूर्वक वाद फाइल करने का अधिकार है । न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि अधिनियम, 1956 के अधीन विधवा या माता या स्त्री को अधिकार दिए जाने पर यह नहीं कहा जा सकता है कि उसे यद्यपि हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार तो है, किन्तु वह अपने मृत पति के हिस्से के प्रत्युद्धरण के लिए वाद फाइल नहीं कर सकती है, क्योंकि उसे वाद फाइल करने का अधिकार नहीं है । जब एक अधिकार दिया गया है, तो वहां उपचार होना चाहिए अर्थात् विभाजन के लिए वाद फाइल करने का उपचार और यह उपचार अविभक्त कुटुम्ब की संपत्ति का कुटुम्ब के अन्य सहदायिकों की विभाजन की इच्छा और मांग पर निर्भर नहीं हो

सकता है । (पैरा 21, 22, 24, 25 और 27)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 3 एस. सी. सी. 495 : **मध्य प्रदेश ग्रामीण सड़क विकास प्राधिकरण और एक अन्य** बनाम **एल. जी. चौधरी इंजीनियर्स एण्ड कांट्रेक्टर्स** ;	28
[2002]	(2002) 6 एस. सी. सी. 16 = ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 2572 : **धन्ना लाल** बनाम **कलावती बाई और अन्य** ;	26
[1996]	(1996) 8 एस. सी. सी. 525 = ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 1697 : **सी. मसिलामणी मुदिलयार और अन्य** बनाम **आइडोल आफ श्री स्वामीनाथस्वामी स्वामीनाथस्वामी थिरुकायल और अन्य** ;	19
[1994]	(1994) 2 एस. सी. सी. 511 : **गुम्फा** बनाम **जयबाई** ;	19
[1991]	(1991) 4 एस. सी. सी. 312 : **थोटा शेषरथम्मा और एक अन्य** बनाम **थोटा माणिक्यम्मा (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत और अन्य** ;	18
[1986]	[1986] 4 उम. नि. प. 417 = (1986) 2 एस. सी. सी. 249 = ए. आई. आर. 1986 एस. सी. 859 : **आत्म प्रकाश** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य** ;	20
[1985]	[1985] 2 उम. नि. प. 1005 = (1985) 2 एस. सी. सी. 321 = ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 716 : **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **नारायण राव शाम राव देशमुख और अन्य** ;	16
[1974]	[1974] 2 उम. नि. प. 912 = (1974) 2 एस. सी. सी. 393 = ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 1126 : **श्रीमती गंगा बाई** बनाम **विजय कुमार और अन्य** ;	26

[1962] ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 83 :
जयश्री साहू बनाम **रायदिवान दूबे और अन्य ;** 28

[1954] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 575 :
छोटे खान, मृत उसके पुत्र हरमत की मार्फत और अन्य बनाम **मलखान और अन्य ।** 23

निर्दिष्ट निर्णय

[2012] (2012) 2 आल एम. आर. 737 = ए. आई. आर. 2012 बम्बई 101 :
सुश्री वैशाली सतीश बनाम **सतीश गनोरकर ;** 5

[1977] (1977) 3 एस. सी. सी. 99 = ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 1944 :
वी. तुलसम्मा और अन्य बनाम **वी. शेषा रेड्डी (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत ।** 10

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2013 की द्वितीय अपील सं. 119 और 405.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री सी. जी. गावनेकर और सतीश राउत

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री राजीव पाटिल, ज्येष्ठ अधिवक्ता, ओंकार वारंग, अनिल वी. अंतुरकर (न्यायमित्र), प्रथमेश भारगुडे, (सुश्री) कल्याणी तुलनकर और दोरमान दलाल, पी. एन. जोशी (न्यायमित्र), निखिल पुजारी, प्रतीक रहाडे और ऋतुराज भांकर

न्यायमूर्ति ए. बी. चौधरी – चूंकि इन दोनों अपीलों में सामान्य महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न अंतर्वलित है, इसलिए उन्हें विरोधी पक्षकारों की ओर से काउंसेलों की सहमति से और 2013 की द्वितीय अपील सं. 405 में तारीख 15 सितंबर, 2014 के आदेश अनुसार सुनवाई और

अंतिम रूप से निपटारे के लिए एक साथ लिया गया है ।

2. जब तारीख 15 सितंबर, 2014 का आदेश किया गया था, तब विद्वान् काउंसेल, श्री पी. एन. जोशी को न्यायमित्र के रूप में कार्य करने के लिए अनुरोध किया गया था । उसके पश्चात् इस न्यायालय के अनुरोध पर ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री अनिल वी. अंतुरकर, श्री राजीव पाटिल और अधिवक्ता श्री सी. जी. गावनेकर ने भी इस न्यायालय की सहायता करने के लिए सुनवाई में भाग लिया ।

तथ्य :

2013 की द्वितीय अपील सं. 119

3. इस अपील में प्रत्यर्थी-वादी सुलोचना विधवा राजीव **उर्फ** राजू चवन ने अपने मृत पति के भाइयों और बहिन के विरुद्ध सिविल न्यायाधीश ज्येष्ठ प्रभाग, पुणे के न्यायालय में विभाजन और स्थायी व्यादेश के लिए 2006 का सिविल वाद सं. 1773 फाइल किया । संक्षेप में, उसका पक्षकथन यह था कि उसका पति राजीव प्रतिवादी संतोष, मोहन, मधुकर और उनकी बहिन श्रीमती नंदा का भाई था और उसका वादांतर्गत संपत्ति, जो पैतृक संपत्ति है, में हिस्सा था । वादी का पति राजीव **उर्फ** राजू तारीख 28 मई, 1997 को सार्वे नगर, पुणे स्थित मकान से चला गया और कभी वापस नहीं आया । उसने मामले की पुलिस में रिपोर्ट की और पुलिस ने गुमशुदा प्रविष्टि सं. 116/1997 दर्ज की । सर्वत्र तलाश करने के बावजूद राजू को ढूंढा नहीं जा सका । चूंकि राजीव को गुम हुए पहले ही 10 वर्ष से अधिक का समय बीत गया था, इसलिए वह अविभाजित वादांतर्गत संपत्ति में दावा करने की हकदार थी, अतः उसने विभाजन और अलग कब्जे के लिए वाद फाइल किया । वादी ने अपने पति की सिविल मृत्यु के बारे में घोषणा की डिक्री के लिए 2006 का नियमित सिविल वाद सं. 1780 भी फाइल किया और तारीख 31 जुलाई, 2007 को उसे उक्त घोषणा प्राप्त हुई । साथ-ही-साथ, उसने विभाजन के लिए वर्तमान वाद भी फाइल किया ।

4. उसने अपने पति की सिविल मृत्यु की घोषणा के लिए उक्त डिक्री अभिप्राप्त करने के पश्चात् इस डिक्री को विभाजन के लिए वाद, 2006 का नियमित सिविल वाद सं. 1773 फाइल किया । विभाजन के लिए वाद का प्रतिवादियों द्वारा इस आधार पर विरोध किया गया कि वादी

को किसी हिस्से का दावा करने के लिए सिविल वाद फाइल करने का कोई अधिकार नहीं है । वादी के पास विभाजन के लिए वाद फाइल करने या अपने भगोड़े पति की संपत्ति में किसी हिस्से का दावा करने के लिए कोई वाद हेतुक नहीं है । मृत राजू सहित सभी भाई वादांतर्गत संपत्ति हरि बिनावत नामक व्यक्ति को तारीख 19 जनवरी, 2000 का विक्रय करार निष्पादित करके विक्रय करने के लिए सहमत हुए थे और जिसके लिए प्रतिवादियों ने अग्रिम धन प्राप्त किया था । इसलिए अपीलार्थियों ने यह कथन किया कि वाद को खारिज कर दिया जाना चाहिए ।

5. निचले अपील न्यायालय-जिला न्यायाधीश, पुणे ने दोनों अपीलों का विनिश्चय करते हुए विचारण न्यायालय के निर्णय, जहां तक इसका संबंध वादी द्वारा विभाजन के लिए मांग करने के अधिकार का था, को कायम रखा, किंतु **सुश्री वैशाली सतीश** बनाम **सतीश गनोरकर**[1] वाले मामले में के उस निर्णय का अवलंब लेते हुए कुछ सीमा तक डिक्री को उपांतरित कर दिया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उत्तराधिकार खुलने की तारीख सुसंगत तारीख है और यदि उत्तराधिकार संशोधित अधिनियम, 2005 के पूर्व खुला है तो संशोधित अधिनियम लागू नहीं होगा । निचले अपील न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी-प्रतिवादी सं. 4 श्रीमती नंदा, जो दनयानोबा की पुत्री है, का पहले ही विवाह हो गया था और तारीख 26 अक्तूबर, 1991 से अलग निवास कर रही है और इसलिए वह प्रचलित विधि के अनुसार सहदायिक नहीं है, अतः वह अपने भाइयों के साथ हिस्से का दावा केवल अपने पिता के हिस्से में से कर सकती है । असफल प्रतिवादियों ने दोनों निचले न्यायालयों के निर्णयों से व्यथित होकर यह द्वितीय अपील फाइल की है ।

2013 की द्वितीय अपील सं. 405

6. वादी-श्रीमती चंदा हनुमंत कारने, हनुमंत की निःसंतान विधवा ने वादांतर्गत पैतृक संपत्ति की बाबत विभाजन और अलग कब्जे के लिए सिविल न्यायाधीश कनिष्ठ प्रभाग, फल्तान के न्यायालय में 2007 का नियमित सिविल वाद सं. 8 फाइल किया । उसका पक्षकथन यह था कि प्रतिवादी सं. 1 उसका ससुर है जबकि अन्य प्रतिवादी उसके बालक हैं । मृत हनुमंत की तारीख 31 अक्तूबर, 2003 को मृत्यु हो गई थी और इस प्रकार वह

[1] (2012) 2 आल एम. आर. 737 = ए. आई. आर. 2012 बम्बई 101.

अकेली थी, प्रतिवादियों के अविभक्त कुटुम्ब के साथ रह रही थी और प्रतिवादियों के साथ कार्य रही थी किंतु वाद फाइल करने के 78 माह पूर्व उसे उसके पति के भाइयों द्वारा सोनवाड़ी स्थित मकान से निकाल दिया गया । इसलिए उसने विभाजन और कब्जे के लिए वाद फाइल किया, क्योंकि प्रतिवादियों ने उसे वादांतर्गत संपत्ति में कोई हिस्सा देने से इनकार कर दिया ।

7. प्रतिवादियों द्वारा वाद का इस आधार पर विरोध किया गया कि यह पोषणीय नहीं है क्योंकि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (जिसे इसमें आगे संक्षेप में "अधिनियम, 1956" कहा गया है) के अधीन वाद फाइल करने हेतु विधवा के लिए कोई सामर्थ्यकारी उपबंध नहीं है । वास्तव में, ऐसा उपबंध हिंदू स्त्री का संपत्ति का अधिकार अधिनियम, 1937 (जिसे इसमें आगे संक्षेप में "अधिनियम, 1937" कहा गया है) की धारा 3(3) के अधीन विद्यमान था । वाद का इस आधार पर विरोध किया गया कि संपत्ति स्व-अर्जित संपत्ति है, न कि अविभक्त कुटुम्ब की संपत्ति और विभाजन के लिए दायी नहीं है । विचारण न्यायालय ने वाद भागतः डिक्रीत किया और निचले अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री की पुष्टि की और वाद के पक्षकारों के हिस्सों की सीमा तक डिक्री को उपांतरित किया । इसलिए यह द्वितीय अपील फाइल की गई है ।

तर्क :

8. इन दोनों द्वितीय अपीलों में अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री सी. जी. गावनेकर और श्री सतीश राउत ने निम्नलिखित दलीलें दी :–

(i) आनंद कृष्ण ताते, मृत, विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत **बनाम** द्रौपदी बाई कृष्ण ताते और अन्य [(2010) 1 बी. सी. जे. 714 = ए. आई. आर. 2010 बम्बई 83] वाले मामले में इस न्यायालय के एक विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह दृष्टिकोण अपनाया है कि हिंदू स्त्री को (उस मामले में माता) अधिनियम, 1956 के उपबंधों के अधीन विभाजन के लिए वाद फाइल करने का कोई अधिकार नहीं है, जो कि पहले अधिनियम, 1937 की धारा 3(3) के अधीन उपलब्ध था । अविभक्त कुटुम्ब के लिए अविभक्त कुटुम्ब में किसी अन्य सहदायिक द्वारा संपत्ति के विभाजन की मांग करने के अभाव में उसका वाद स्वयमेव पोषणीय नहीं था । निचले न्यायालयों में से किसी ने भी विद्वान् एकल न्यायाधीश के उक्त निर्णय पर ध्यान नहीं दिया और इसलिए वाद खारिज कर दिए जाने

चाहिएं थे, क्योंकि स्वीकृततः, कुटुम्ब में किसी भी सहदायिक ने किसी विभाजन की मांग नहीं की थी और इन दोनों द्वितीय अपीलों में विधवाओं ने पहल की और वाद फाइल करने के लिए किसी सामर्थ्यकारी उपबंध के अभाव में वाद फाइल किए ।

(ii) 2013 की द्वितीय अपील सं. 119 में वादी-सुलोचना ने वर्ष 2006 में विभाजन के लिए तब वाद फाइल किया था जब किसी सक्षम न्यायालय द्वारा उसके पति की सिविल मृत्यु के बारे में कोई घोषणा नहीं की गई थी और जिसके लिए उसने पहले ही 2006 का वाद सं. 1780 फाइल किया हुआ था । उसे यह घोषणा केवल तारीख 31 जुलाई, 2007 को प्राप्त हुई थी और इसलिए विभाजन के लिए वर्ष 2006 में फाइल किया गया वाद अपरिपक्व और विधि के अनुसार अमान्य था । अतः वाद फाइल करने के लिए कोई वाद हेतुक नहीं था ।

(iii) **आनंद** (उपरोक्त) वाले मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा दिया गया निर्णय इस विषय में अपनाया गया सही दृष्टिकोण है, क्योंकि संसद् अधिनियम, 1937 की धारा 3(3) में विद्यमान तत्कालीन उपबंध के बारे में अभिज्ञ थी, किंतु फिर भी अधिनियम, 1956 में ऐसी प्रकृति का कोई उपबंध न करने का विनिश्चय किया, यद्यपि अधिनियम, 1937 निरसित हो गया था । अधिनियम, 1956 में किसी विधवा, माता या स्त्री के लिए वैसे ही उपचार का उपबंध किया हो जैसाकि अधिनियम, 1937 की धारा 3(3) द्वारा किसी विधवा, माता या स्त्री को किसी अन्य सहदायिक के बिना संपत्ति के विभाजन की मांग करने के लिए समर्थ बनाते हुए स्वयमेव ही वाद फाइल करने का उपबंध किया गया था ।

(iv) हिंदुओं की स्वीय विधियों को अनुच्छेद 14 या किन्हीं सांविधानिक उपबंधों की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता है, चूंकि हिंदुओं की स्वीय विधियां सांविधानिक उपबंधों, जिनमें मूल अधिकार भी हैं, के अध्यधीन नहीं हैं या उनकी व्याप्ति के बाहर हैं ।

(v) प्राचीन हिंदू विधि के अनुसार सहदायिक और अविभक्त कुटुम्ब की अवधारणा सुभिन्न और स्पष्ट है तथा केवल पुरुष ही कुटुम्ब का सहदायिक बन सकता था और कुटुम्ब में महिलाओं को सहदायिकों के रूप में कभी मान्यता नहीं दी गई । यह अलग बात है कि हाल ही में वर्ष 2005 में या तो राज्य विधान-मंडल द्वारा या संसद् द्वारा पुत्रियों को पुत्रों जैसी एक समान प्रास्थिति दी गई है । किंतु

फिर भी पुत्रियों को सहदायिकों के रूप दी गई प्रास्थिति या जन्म से अधिकार स्त्रियों के अन्य प्रवर्गों, जिनके अंतर्गत विधवा या माता भी हैं, तक विस्तारित नहीं किया जा सकता है, चूंकि संसद् का हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम का संशोधन करते हुए ऐसा विचार नहीं था ।

(vi) हिंदू विधि के अधीन, यह तर्क था कि एक स्त्री विवाह के पश्चात् ऐसे कुटुम्ब से आती है, जो अपरिचित होता है और यदि उसके पति की मृत्यु हो जाती है, तो उस स्त्री को कुटुम्ब की अविभक्तता नष्ट करने या संपत्ति के बारे में विवाद खड़ा करने के लिए तब तक अनुज्ञात नहीं किया जा सकता, जब तक कि कुटुम्ब में अन्य सहदायिक विभाजन के लिए मांग न करें । हिंदुओं की स्वीय विधि ऐसी होने पर किसी स्त्री को विभाजन के द्वारा अधिकार का दावा करने के लिए वाद दाखिल करने की अनुज्ञा देने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है ।

(vii) अधिनियम, 1937 के अधीन जो अधिकार दिया गया था वह केवल 'सीमित संपदा' के लिए था और सीमित संपदा से अधिक की ईप्सा नहीं की जा सकती थी और उसकी मृत्यु के पश्चात् इसका प्रत्यागम हो जाता था और अधिनियम की धारा 3(3) के अधीन स्त्री को दिया गया यह सीमित अधिकार भी घटता-बढ़ता रहता था और उसकी मृत्यु के पश्चात् समाप्त हो जाता था । इस प्रकार, स्त्री के जीवनयापन के लिए अधिनियम, 1937 की धारा 3(3) द्वारा सीमित अधिकार दिया गया था न कि अपने मृत पति की ही संपत्ति में कोई शाश्वत अधिकार सृजित करने के लिए ।

(viii) धारा 14, जो अधिनियम, 1956 में पुरःस्थापित की गई है, स्त्री को मात्र उस संपत्ति की बाबत अधिकार देती है, जो भरण-पोषण के बदले आत्यंतिक अधिकार के रूप में उसके कब्जे में रही हो, किंतु फिर भी धारा 14(1) के फलस्वरूप आत्यंतिक अधिकार प्रदान करने मात्र से अविभक्त कुटुम्ब की संपत्ति में विभाजन की मांग करने वाली स्त्री का स्वरूप ग्रहण नहीं कर लेती है ।

(ix) **आनंद** (उपरोक्त) वाले मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा दिया गया निर्णय अनवधानता के कारण दिया गया निर्णय नहीं है और यदि प्रतिकूल दृष्टिकोण अपनाया ही जाना है तो बृहत्तर न्यायपीठ के गठन के लिए निर्देश किया जाए या इस मुद्दे के साथ

छेड़छाड़ न की जाए ।

(x) अन्यथा भी, भारत के संविधान का अनुच्छेद 14 लागू नहीं होगा, चूंकि प्रत्येक महिला अपने पिता की पुत्री होने के कारण, अपने भाइयों के साथ बहिन के रूप में अपनी नातेदारी से अपने पिता की संपत्ति में, पुत्री को सहदायिक की प्रास्थिति प्रदान करने वाली संशोधनकारी विधि के अनुसार, स्पष्टतः हिस्सा प्राप्त होगा, और इसलिए भेदभाव का प्रश्न उद्भूत ही नहीं होता । अतः, श्री गावनेकर ने यह निवेदन किया कि अपील यह अभिनिर्धारित करते हुए मंजूर की जाए कि विधवा द्वारा फाइल किया गया वाद मान्य नहीं था ।

(xi) इसके बाद, श्री गावनेकर ने यह दलील दी कि वादी-सुलोचना विधवा राजीव **उर्फ** राजू चवन का पति तारीख 28 मई, 1997 से गुम हो गया था और सात वर्ष तारीख 28 मई, 2004 को व्यतीत होंगे तथा उसके द्वारा अपने पति की सिविल मृत्यु के बारे में घोषणा के लिए जो वाद फाइल किया गया था, वह 31 जुलाई, 2007 को डिक्रीत किया गया था, किंतु विधवा द्वारा वाद उक्त घोषणा प्राप्त करने से पहले ही वर्ष 2006 में फाइल किया गया था और इसलिए विधवा अर्थात् सुलोचना के पास वाद फाइल करने के लिए कोई वाद हेतुक नहीं था । अतः, इस आधार पर भी वाद ग्रहण नहीं किया जाना चाहिए था ।

9. इसके विपरीत, इस न्यायालय द्वारा नियुक्त किए गए विद्वान् न्यायमित्र, श्री जोशी ने यह दलील दी कि संसद् ने पुत्री को सहदायिक के रूप में प्रास्थिति प्रदान करते हुए हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम इस आधार पर संशोधित किया था कि स्त्री का सांविधानिक उपबंधों के अनुसार उन्नयन होना चाहिए । कोई कारण नहीं कि विधवा या माता को, जो पुत्री की तरह ही एक स्त्री है, अपने पति के हिस्से की संपत्ति लेने के लिए अपना अधिकार अभिप्राप्त करने के उपचार से क्यो वंचित किया जाए । अतः, श्री जोशी ने यह दलील दी कि स्त्री या विधवा या माता को वाद फाइल करने के लिए समर्थ बनाते हुए उसे ऐसा अधिकार अवश्य दिया जाना चाहिए, क्योंकि वादांतर्गत संपत्ति में उसके पति को देय हिस्सा प्राप्त करने के उसके अधिकार को केवल इस कारण विफल नहीं किया जा सकता है कि अन्य सहदायिकों ने विभाजन की मांग नहीं की है । तथापि, श्री जोशी ने यह दलील दी कि यह मुद्दा स्पष्ट रूप से न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आता है और इसलिए हिंदू उत्तराधिकार

अधिनियम में आवश्यक संशोधन के अभाव में विधवा के लिए उपचार उपलब्ध नहीं कराया जा सकता है । श्री जोशी ने अधिनियम की धारा 4(1)(क) के प्रति निर्देश करते हुए यह दलील दी कि असंगत विधियों का कोई प्रभाव नहीं है । उन्होंने रिहायशी मकान के संबंध में अधिनियम की धारा 23 और संसद् द्वारा संशोधन करके उसके लोप को भी निर्दिष्ट किया ।

10. प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्री पाटिल ने **वी. तुलसम्मा और अन्य** बनाम **वी. शेषा रेड्डी (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत**[1] वाले मामले में के विनिश्चय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी कि विधवा के अधिकार को यह अभिनिर्धारित करके निष्फल नहीं किया जाना चाहिए कि उसे विधि में कोई उपचार उपलब्ध नहीं है ।

11. न्यायालय की सहायता करने के लिए न्यायालय के अनुरोध पर न्यायमित्र के रूप में हाजिर होते हुए विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्री अंतुरकर ने निम्नलिखित दलीलें दी हैं :–

(i) **आनंद** (उपरोक्त) वाले मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा दिया गया निर्णय स्पष्ट तौर पर अनवधानता के कारण दिया गया निर्णय है और उसे अवश्य ही ऐसा अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए । बृहत्तर न्यायपीठ को निर्देश नहीं किया जाना चाहिए, चूंकि निर्णय अनवधानता के कारण दिया गया है ।

(ii) यह अभिनिर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है कि विधवा, माता या स्त्री को उसके पति की मृत्यु के पश्चात् अविभक्त कुटुम्ब के सदस्य के रूप में संपत्ति के प्रत्युद्धरण के लिए उपचार देने के लिए हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम में संशोधन किया जाना चाहिए । निस्संदेह, विधवा को संपत्ति का अधिकार उसके पति की मृत्यु के पश्चात् उसके अन्य भाइयों के समान प्रदान किया जाता है और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि विधवा द्वारा स्वयं अपनी प्रेरणा पर वाद फाइल करने की अनुज्ञा देकर उसे उक्त अधिकार का प्रयोग किए जाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए, चूंकि उस दशा में यह अधिकार स्वयमेव निष्फल हो जाएगा और संसद् का कभी ऐसा आशय नहीं था अर्थात् ऐसी संपत्ति के प्रत्युद्धरण के लिए अधिकार तो प्रदान करना किंतु उपचार नहीं ।

---

[1] (1977) 3 एस. सी. सी. 99 = ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 1944.

(iii) यूबी जस आईबी रिमेडियम अर्थात् जहां अधिकार है वहां उपचार है, का सिद्धांत यह अभिनिर्धारित करके लागू किया जाना चाहिए कि विधवा/स्त्री को अविभक्त कुटुम्ब में उसके पति को देय संपत्ति प्रत्युद्धरण करने हेतु विभाजन के लिए वाद फाइल करने का अधिकार इस तथ्य के होते हुए है कि अविभक्त कुटुम्ब में अन्य सहदायिकों की इच्छा नहीं है कि विभाजन हो । इसका कारण यह है कि विधवा को अपने पति के माध्यम से विधि द्वारा दिया गया यह स्वतंत्र अधिकार है कि वह अविभक्त कुटुम्ब की संपत्ति में अपने पति के हिस्से को प्राप्त करे ।

(iv) विधवा को अपने पति के माध्यम से संपत्ति में हिस्सा प्राप्त करने के अधिकार को यह काल्पनिक विभेद प्रदर्शित करके निरर्थक नहीं बनाया जा सकता है कि अधिनियम, 1956 में किसी विधवा, माता या किसी स्त्री को अपने मृत पति के हिस्से के विभाजन की ईप्सा करते हुए स्वयं अपनी प्रेरणा से या स्वतंत्रतापूर्वक न्यायालय में वाद फाइल करने के लिए सामर्थ्यकारी उपबंध उपबंधित नहीं है ।

(v) विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्री अंतुरकर ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 में विधवा या माता को अपने पति की संपत्ति में हिस्से के लिए स्वतंत्रतापूर्वक स्वयं अपनी प्रेरणा पर वाद फाइल करने के लिए मना करने वाला कोई प्रतिषेध नहीं है । अधिनियम, 1956 में केवल इस कारण ऐसा प्रतिषेध नहीं समझा जा सकता है कि अधिनियम, 1937 की धारा 3(3) के समान उपबंध अधिनियम, 1956 में नहीं लाया गया है ।

(vi) **आनन्द** (उपरोक्त) वाले मामले में निर्णय अनवधानता के कारण दिया गया है, चूंकि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उक्त प्रतिपादना के लिए गुरुपद खंडप्पा मगदुम **बनाम** हीराबाई खंडप्पा मगदुम और अन्य, ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1239 वाले मामले में के विनिश्चय का भी अवलंब लिया था, जबकि **गुरुपद** (उपरोक्त) वाले मामले में का विनिश्चयाधार वैसा नहीं है जो विद्वान् एकल न्यायाधीश ने समझा है और अभिनिर्धारित किया है । **गुरुपद** (उपरोक्त) वाला मामला काल्पनिक विभाजन या हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 के अधीन उपबंध के निर्वचन का मामला था और उक्त विनिश्चय उस बिन्दु पर नहीं है, जहां कोई विधवा संपत्ति के विभाजन के लिए स्वतंत्रतापूर्वक वाद फाइल कर सकती है । अतः, **आनन्द** (उपरोक्त)

वाले मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा लिए गए अवलंब का आधार ही दोषपूर्ण है और उक्त निर्णय को अनवधानता के कारण दिया गया अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए ।

उन्होंने इस पहलू पर आय-कर आयुक्त **बनाम** सन इंजीनियरिंग वर्क्स (प्रा.) लि. [(1992) 4 एस. सी. सी. 363 = ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 43] वाले मामले में के विनिश्चय का विशिष्ट रूप से पैरा 39 को उद्धृत किया ।

(vii) इसके पश्चात् श्री अंतुरकर ने यह दलील दी कि वाद फाइल करने का उपचार प्रदान करने के लिए किसी संशोधन की ईप्सा करने हेतु विधि आयोग को कोई सिफारिश करने का प्रश्न ही उद्भूत नहीं होता, क्योंकि उसकी आवश्यकता नहीं है । इसके विपरीत, उनके अनुसार, अपने पति की सम्पत्ति में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार अधिनियम, 1956 की विधि द्वारा प्रदान किया गया है और इसलिए अधिनियम, 1956 में स्वयं अपनी प्रेरणा पर वाद फाइल करने के लिए किसी प्रतिषेध के अभाव में यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि उसे साधारण सिविल अधिकारिता के अधीन साधारण सिविल उपचार उपलब्ध है ।

(viii) श्री अंतुरकर ने अधिनियम, 1937 की धारा 3(3) के अधीन स्कीम को प्रभेदित करते हुए यह दलील दी कि उक्त उपबंध इसलिए अंतःस्थापित किया गया था, क्योंकि स्त्री को अपने भरण-पोषण तक के लिए कोई संपत्ति प्राप्त करने का अधिकार नहीं था और भूखा मरने के लिए छोड़ दिया गया था, जबकि अधिनियम, 1956 के अधीन वह श्रेणी-I की उत्तराधिकारी के रूप में अपने मृत पति का समग्र रूप में हिस्सा प्राप्त करती है । इस स्पष्ट विभेद के होते हुए इस तथ्य को कोई महत्व देने का कोई औचित्य या कारण नहीं है कि अधिनियम, 1937 की धारा 3(3) जैसे उपबंध के समान उपबंध अधिनियम, 1956 में नहीं लाया गया है । धारा 3(3) में सीमित संपदा के लिए उपबंध किया गया था जो विधवा की मृत्यु के पश्चात् वापस प्रतिवर्तित हो जाती थी, किंतु उक्त अधिनियम, 1956 में ऐसी स्थिति नहीं है ।

(ix) इसके पश्चात् श्री अंतुरकर ने वर्ष, 1929 से लेकर हिन्दू स्वीय विधि के इतिहास और उच्चतम न्यायालय के विभिन्न निर्णयों सहित

सांविधानिक उपबंधों तथा स्त्रियों की प्रास्थिति के उन्नयन के लिए विधियों का उपबंध करने की राज्य की बाध्यता को निर्दिष्ट किया ।

(x) अंत में, श्री अंतुरकर ने यह दलील दी कि यह अभिनिर्धारित करना पूर्णतः अनुचित होगा कि विधवा को अविभक्त कुटुम्ब की संपत्ति में अपने पति का हिस्सा लेने का तो अधिकार है, किंतु अविभक्त कुटुम्ब के सदस्यों के विरुद्ध विभाजन के लिए वाद फाइल करके उसे हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार नहीं होगा और इसलिए, उनके अनुसार, इस न्यायालय को मामले में व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए ।

विचार :

12. मैंने विरोधी पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों के साथ-साथ कुछ तारीखों पर विद्वान् न्यायमित्र श्री पी. एन. जोशी और श्री अनिल अंतुरकर को सुना । मैंने अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री गावनेकर और श्री पाटिल को भी सावधानीपूर्वक सुना । मैंने संपूर्ण अभिलेख का परिशीलन किया । विरोधी पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुनने के पश्चात् निम्नलिखित सारवान् प्रश्न अवधारण के लिए उद्भूत हुए :–

"(i) क्या अपीलार्थी सुलोचना द्वारा विभाजन के लिए वर्ष, 2006 में फाइल किया गया वाद अर्थात् 2006 का नियमित सिविल वाद सं. 1773 समय पूर्व था, क्योंकि उसने वह वाद अपने पति राजीव की सिविल मृत्यु के बारे में घोषणा प्राप्त किए बिना फाइल किया था और इसलिए वाद में कोई वाद हेतुक नहीं था और खारिज किए जाने के लिए दायी था ?

उत्तर : नहीं ।

(ii) क्या 2006 के नियमित सिविल वाद सं. 1773 में वादी विधवा सुलोचना और 2007 के नियमित सिविल वाद सं. 8 में वादी श्रीमती चंदा प्रतिवादियों द्वारा **आनन्द** (उपरोक्त) वाले मामले के विनिश्चय के बहाने अपने-अपने पतियों के हिस्से के दावे की बाबत विभाजन और अलग कब्जे के लिए वाद फाइल कर सकती थी और यदि हां, तो क्या **आनन्द** (उपरोक्त) वाले मामले में पारिणामिक विनिश्चय अनवधानता के कारण दिया गया है ?

उत्तर : हां ।

(iii) क्या विधवा अपने पति की अविभक्त कुटुम्ब की पैतृक संपत्ति में अपने पति के हिस्से का दावा करने के लिए कुटुम्ब के अन्य सहदायिकों द्वारा अविभक्त कुटुम्ब की संपत्ति का विभाजन करने के विनिश्चय के अभाव में स्वयं अपनी प्रेरणा पर वाद फाइल कर सकती है ?

उत्तर : हां ।"

प्रश्न सं. 2 और 3 के विषय में :

13. **आनन्द** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश को यह विनिश्चय करना था कि "क्या माता को विभाजन और अलग कब्जे तथा पुत्रों द्वारा किए गए अन्यसंक्रामण को अपास्त करने के लिए वाद संस्थित करने का अधिकार है ?" उस मामले में तथ्य यह थे कि आनन्द की माता द्रोपदी बाई ने विभाजन और अलग कब्जे के लिए एक वाद संस्थित किया और अपने पुत्रों द्वारा किए गए अन्यसंक्रामण को अपास्त करने की भी प्रार्थना की । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"9. .... न तो पत्नी को और न ही माता को अन्यसंक्रामण को अपास्त करने के लिए वाद फाइल करने का अधिकार है, चूंकि उसे सहदायिकी संपत्ति में जन्म से ही अधिकार नहीं होता है । अविभक्त कुटुम्ब की संपत्ति में हिस्से का उसका अधिकार केवल तभी प्राप्त होता है जब सहदायिक अविभक्त कुटुम्ब की संपत्ति का विभाजन करने का विनिश्चय करें, अन्यथा वह अपने पुत्रों के साथ संयुक्त बने रहने के लिए आबद्ध है । अतः अन्यसंक्रामण को अपास्त करने के लिए माता की प्रेरणा पर फाइल किया गया यह वाद कायम रखने योग्य नहीं है ।"

आगे पैरा 10 में निम्न प्रकार से अभिनिर्धारित किया गया है :–

"10. अब मुझे तृतीय विधि के सारवान् प्रश्न पर विचार करना है । हिन्दू विधि के अधीन हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब का पुरुष सदस्य सहदायिक होता है । यद्यपि, महाराष्ट्र सरकार द्वारा हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में किए गए हाल ही के संशोधन द्वारा महिला को भी सहदायिक समझा जाएगा । हमें वर्ष 1978 की स्थिति पर विचार करना है जब वाद फाइल किया गया था । तथापि, वर्ष 1978 में

अविभक्त कुटुम्ब के केवल पुरुष सदस्य को ही सहदायिक के रूप में समझा जाता था । शास्त्रीय हिन्दू विधि के अधीन महिला को अविभक्त कुटुम्ब की संपत्ति के विभाजन का दावा करने का अधिकार नहीं है । मैं यहां हिन्दू विधि पर मुल्ला की 20वें संस्करण में की टिप्पणी को उद्धृत कर सकता हूं –

> 'माता तब तक विभाजन के लिए बाध्य नहीं कर सकती है जब तक पुत्र संयुक्त रहते हैं । तथापि, यदि पुत्रों के मध्य कोई विभाजन होता है, तो वह सहदायिकी संपत्ति में पुत्र के हिस्से के समान [सिवाय दक्षिण भारत (मद्रास राज्य) के] हिस्से की हकदार हैं । वह पुत्रों और हित के क्रेता के मध्य विभाजन पर भी समान हिस्से की हकदार है ।'

जहां अविवाहित पुत्र के विभाजन के लिए अपने दो भाइयों पर वाद चलाया, किन्तु वाद के लंबित रहने के दौरान उसकी मृत्यु हो गई और माता को विधिक प्रतिनिधि के रूप में लाया गया, तो उसे केवल मृत पुत्र के हिस्से का हकदार ठहराया गया, न कि माता के हिस्से का ।

अतः यह स्पष्ट है कि पुरानी हिन्दू विधि के अधीन माता के पास विभाजन के लिए बाध्य करने का अधिकार नहीं था ।"

उसी निर्णय के पैरा 13 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

"निस्संदेह, धारा 3 की उपधारा (3) में स्त्री को विभाजन कराने का अधिकार दिया गया है । तथापि, यह अधिनियम हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 द्वारा निरसित कर दिया गया है । कृष्ण की मृत्यु वर्ष 1959 में हुई थी । इसलिए वादी हिन्दू स्त्री का संपत्ति का अधिकार अधिनियम की धारा 3 का फायदा नहीं ले सकती है । हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के उपबंधों को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि इसमें हिन्दू स्त्री का संपत्ति का अधिकार अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3) के समान कोई उपबंध नहीं है । विधान-मंडल ने अपनी प्रज्ञा से यह उचित नहीं समझा कि इस अधिकार को स्त्री के पास जारी रखा जाए । यह दलील दी गई कि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 14 में स्त्री को संपत्ति का पूर्ण स्वामी बनाया गया है और इसलिए अवश्य यह उपधारणा की जानी चाहिए कि स्त्री को विभाजन की ईप्सा करने का अधिकार है । इस

> दलील में कोई बल नहीं है । धारा 14 में जो उपबंध किया गया है, उसमें स्त्री को वह संपत्ति आत्यंतिक रूप से अपने कब्जे में रखने का अधिकार प्रदत्त किया गया है, जो उसे अपने भरण-पोषण के अधिकार या पूर्व-विद्यमान अधिकार के बदले प्राप्त हुई है ।"

इसके पश्चात्, विद्वान् न्यायाधीश ने **आनन्द** (उपरोक्त) वाले मामले में निकाले गए निष्कर्ष का समर्थन करने के लिए **गुरुपद खंडप्पा मगदुम** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों का अवलंब लिया :–

> "वादी सहदायिक न होने कारण विभाजन की मांग करने की हकदार नहीं थी । यदि इन मताभिव्यक्तियों पर विचार किया जाए तो, मेरे विचार से, वादी को अविभक्त कुटुम्ब की संपत्ति के विभाजन का दावा करने का कतई अधिकार नहीं था । मैंने ए. आई. आर. 1975 बम्बई 1975 वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट नहीं किया है, चूंकि इस निर्णय को ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1239 वाले मामले में निर्दिष्ट किया गया है । यह वाद स्वतः भ्रामक है ।"

14. विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित कारणों के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि **गुरुपद** (उपरोक्त) वाले मामले का अवलंब लिया गया था । गुरुपद वाले मामले में के विनिश्चय के वाचन से और जो विद्वान् न्यायमित्र, श्री अंतुरकर द्वारा तर्क दिए गए हैं, उनसे यह प्रतीत होता है कि उक्त विनिश्चय का विनिश्चयाधार हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 के परन्तुक और स्पष्टीकरण-1, विशिष्ट रूप से कुटुम्ब में काल्पनिक विभाजन के प्रतिनिर्देश करते हुए, के निर्वचन और अवधारण के बारे में था । यह प्रश्न कि "क्या अधिनियम, 1956 के प्रवर्तन में आने के पश्चात् विधवा को वाद फाइल करने का अधिकार होगा", उच्चतम न्यायालय के विचार तक के लिए नहीं आया था और इसलिए, मेरी राय में, यह मामले का विनिश्चयाधार नहीं है ।

15. मेरी विनम्र राय में और विद्वान् एकल न्यायाधीश के प्रति सम्यक् आदर रखते हुए, **गुरुपद** (उपरोक्त) वाले मामले में के विनिश्चय के विनिश्चयाधार का सही तौर पर मूल्यांकन नहीं किया गया है । यहां, **आयकर आयुक्त** (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय की मताभिव्यक्तियों पर विचार करना सुसंगत होगा, जिसमें पैरा 39 में यह मत व्यक्त किया गया है :–

"39. ऐसे निर्वचन से उस निर्णय को पूर्णतः उस संदर्भ के बाहर जाकर पढ़ना होगा, जिस संदर्भ में उस मामले में प्रश्न विनिश्चय के लिए उद्भूत हुए थे । इस न्यायालय के निर्णय से विचाराधीन प्रश्न के संदर्भ को दरकिनार करके कोई शब्द या वाक्य चुनना और उसे इस न्यायालय द्वारा घोषित पूर्ण 'विधि' समझना न तो वांछनीय है और न ही अनुज्ञेय । निर्णय को सम्पूर्ण रूप से पढ़ा जाना चाहिए और निर्णय में की गई मताभिव्यक्तियों पर उन प्रश्नों के आलोक में विचार किया जाना चाहिए, जो इस न्यायालय के समक्ष थे । इस न्यायालय के विनिश्चय का स्वरूप उस मामले में अन्तर्वलित प्रश्नों से बनता है जिसमें यह सुनाया जाता है और उस विनिश्चय को किसी पश्चात्‌वर्ती मामले में लागू करते समय न्यायालयों को अवश्य सावधानीपूर्वक इस न्यायालय के विनिश्चय द्वारा अधिकथित शुद्ध सिद्धांत को अभिनिश्चित करने की कोशिश करनी चाहिए और इस न्यायालय द्वारा विचाराधीन प्रश्नों के संदर्भ को दरकिनार करके, अपनी तर्कणाओं का समर्थन करने के लिए, निर्णय से शब्द या वाक्य नहीं चुनने चाहिए । माधव राव जीवाजी राव सिंधिया बहादुर और अन्य **बनाम** भारत संघ (ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 300) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह चेतावनी दी –

> 'उच्चतम न्यायालय के किसी निर्णय में आने वाले किसी शब्द, खंड या वाक्य को, उसके संदर्भ से दरकिनार करके, उसे ऐसे प्रश्न पर विधि की पूर्ण व्याख्या वाला समझना उचित नहीं है, यहां तक कि जिसका उस निर्णय में उत्तर भी नहीं दिया जाना था ।'"

16. मेरी उपरोक्त मताभिव्यक्तियों की पुष्टि **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **नारायण राव शाम राव देशमुख और अन्य**[1] वाले मामले के पैरा 10 में की गई मताभिव्यक्तियों से होती है, जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने **गुरुपद** (उपरोक्त) वाले मामले पर विचार करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया है :–

"10. पूर्वोक्त विनिश्चय पर ध्यानपूर्वक विचार करने के पश्चात्, हम यह महसूस करते हैं कि यह मामला इस स्थिति के संबंध में एक नज़ीर माना जाना चाहिए कि अधिनियम की धारा 6 के अधीन

---

[1] [1985] 2 उम. नि. प. 1005 = (1985) 2 एस. सी. सी. 321.

कौटुम्बिक संपत्ति में विरासत से हित प्राप्त करने वाली कोई स्त्री जब कुटुम्ब से पृथक् होने की इच्छा व्यक्त करते हुए विभाजन का वाद फाइल करेगी तो वह उसे विरासत में मिलने वाले हित और काल्पनिक रूप से आबंटित किए जाने वाले हित को प्राप्त करने की हकदार होगी, जैसा कि अधिनियम की धारा 6 के स्पष्टीकरण-1 में उल्लिखित है । किन्तु यह मामला इस प्रतिपादना के लिए कोई नज़ीर नहीं हो सकता कि वह कुटुम्ब के किसी ऐसे पुरुष सदस्य की मृत्यु होने पर कुटुम्ब की सदस्य नहीं रहती, जिसका कौटुम्बिक संपत्ति में हित उसे उसकी कुटुम्ब से पृथक् होने की इच्छा के बिना न्यागत होता है । इसमें कोई संदेह नहीं है कि विधिक कल्पना साधारणतः युक्तियुक्त रूप से कार्यरूप में परिणत की जानी चाहिए ताकि उसकी अधिनियमिति के उद्देश्य की पूर्ति हो सके किन्तु उसे इस सीमा से आगे नहीं बढ़ाया जा सकता ।"

गुरुपद (उपरोक्त) वाले मामले में भी उच्चतम न्यायालय ने पैरा 14 में स्पष्ट रूप से निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

"14. .... स्पष्टीकरण-1 द्वारा सृजित कल्पना के प्रवर्तन को अपीलार्थी द्वारा सुझायी गई रीति से निर्बंधित करने का अर्थ यह होगा कि हम उस सामाजिक सुधार की स्थिति को पीछे की ओर लाकर जिसके द्वारा हिन्दू नारी को संपत्ति के मामलों में पुरुष के समान ही हैसियत अर्जित करने में समर्थ बनाया गया था, एक प्रतिगामी कदम उठा रहे हैं । यह उपधारणा करने पर भी कि स्पष्टीकरण-1 के दो निर्वचन युक्तियुक्त रूप से संभव है, हमें उसी निर्वचन को अधिमान देना होगा जो विधान-मंडल के आशय को अग्रसर करता हो और उस अन्याय को दूर करता हो जो कि हिन्दू नारियों ने कई वर्षों तक सहन किया है ।"

17. विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा **गुरुपद** (उपरोक्त) वाले मामले के विनिश्चय की ऊपर उद्धृत की गई जिस मताभिव्यक्ति का अवलंब लिया गया है, वह इतरोक्ति की कोटि में भी नहीं आ सकती है । यह सही है कि शास्त्रीय हिन्दू विधि के अधीन नारी को अविभक्त हिन्दू कौटुम्बिक संपत्ति के विभाजन का दावा करने का अधिकार नहीं था और पुत्रों के मध्य विभाजन होने पर केवल एक पुत्र के समान हिस्से की हकदार होती थी । यह भी सही है कि अधिनियम, 1937 की धारा 3(3) विधवा या स्त्री के

विभाजन की मांग करने का अधिकार देने के लिए अधिनियमित किया गया था, किन्तु यह अधिकार सीमित संपदा के लिए था । तथापि, अधिनियम, 1956, जिसने उत्तराधिकार के विषय में हिन्दू स्वीय विधि को तात्विक रूप से परिवर्तित किया है, के आगमन से विधवा को अनुसूची में उसके पति की श्रेणी-1 की वारिस का स्थान दिया गया है । दूसरे शब्दों में, अधिनियम, 1956 के अधीन विधवा अनुसूची में श्रेणी-1 की वारिस होने के फलस्वरूप वह कुटुम्ब की संयुक्त या पैतृक संपत्ति में अपने मृत पति के संपूर्ण हिस्से की उतनी मात्रा की उत्तराधिकारी होगी जितना हिस्सा उसके पति को मिलता, यदि वह जीवित होता । दूसरे शब्दों में, अपने पति की मृत्यु के पश्चात् कुटुम्ब के अन्य सहदायिकों की भांति संपदा प्राप्त करने के उसके अधिकार को अधिनियम, 1956 में पूर्ण रूप से मान्यता दी गई है और इसे स्वीकार किया गया है । सीमित अधिकार की धारणा या उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रतिवर्तन की धारणा भी अधिनियम, 1956 के अधिनियमन पर समाप्त हो गई है और परिणामस्वरूप वह अपने पति की संपत्ति का अपनी संपदा उसके पति के कुटुम्ब को प्रतिवर्तित होने के भय के बिना, व्यवहार कर सकती है । तथापि, अधिनियम, 1937 की धारा 3(3) द्वारा जो अधिकार दिया गया था, वह सीमित सीमा तक ही था, क्योंकि उसकी मृत्यु के पश्चात् संपत्ति उसके पति के कुटुम्ब को वापस प्रतिवर्तित हो जाती थी ।

18. सुसंगत इतिहास का पता लगाने के लिए **थोटा शेषरथम्मा और एक अन्य** बनाम **थोटा माणिक्यम्मा (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की** मार्फत **और अन्य**[1] वाले मामले के पैरा 15 और 17 में की गई निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों को उद्धृत करना उचित होगा, जिनमें उच्चतम न्यायालय ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि दी है । पैरा 15 और 17 इस प्रकार हैं :–

> "15. सर हेनरी मैंने ने अपनी 'अरलियर हिस्ट्री आफ इंस्टिट्यूट' के पृष्ठ 339 पर यह उल्लेख किया है कि 'किसी विशिष्ट राज्य या समुदाय में स्त्रियों की व्यक्तिगत उन्मुक्ति और सांपत्तिक हैसियत को जिस मात्रा में मान्यता दी जाती है, वह उसकी सभ्यता की अभिवृद्धि की मात्रा की कसौटी है । इसलिए, यह स्पष्ट है कि स्त्री को दिया जाने वाला सम्मान, समाज में उसके द्वारा धारित हैसियत और उसके साथ किया जाने वाला व्यवहार उस देश में प्राप्त

[1] (1991) 4 एस. सी. सी. 312.

सभ्यता और संस्कृति की मात्रा के सूचक समझे जाते हैं । मनु ने अपनी स्मृति में अध्याय 3 के श्लोक 55 से 57 में यह कहा है कि जहां स्त्रियों का सम्मान और पूजा की जाती है वहां देवता प्रसन्न रहते हैं, किन्तु जहां स्त्रियों का सम्मान नहीं किया जाता है, वहां पवित्र अग्नि से कोई लाभ नहीं मिलता । हिन्दू समाज में स्त्रियों की क्या हैसियत रही है यह बात इतिहास के पन्नों में दर्ज है जो वैदिक सभ्यता, स्मृतियों, शास्त्रीय विधि, कानूनी उपबंधों से प्रदर्शित होती है और अंततोगत्वा देश की उच्चतम विधि अर्थात् समतावादी, समाजवादी भारतीय संविधान में केन्द्रित और मान्यताप्राप्त है –

16. .... ।

17. वैदिक समाज में स्त्री की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से पुरुषों के समान हैसियत थी (अल्ताकर द्वारा रचित हिन्दू सभ्यता में स्त्री की स्थिति पृष्ठ 335-339 और 409 देखें) । उन्होंने यह उल्लेख किया है कि वैदिक काल में शिक्षा आरम्भ करने के लिए लड़कियों तथा लड़कों से उपनयन करवाया जाता था । स्त्रियां वेदों का अध्ययन करती थीं और यहां तक कि वैदिक मंत्रों की रचना भी करती थीं । वे स्वतंत्रापूर्वक सार्वजनिक जीवन में भागीदारी करती थीं । विश्ववरा, अपाला, लोपमुद्रा और शाश्यासी आरम्भिक वैदिक काल के केवल कुछ उदाहरण हैं । उसके पश्चात्, घोष, मैत्री और गार्गी ने समानता की दृष्टि से पुरुषों के साथ-साथ बौद्धिक श्रेष्ठता और समान हैसियत का उच्च स्थान हासिल किया । स्वार्थ और पुरुषवादिता के कारण धीरे-धीरे स्त्री का अधःपतन होता गया और यहां तक कि विवाह तय करने और अन्य कार्यों में उसकी बात नहीं सुनी जाने लगी । उसे सार्वजनिक कार्यकलापों में भाग लेने से मना किया गया । यद्यपि याज्ञवल्क्य उसकी आर्थिक प्रास्थिति का समर्थक था किन्तु, अंततोगत्वा मनु स्मृति का वर्चस्व बढ़ा और अध्याय 9 के श्लोक 18 में मनु ने यह कहा है कि स्त्री को वेदों का अध्ययन करने का अधिकार नहीं है । तद्द्वारा उसे शिक्षा के अधिकार, ज्ञान तथा सांस्कृतिक और बौद्धिक श्रेष्ठता अर्जित करने के मानव के मूल अधिकार से मना किया गया । अध्याय 9 के श्लोक 149 में उन्होंने यह उल्लेख किया है कि स्त्री को पिता, पति या पुत्र से पृथक् होने की ईप्सा नहीं करनी चाहिए और सदैव उनके प्रति कृतज्ञ रहना चाहिए । अध्याय 9 के श्लोक 45 में पति का स्त्री के साथ संबंध

ऐसा बताया गया है कि पत्नी विवाह-विच्छेद की ईप्सा नहीं कर सकती है किन्तु पुरुष को अवांछित पत्नी को त्यक्त करने की उन्मुक्ति दी गई है । हिन्दू विवाह अधिनियम बनाने तक युग-युगान्तर से पुरुष को बहुपतित्व अनुज्ञात था । अध्याय 9 के श्लोक 416 में उन्होंने यह कहा है कि पत्नी, पुत्र और दास कोई संपत्ति नहीं रख सकेंगे और यदि वे संपत्ति अर्जित कर भी लेते हैं तो यह उस पुरुष की होगी जिसकी संरक्षा में स्त्री रहती है । इस प्रकार, उसे शालीन और स्वतंत्र जीवन-यापन करने के लिए उसके संपत्ति और प्रोत्साहन के अधिकार से निरावृत्त कर दिया गया और विरले ही बालक की आश्रित बना दिया गया तथा मुसीबत झेलने के लिए छोड़ दिया गया । जब वह विधवा हो जाती तो उसे केवल भरण-पोषण घोषित किया जाता और यदि वह अपने पति की संपत्ति या सहदायिकी संपत्ति पर काबिज होती तो अंतिम पुरुष धारक के वारिसों को विधवा की संपदा का उत्तर-भोग अधिकार था । भरण-पोषण प्राप्त करने के लिए विश्वसनीयता पूर्ववर्ती शर्त थी । अध्याय 9 के श्लोक 299 में उन्होंने गलती करने वाली स्त्री को दैहिक दंड देना विहित किया है और उसे रस्सी या किसी फटे बांस से पीटना चाहिए । यदि उसकी हत्या कर दी गई है तो उसे अध्याय 9 के श्लोक 67 में उपपट्टक अर्थात् छुटपुट अपराध होना कहा गया है । मैंने शाब्दिक अनुवाद नहीं किया है अपितु सामाजिक व्यवस्था पर उनकी विस्तृत और गहन छाप को चित्रित किया है । इस प्रकार, हिन्दू नारी को समान प्रास्थिति और अवसर की समानता तथा व्यक्तित्व की गरिमा से इनकार करने की ठोस नींव रखी गई है और साथ ही संपत्ति का कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं दिया गया और उसे सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक रूप से अधीनस्थ बना दिया गया । विधवाओं को अमानवीय सती प्रथा द्वारा मारा गया और अब दुल्हनों को जलाकर मारा जाता है ।"

उच्चतम न्यायालय ने इसी विनिश्चय में आगे पैरा 20 में यह मत व्यक्त किया है :–

"20. सामाजिक-आर्थिक न्याय प्रदान करने, हिन्दू नारी को उस तिरस्कार, निरर्हताओं, अपहितों और निर्बंधनों से छुटकारा दिलाने के लिए, जिनके अधीन हिन्दू नारियां सदियों से अपमानित हो रही हैं और उन्हें राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय जीवन में एकीकृत करने के इस सांविधानिक ध्येय को मूर्त रूप देने और इसे विस्तृत करने के लिए

प्रथम विधि मंत्री और संविधान के संस्थापक भारत रत्न डा. बाबा साहेब अम्बेडकर ने हिन्दू कोड विधेयक प्रारूपित किया । हिन्दू विवाह अधिनियम, दत्तक ग्रहण और भरण-पोषण अधिनियम, अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम तथा उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) इस पैकेज के भाग बने । उन्होंने हिन्दू नारी को समान प्रास्थिति और सामाजिक-आर्थिक न्याय सुनिश्चित किया । विधि के शासन द्वारा शासित समाजवादी लोकतंत्र में, विधि को एक सामाजिक अभियांत्रिकी के रूप में सामाजिक ढांचे में रूपांतरण लाना चाहिए । जब कभी कल्याणकारी उपायों से संबंधित कोई सामाजिक-आर्थिक विधायन या नियम या लिखतें विचार के लिए उद्भूत होती हैं, तो यह ऐतिहासिक साक्ष्य आधार रूप में कार्य करेगा और अन्य सभी सुसंगत सामग्री न्यायालय के विचार से परे रखी जाएगी ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया)

थोटा शेषरथम्मा (उपरोक्त) वाला मामला हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 14 के निर्वचन का उत्कृष्ट उदाहरण है । संविधान की प्रस्तावना, जो अपने सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय गारंटीकृत करती है, को अनुच्छेद 15(3) के साथ पढ़ने और इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 39(ङ) को ध्यान में रखते हुए, जिसका संविधान के प्रारम्भ से ही अहम स्थान रहा है, उक्त निर्णय के पैरा 21 में की गई निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां, जो कि सुसंगत हैं, इस प्रकार से हैं :—

"21. ………… जब इस न्यायालय ने अनुच्छेद 15(3) पर विचार करते हुए धारा 14(1) की विधिमान्यता को कायम रखा तो इससे क्या संदेश दिया जाना आशयित था ? इसका यह अर्थ है कि न्यायालय हिन्दू नारी को संपत्ति का पूर्ण स्वामित्व प्रदान करके महिला नागरिक को सामाजिक-आर्थिक समानता देने की विधायी और सांविधानिक दूरदृष्टि को पूर्ण रूप से प्रवृत्त करने का प्रयास करेगा । असलियत में, अनुच्छेद 15(3) सामान्य संहिता का पूर्वगामी होने के नाते भारत की प्रत्येक महिला नागरिक को, धर्म, मूलवंश, जाति या धर्म को विचार में न लेते हुए, सामाजिक-आर्थिक समानता प्रदान करने के लिए विधि बनाने के लिए प्रेरित करता है ।"

19. **सी. मसिलामणी मुद्लियार और अन्य** बनाम **आइडोल आफ श्री स्वामीनाथस्वामी स्वामीनाथस्वामी थिरुकायल और अन्य**[1] वाले मामले में **गुम्फा** बनाम **जयबाई**[2] वाले मामले में की मताभिव्यक्तियों को उलटते हुए संविधान के आलोक में निर्वचन के सिद्धांत अधिकथित करते हुए पैरा 15 में यह अभिनिर्धारित किया :–

> "15. यह देखा गया है कि संविधान के प्रवृत्त होने के पश्चात् संविधान की प्रस्तावना, मूल अधिकारों और निदेशक तत्वों में, जो कि त्रि-रत्न है, समाहित समता के अधिकार और व्यक्ति की गरिमा जिसका आशय केवल सामाजिक प्रास्थिति या लिंग के आधारों पर किए जाने वाले विभेद या निर्योग्यता को दूर करना था, उन पूर्व-विद्यमान बाधाओं को दूर किया जो नारी या समाज के कमजोर वर्गों के रास्ते में आड़े आ रही थीं । एस. आर. बोम्मई **बनाम** भारत संघ (ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1918) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रस्तावना संविधान के मूल ढांचे का भाग है । न्याय के तीन स्तंभों समता और स्वतंत्रता तथा इसके साथ-साथ व्यक्ति की गरिमा को जीवंत करने के लिए आने वाले अवरोध केवल विधि के शासन के अधीन दूर किए जाने चाहिएं । प्रास्थिति और अवसर की समता मूल ढांचे के अन्तर्गत आते हैं । नारी को निम्नतर प्रास्थिति प्रदत्त करने वाली स्वीय विधियां समता के लिए अभिशाप हैं । स्वीय विधियां संविधान से नहीं अपितु धार्मिक ग्रंथों से व्युत्पन्न होती हैं । इस प्रकार व्युत्पन्न विधियां संविधान के संगत होनी चाहिएं, अन्यथा वे अनुच्छेद 13 के अधीन शून्य हो जाएंगी यदि उनसे मूल अधिकारों का अतिक्रमण होता है । समता का अधिकार एक मूल अधिकार है । इसलिए संसद् ने हिन्दू नारी पर लगाई गई उन निर्योग्यताओं को दूर करने के लिए धारा 14 अधिनियमित की, जो उसके संपत्ति के अधिकार को इसके पूर्ण स्वामित्व के बिना सीमित करती थी । इस विभेद को धारा 14(1) द्वारा दूर किया जाना ईप्सित है जिसमें इसके साथ स्पष्टीकरण जोड़कर हिन्दू नारी द्वारा संपत्ति के अर्जन की परिधि को विस्तृत किया गया है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया)

[1] (1996) 8 एस. सी. सी. 525 = ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 1697.
[2] (1994) 2 एस. सी. सी. 511.

इस प्रकार, उच्चतम न्यायालय ने हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 14 का निर्वचन करते हुए इसका निर्वचन सांविधानिक उपबंधों के आलोक में किया ।

20. अब **आत्म प्रकाश** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में के विनिश्चय पर वापस आते हैं, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने पैरा 5 में यह उल्लेख किया है :–

> "5. अब हम पहले निर्वचन की बाबत एक शब्द कहकर विवादग्रस्त प्रश्न पर विचार करेंगे । इस बाबत कि क्या वह चीज, जिसकी व्याख्या की जानी है, संविधान ही है या वह चीज, जिस पर विचार किया जाना है, किसी कानून की सांविधानिक विधिमान्यता है ; मौलिक नियम यह है कि मार्गदर्शक प्रकाश के रूप में संविधान की उद्देशिका का और निर्वचन की पुस्तक के रूप में राज्य की नीति के निदेशक तत्वों पर दृष्टिपात किया जाए । संविधान की उद्देशिका में जनता की आशाएं और अभिलाषाएं सन्निविष्ट और अभिव्यक्त हैं । निदेशक सिद्धांतों में राज्य के निकटतम लक्ष्यों का वर्णन किया गया है । जब हम संविधान के मुकाबले अन्य कानूनों की समीक्षा करने का कार्य अपने हाथ में लेते हैं तो हमारे पास ये ही वे चश्मे होते हैं जिनका प्रयोग हमें दूर दृष्टि या निकट दृष्टि के दोष का निराकरण करने के लिए करना चाहिए । चूंकि संविधान अपने ही ढंग की एक चीज है, अतः जहां सांविधानिक मुद्दे विचाराधीन हों, वहां ऐसे संकीर्ण निर्वचनात्मक नियमों पर उस दशा में गलती से विश्वास किया जा सकता है जब विधायी अधिनियमितियों के निर्वचन की स्थिति में उनकी कोई सुसंगति हो । प्रारम्भ में संविधान की उद्देशिका में भारत को प्रभुतासम्पन्न लोकतांत्रिक गणतंत्र बनाने के भारत की जनता के संकल्प की उद्घोषणा की गई थी और उसमें हमारी आशाओं और अभिलाषाओं के रूप में न्याय, स्वाधीनता, समता और बंधुत्व संबंधी उन अधिकारों का उल्लेख किया गया था जो वही अधिकार है जिसका उल्लेख फ्रैंच डिक्लेरेशंस आफ दि राइट्स आफ मैन (फ्रांस की मानवाधिकार संबंधी घोषणाएं) में किया गया है । ऐसा सन् 1950 में हुआ था जब हम औपनिवेशिक सामंतवादी शासन के चंगुल से

[1] [1986] 4 उम. नि. प. 417 = (1986) 2 एस. सी. सी. 249 = ए. आई. आर. 1986 एस. सी. 859.

निकले ही थे । समय बीतता गया । जनता की आशाएं और अभिलाषाएं बढ़ती चली गईं । सन् 1977 में संविधान के 42वें संशोधन ने भारत को समाजवादी गणतंत्र उद्‌घोषित कर दिया । संविधान की उद्‌देशिका में समाजवादी शब्द सन्निविष्ट किया गया । समाजवादी शब्द के, जो अब जनता की आशाओं और अभिलाषाओं का केन्द्र बिन्दु – अर्थात् संविधान के अनुच्छेदों में अन्तर्विष्ट सभी बातों का नियंत्रक और प्रेरक संकेत दीप बन गया है, सन्निवेश का स्पष्ट रूप से विवक्षित अर्थ यह है कि सामंतवादी शोषित समाज के स्थान पर किसी स्पन्दनशील जीवन्त समाजवादी कल्याणकारी समाज की स्थापना की जाए । संविधान का वह अनुच्छेद जिसका हम निर्वचन करना चाहते हैं, और वह कानून जिसकी सांविधानिक विधिमान्यता को प्रश्नगत करने की ईप्सा की जाए, चाहे जो हो, हमें ऐसा निर्वचन करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए जिससे राष्ट्र समाजवादी लोकतांत्रिक राज्य की स्थापना की ओर तेजी से बढ़ सके । उदाहरणार्थ, जब हम इस प्रश्न पर विचार करें कि क्या कोई कानून संविधान के अनुच्छेद 14 का विरोधी है, तो हमें इस प्रश्न पर भी विचार करना चाहिए कि क्या कोई ऐसा वर्गीकरण, जिसे विधान-मंडल ने किया हो, संविधान की उद्‌देशिका में वर्णित समाजवादी लक्ष्यों और उसके भाग 4 में प्रगणित निदेशक तत्वों से संगत है, संविधान से असंगत वर्गीकरण स्वतः अयुक्तियुक्त होता है और उसके किए जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती । ये व्यापक प्रतिपादनाएं करने के पश्चात् अब हम इन रिट याचिकाओं में उठाए गए प्रश्नों पर विचार करेंगे ।"

21. यह सही है कि अधिनियम, 1937 प्रवर्तन में आने से पूर्व हिन्दू विधवा के पास संपत्ति का आत्यंतिक अधिकार नहीं था । यहां तक कि माता भी, जिसके पास संपत्ति में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार तो था, किंतु विभाजन के लिए वाद फाइल करके इसे प्रवर्तित नहीं करा सकती थी और उसे पुत्र या पिता द्वारा कौटुम्बिक संपत्ति का विभाजन कराने का विनिश्चय करने तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी । अधिनियम, 1937 विधवा को संपत्ति में कुछ प्रवर्तनीय अधिकार देने के लिए प्रवर्तन में लाया गया था किन्तु तब इस अधिकार को एक सीमित अधिकार बनाया गया था और वह भी प्रतिवर्तन के अधीन रहते हुए था । दूसरे शब्दों में, विधवा को संपत्ति में अधिकार प्राप्त करने के लिए वाद फाइल करने का अधिकार तो दिया गया

था, किन्तु सीमित सीमा तक अर्थात् उसकी मृत्यु के पश्चात् संपत्ति वापस कुटुम्ब को प्रतिवर्तित हो जाती और उसे संपत्ति का लेन-देन करने के लिए संपत्ति पर कोई अनन्य अधिकार नहीं था । तथापि, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम वर्ष 1956 में प्रवर्तन में लाया गया और स्त्री के अधिकार का उद्धार करने के लिए विधवा को उस सीमित अधिकार को हटाकर जो उसे दिया गया था, अनन्य अधिकार दिया गया और हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की अनुसूची के अनुसार विधवा श्रेणी-1 की वारिस है ।

22. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री गावनेकर ने यह दलील दी कि अधिनियम, 1956 के अधीन विधवा को अपने मृत पति के हिस्से की सीमा तक अधिकार है । किन्तु फिर भी आवश्यक रूप से इसका यह अर्थ नहीं है कि अधिनियम, 1956 में उसे विभाजन के लिए न्यायालय में वाद फाइल करने के लिए समर्थ बनाने वाले किसी उपबंध के अभाव में भी उसे ऐसा अधिकार दिया गया है । जैसा कि ऊपर मत व्यक्त किया गया है, अधिनियम, 1956 में उसे अविभक्त कौटुम्बिक संपत्ति में अपने पति के हिस्से का दावा करने का अधिकार दिया गया है । उसके पति की मृत्यु के कारण संपत्ति के प्रत्युद्धरण के अधिकार को अधिनियम, 1956 के अनुसार उसे दिए गए संपत्ति के अधिकार का अभिन्न भाग अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए, अन्यथा उसे अधिकार देने का विधान-मंडल का आशय ही निरर्थक और व्यर्थ हो जाएगा ।

23. मेरे मत की पुष्टि **छोटे खान, मृत उसके पुत्र हरमत की** मार्फत **और अन्य** बनाम **मलखान और अन्य**[1] वाले मामले में व्यक्त किए गए निम्नलिखित मत से भी होती है, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने पैरा 23 में यह मत व्यक्त किया है :–

> "23. यह अभिनिर्धारित करने में हम उच्च न्यायालय से सहमत हैं कि विभाजन ऐसा अधिकार है जो संपत्ति के स्वामित्व की प्रसंगति है और जब प्रतिवादियों को एक बार सहदायिक अभिनिर्धारित किया गया है, तो विभाजन कराने के उनके अधिकार का विरोध नहीं किया जा सकता है ।"

24. एक और विभेद है जो स्पष्ट है और इस तर्क का उत्तर है कि अधिनियम, 1956 में अधिनियम, 1937 की धारा 3(3) के समान स्त्री के

---

[1] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 575.

पति की मृत्यु के पश्चात् अविभक्त हिन्दू कुटुम्ब की संपत्ति में पुत्र या किसी अन्य सहदायिक द्वारा विभाजन की मांग करने के अभाव में उसके द्वारा विभाजन के लिए वाद फाइल करने के अधिकार का उपबंध नहीं किया गया है । मेरी राय में, यह तर्क भ्रामक है, क्योंकि धारा 3(3) में विभाजन के लिए वाद फाइल करने के अधिकार का इसलिए उपबंध किया गया था क्योंकि विधवा को गुजर-बसर करने के लिए भी अपने पति की संपत्ति प्राप्त करने का कतई कोई अधिकार नहीं था । उसकी गुजर-बसर हो और भरण-पोषण के लिए आय का कुछ स्रोत हो, इसीलिए इस बात को ध्यान में रखते हुए कि उसे उसका हिस्सा मिले, धारा 3(3) विरचित की गई थी किन्तु फिर भी हिन्दुओं की स्वीय विधि के निबंधनों के अनुसार उसे एक सीमित अधिकार दिया गया था । इसके विपरीत, अधिनियम, 1956 में विधवा को अपने मृत पति के हिस्से के लिए किसी निर्बंधन के बिना और अपने पति के हिस्से का अपनी इच्छानुसार व्यवहार करने के लिए पूर्ण अधिकार प्रदान किया गया है । स्त्री के उद्धार के इसी प्रगतिशील कारण से अधिनियम, 1956 लाया गया था ।

25. **विधि सक्षम/समान अधिकार (सुई जूरिस/ऐक्वाली जूरा) :**

सुई जूरिस से अभिप्रेत है, "किसी व्यक्ति का अपना अधिकार" । जैसी कि पहले चर्चा की गई है, अधिनियम, 1956 के अनुसार, विधवा को अपने पति की मृत्यु के उपरान्त हिस्सा प्राप्त करने का जो अधिकार दिया गया है, वह अधिनियम, 1937 की धारा 3(3) के अनुसार सीमित प्रकृति का अधिकार था । इसलिए, वह विधि-सक्षम के रूप में कार्यवाही कर सकती है । इसके अतिरिक्त, अधिनियम, 1956 में उसे स्वतंत्रतापूर्वक वाद फाइल करने से प्रतिषिद्ध करने वाला कोई उपबंध नहीं है । इसलिए, विधि सक्षम होते हुए, यह अभिनिर्धारित करना आवश्यक है कि उसे स्वतंत्रतापूर्वक वाद फाइल करने का अधिकार है ।

26. **जहां अधिकार है वहां उपचार भी है (यूबी जस आईबी रिमेडियम**

यहां, इस संदर्भ में **श्रीमती गंगा बाई** बनाम **विजय कुमार और अन्य**[1] वाले मामले के निर्णय का सिंहावलोकन करना आवश्यक होगा जिसमें उच्चतम न्यायालय ने पैरा 15 में यह अभिनिर्धारित किया है :–

---

[1] [1974] 2 उम. नि. प. 912 = (1974) 2 एस. सी. सी. 393 = ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 1126.

"15. .... प्रत्येक व्यक्ति को सिविल प्रकृति का वाद चलाने का अंतर्निहित अधिकार है और जब तक वाद किसी कानून द्वारा वर्जित न हो, तब तक कोई भी व्यक्ति अपने जोखिम पर अपनी इच्छानुसार वाद चला सकता है । दावा चाहे कितना भी तुच्छ क्यों न हो किन्तु किसी वाद के जवाब में यह नहीं कहा जा सकता है कि विधि में वाद चलाने का ऐसा कोई अधिकार प्रदान नहीं किया गया है । किसी वाद को चालू रखने के लिए विधि के किसी प्राधिकार की आवश्यकता नहीं है और इतना ही पर्याप्त है कि कोई कानून वाद को वर्जित नहीं करता है ।"

इसी प्रकार **धन्ना लाल** बनाम **कलावती बाई और अन्य**[1] वाले मामले में भी उच्चतम न्यायालय ने पैरा 21 में जहां अधिकार है, वहां उपचार भी है, सिद्धांत पर विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया है :–

"21. कतिपय विधिक सूत्रों के प्रतिनिर्देश करना या उनसे सहायता प्राप्त करना उपयोगी होगा । यूबी जस आईबी रिमेडियम का अर्थ है उपचार के बिना कोई दोष नहीं । जहां अधिकार है, वहां इसके प्रवर्तन के लिए अधिकरण भी है । ब्रूम की लीगल मैक्सिक्स् (10वां संस्करण, पृष्ठ 118-119) के अनुसार, इस सूत्र को इतना मूल्यवान समझा गया है कि इससे कार्रवाई के रूप का आविष्कार हुआ जिसे मामले में कार्रवाई कहा जाता है । जहां रिट की कोई नजीर प्रस्तुत न की जा सके, वहां चांसरी में क्लर्क एक नई नजीर बनाने के लिए सहमत होंगे । तद्नुसार, न्यायालयों द्वारा अपनाया गया सिद्धांत यह है कि मामले में कार्रवाई करने के लिए अभिकथित विशिष्ट शिकायत का नयापन इसका आक्षेप नहीं होगा, बशर्ते यह दर्शित किया गया हो कि वादी को विधि द्वारा संज्ञापित क्षति कारित हुई है, भले ही इसकी कोई नज़ीर न हो, फिर भी कामन विधि नैसर्गिक विधि और लोक हित के अनुसार निर्णय करेगी । यदि किसी व्यक्ति को कोई अधिकार है, तो उसके पास इसे सिद्ध करने और बनाए रखने का साधन होना चाहिए और यदि वह उस अधिकार का प्रयोग और उपभोग करते हुए क्षतिग्रस्त होता है तो उपचार का होना आवश्यक है और वास्तव में, उपचार के बिना अधिकार की कल्पना एक व्यर्थ बात है, क्योंकि अधिकार की चाह और उपचार की चाह

[1] (2002) 6 एस. सी. सी. 16 = ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 2572.

परस्पर सदृश है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया)

27. विधिशास्त्र के उपरोक्त मूलभूत सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि अधिनियम, 1956 के अधीन विधवा या माता या स्त्री को अधिकार दिए जाने पर यह नहीं कहा जा सकता है कि उसे यद्यपि हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार तो है, किन्तु वह अपने मृत पति के हिस्से के प्रत्युद्धकरण के लिए वाद फाइल नहीं कर सकती है, क्योंकि उसे वाद फाइल करने का अधिकार नहीं है । जब एक अधिकार दिया गया है, तो वहां उपचार होना चाहिए अर्थात् विभाजन के लिए वाद फाइल करने का उपचार और यह उपचार अविभक्त कुटुम्ब की संपत्ति का कुटुम्ब के अन्य सहदायिकों की विभाजन की इच्छा और मांग पर निर्भर नहीं हो सकता है । मैं नहीं समझता कि इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि इसमें हिन्दुओं की स्वीय विधि किसी रीति में प्रभावित होती है । कोई प्रतिकूल निर्वचन मेरे द्वारा इस विषय पर ऊपर चर्चा किए गए परिनियमों के विरुद्ध होगा और पूर्व स्थिति में आने वाला कदम होगा ।

28. **अनवधानता (पर इनक्यूरियम)** –

जयश्री साहू बनाम **रायदिवान दूबे और अन्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की सांविधानिक न्यायपीठ को इसी मुद्दे और आबद्धकारी नजीरों के साधारण नियम के अपवादों के विषय पर विचार करना था । हाल्सबरी लाज आफ इंग्लैंड, तृतीय संस्करण, वाल्यूम 22, पैरा 1687, पृष्ठ 799-800 पर निम्नलिखित अपवादों का उल्लेख किया गया है :–

> "न्यायालय अपने ही ऐसे विनिश्चय का अनुसरण करने के लिए आबद्ध नहीं है यदि वह अनवधानता के कारण दिया गया है । कोई विनिश्चय अनवधानता के कारण तब दिया जाता है जब न्यायालय स्वयं अपने या समन्वय अधिकारिता वाले न्यायालय के किसी ऐसे पूर्ववर्ती विनिश्चय की उपेक्षा करके कार्य करता है जो उसके समक्ष मामले को आच्छादित करता हो, या जब उसने हाउस आफ लार्ड्स के विनिश्चय की उपेक्षा करके कार्य किया है । पूर्ववर्ती मामले में, उसे अवश्य यह विनिश्चय करना चाहिए कि किस विनिश्चय का अनुसरण करना है और पश्चात्वर्ती मामले में वह हाउस आफ लार्ड्स

[1] ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 83.

के विनिश्चय से आबद्ध है ।"

मध्य प्रदेश ग्रामीण सड़क विकास प्राधिकरण और एक अन्य बनाम **एल. जी. चौधरी इंजीनियर्स एण्ड कांट्रेक्टर्स**[1] वाले मामले में भी उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय के पैरा 28 से 34 में की गई मताभिव्यक्तियों का अवलंब लेते हुए इस सिद्धांत को स्पष्ट किया गया है, जो इस प्रकार है :–

"28. अनवधानता के सिद्धांत को यंग **बनाम** ब्रिस्टल ऐरोप्लेन कंपनी लिमिटेड (के. बी. पृष्ठ 729) वाले मामले में अपील न्यायालय द्वारा बहुत ही संक्षिप्त और स्पष्ट रूप से सूत्रबद्ध किया गया है । मास्टर आफ रोल्स, लार्ड ग्रीन ने उन आधारों पर सिद्धांत सूत्रबद्ध किए, जिनके आधार पर कोई विनिश्चय अनवधानता के कारण किया गया कहा जा सकता है । ये सिद्धांत इस प्रकार हैं –

'जहां न्यायालय ने किसी कानून का या कानून का बल रखने वाले किसी नियम का अर्थान्वयन किया है, तो उसका विनिश्चय उन्हीं आधारों पर आधारित रहता है जैसे विधि के प्रश्न पर कोई अन्य विनिश्चय आधारित होता है, किन्तु जहां न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि पूर्ववर्ती विनिश्चय किसी कानून या कानून का बल रखने वाले नियम के निबंधनों की अनदेखी करके दिया गया है, वहां स्थिति पूरी तरह भिन्न होती है । हमारी राय में, यह कहना ठीक नहीं हो सकता है ऐसे मामले में न्यायालय कानूनी उपबंध की अवहेलना करने का हकदार है और अपने ही उस विनिश्चय का अनुसरण करने के लिए आबद्ध है जो उस समय किया गया था जब वह उपबंध उसके मस्तिष्क में विद्यमान नहीं था । इस प्रकार के मामले अनवधानता के कारण दिए गए विनिश्चयों के उदाहरण हैं ।'

29. यंग वाले मामले में किए गए विनिश्चय का बाद में हाउस आफ लार्ड्स द्वारा यंग **बनाम** ब्रिस्टल एरोप्लेन कंपनी लिमिटेड वाले मामले में रिपोर्ट के पृष्ठ 169 पर अनुमोदन किया गया था । लार्ड विस्काउंट साइमन ने हाउस आफ लार्ड्स में लार्ड ग्रीन, अपील न्यायालय में मास्टर आफ रोल्स, द्वारा अनवधानता के सिद्धांत पर अभिव्यक्त किए गए मत से सहमति जताई (ब्रिस्टल एरोप्लेन कं. लि.

[1] (2012) 3 एस. सी. सी. 495.

वाले मामले में लार्ड विस्काउंट का भाषण रिपोर्ट के पैरा 169 पर देखें)

30. बंगाल इम्यूनिटी कम्पनी लिमिटेड **बनाम** बिहार राज्य (ए. आई. आर. 1955 एस. सी. 661, पृष्ठ 670-671) वाले मामले में इस न्यायालय की सांविधानिक न्यायपीठ द्वारा इन सिद्धांतों का अनुसरण किया गया है (एस. सी. आर. में रिपोर्ट के पृष्ठ 622 और 623 पर चर्चा देखें)

31. मोरले एल. डी. **बनाम** वेकलिंग क्यूबी 3, पृष्ठ 406, वाले मामले में मास्टर आफ रोल्स, लार्ड ऐवरशेड द्वारा इसी सिद्धांत को दोहराया गया है । इस सिद्धांत का निम्न प्रकार से उल्लेख किया गया है :–

> '................ साधारण नियम के रूप में वे ही मामले, जिनमें विनिश्चय अनवधानता के कारण किए गए अभिनिर्धारित किए जा सकते हैं, वे विनिश्चय हैं जो कुछेक संगत कानूनी उपबंध की उपेक्षा करके या भूलवश किए गए हैं और कुछेक संबंधित न्यायालय पर आबद्ध नजीर की उपेक्षा करके किए गए हैं, जिसमें कि ऐसे मामलों में विनिश्चय का कुछ भाग या उस तर्कणा में उठाया गया कुछ कदम, जिस पर यह आधारित है, उन विषय पर स्पष्ट रूप से गलत पाया गया है ....।'

32. उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** सायनथेटिक्स एंड केमिकल्स लि. (एस. सी. सी. पृष्ठ 162 पैरा 40) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि 'अनवधानता के कारण' सिद्धांत का व्यवहारिक अर्थ 'भूलवश किया गया' है और यह उल्लेख किया कि इंग्लैंड के न्यायालयों ने इस सिद्धांत को निर्णीतानुसरण (स्टेयर डिसाइसिस) के नियम का शिथिलीकरण करके विकसित किया है और **ब्रिस्टल एरोप्लेन कं. लि.** (उपरोक्त) वाले मामले को निर्दिष्ट किया । विद्वान् न्यायाधीशों ने यह भी स्पष्ट किया कि इस न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 141 का निर्वचन करते हुए इसी सिद्धांत का अनुमोदन और अंगीकार किया गया था (सायनथेटिक्स एंड केमिकल्स लि. वाला मामला (एस. सी. सी. पैरा 41 पर देखें) ।

33. एम. सी. ए. **बनाम** गुरनाम कौर (ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 38) वाले मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने निर्णय के पैरा 11 में अतिविस्तारपूर्वक अनवधानता के

सिद्धांत को स्पष्ट किया है और अनवधानता के सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए विद्वान् न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया –

> '11. ……. कोई विनिश्चय अनवधानता के कारण दिया गया तब माना जाना चाहिए जब यह कानून या कानून का बल रखने वाले नियम के निबंधनों की अनदेखी करके दिया जाता है ………… ।'

34. विद्वान् न्यायाधीश ने पैरा 12 में (**गुरनाम कौर** वाला मामला, एस. सी. सी., पृष्ठ 111, ए. आई. आर. पृष्ठ 43) निम्नलिखित मत व्यक्त किया है –

> '12. ……… पूर्व-न्याय के सिद्धांत के लिए एक मुख्य कारण यह है कि कोई मामला जिस पर एक बार पूरी तरह से बहस हो चुकी है और विनिश्चित हो चुका है, उसे पुनः खोलने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए । उक्तियों का दिया गया महत्व उक्ति के प्रकार के साथ-साथ अलग-अलग होता है । मात्र आकस्मिक अभिव्यक्तियों का कतई कोई महत्व नहीं होता है । किसी न्यायाधीश की, चाहे वह कितना भी विख्यात हो, प्रत्येक अभिव्यक्ति को प्राधिकारपूर्ण प्रमाणिक कथन नहीं माना जा सकता है ।'"

29. उपरोक्त विनिश्चयों और चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री अनिल अंतुरकर द्वारा दी गई इन दलीलों को अवश्य स्वीकार किया जाना चाहिए कि **आनंद** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के एकल विद्वान् न्यायाधीश द्वारा किया गया विनिश्चय अनवधानता के कारण किया गया विनिश्चय है । इससे भी बढ़कर, उच्चतम न्यायालय द्वारा **गुरुपद** (उपरोक्त) वाले मामले के विनिश्चयाधार का विश्लेषण करते हुए **नारायण राव** (उपरोक्त) वाले मामले में ऐसा ही मत व्यक्त किया गया है ।

प्रश्न सं. 1 के बारे में

30. अब प्रश्न सं. 1 पर विचार किया जाना है । 2013 की द्वितीय अपील सं. 119 में वादी-सुलोचना, विधवा ने 2006 के नियमित सिविल वाद सं. 1773 द्वारा विभाजन और अलग कब्जे के लिए एक वाद फाइल किया । उसका पति वर्ष 1997 में लापता हो गया था और इस प्रकार

उसकी सिविल मृत्यु की घोषणा के लिए सात वर्ष की अवधि वर्ष 2004 में पूर्ण हो गई थी । तथापि, उसने अपने पति की सिविल मृत्यु की घोषणा के लिए वाद वर्ष 2006 में नियमित वाद सं. 1780/2006 के द्वारा फाइल किया और वस्तुतः घोषणा तारीख 31 जुलाई, 2007 को प्राप्त हुई । श्री गावनेकर द्वारा दी गई दलील यह है कि चूंकि सिविल मृत्यु के बारे में घोषणा केवल तारीख 31 जुलाई, 2007 को प्रदान की गई थी, इसलिए उसके द्वारा घोषणा के लिए वर्ष 2006 में फाइल किया गया वाद अर्थात् 2006 का नियमित वाद सं. 1773 किसी वाद हेतुक रहित और अपरिपक्व था और इस प्रकार अमान्य था ।

31. मैंने, अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री गावनेकर द्वारा दी गई दलील पर ध्यानपूर्वक विचार किया है । यहां साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 108 के उपबंधों पर विचार करना आवश्यक है, जो निम्न प्रकार से हैं :–

> "108. यह साबित करने का भार कि वह व्यक्ति, जिसके बारे में सात वर्ष से कुछ नहीं सुना गया है, जीवित है – परन्तु जबकि प्रश्न यह है कि कोई मनुष्य जीवित है या मर गया है और यह साबित किया गया है कि उसके बारे में सात वर्ष से उन्होंने कुछ नहीं सुना है, जिन्होंने उसके बारे में यदि वह जीवित होता तो स्वाभाविकतः सुना होता, तब यह साबित करने का भार कि वह जीवित है, उस व्यक्ति पर चला जाता है जो उसे प्रतिज्ञात करता है ।"

यह विवादग्रस्त नहीं कि वादी-सुलोचना का पति वर्ष 1997 में लापता हो गया था जिसके बारे में संबंधित पुलिस थाने में रिपोर्ट दर्ज की गई । यह भी विवादग्रस्त नहीं है कि सात वर्ष की अवधि वर्ष 2004 में पूर्ण हो गई थी । उसने अपने पति की सिविल मृत्यु की घोषणा के लिए वर्ष 2006 में वाद फाइल किया । इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि सुलोचना का पति राजीव वर्ष 1997 से लापता था और वर्ष 1997 से लगभग सात वर्ष तक उसे ढूंढा नहीं जा सका या उसके बारे में सुना नहीं गया और अपीलार्थियों का पक्षकथन भी इसके प्रतिकूल नहीं है । साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 108 में व्यक्ति की सिविल मृत्यु के लिए सिविल न्यायालय द्वारा कोई घोषणा करना अनुध्यात नहीं किया गया है । इसके विपरीत, वह सात वर्ष के पश्चात् घोषणा के लिए न्यायालय में गई थी और यह घोषणा स्पष्ट तौर पर सात वर्ष की अवधि पूर्ण होने पर लागू होनी थी । इसलिए,

मेरी राय में, सिविल मृत्यु की घोषणा की डिक्री की तारीख का कतई कोई महत्व नहीं है । यहां, **भारतीय जीवन बीमा निगम** बनाम **अनुराधा**[1] वाले मामले में के निर्णय के पैरा 14 में माननीय उच्चतम न्यायालय की मताभिव्यक्तियों का वाचन करना सुसंगत होगा, जो निम्नलिखित है :–

"उपर्युक्त नजीरों के आधार पर हम बेहिचक जिस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं उसका हम निम्नलिखित शब्दों में उपसंहार करते हैं । मृत्यु के बारे में उपधारणा की बाबत विधि चाहे इंग्लैंड की कामन विधि में हो या भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 107 और 108 में अंतर्विष्ट कानूनी उपबंधों में हो, एक समान रही है । साक्ष्य अधिनियम की स्कीम में यद्यपि धाराएं 107 और 108 दो धाराओं के रूप में प्रारूपित हैं, किन्तु प्रभावतः धारा 108, धारा 107 में अधिनियमित नियम का अपवाद है । जब यह दर्शित किया गया हो कि मानव जीवन एक सुसंगत समय पर विद्यमान था और जो सुसंगत समय धारा 107 के अनुसार उस तारीख से, जब प्रश्न उद्भूत होता है, पीछे परिकलित 30 वर्ष के भीतर होना चाहिए, यह उपधारणा की जाती है कि वह जीवित रहा था । यह नियम धारा 108 में यथा अंतर्विष्ट परन्तुक या अपवाद के अध्यधीन है । यदि उन व्यक्तियों ने, प्रश्नगत व्यक्ति के बारे में सात वर्ष से कुछ नहीं सुना है, जिन्होंने उसके बारे में स्वाभाविकतः और सामान्य मानवीय कार्यकलापों के अनुक्रम में सुना होता, तो धारा 107 के अधीन की गई उपधारणा लागू होना समाप्त हो जाती है । धारा 107 के अधीन यह साबित करने का भार कि व्यक्ति मर गया है, उस पर चला जाता है जो उस तथ्य को प्रतिज्ञात करता है । धारा 108, अपनी प्रयोज्यता के अधीन रहते हुए, लागू किए जाने पर साबित करने का भार वापस उस व्यक्ति पर चला जाता है जो उस व्यक्ति के जीवित होने के तथ्य को प्रतिज्ञात करता है । धारा 108 के अधीन की गई उपधारणा एक सीमित उपधारणा है जो केवल उस व्यक्ति की मृत्यु के तथ्य की उपधारणा करने तक सीमित है जिसका जीवन या मृत्यु विवाद्य है । यद्यपि यह उपधारित किया जाएगा कि व्यक्ति मर गया है किन्तु मृत्यु की तारीख या समय के बारे में कोई उपधारणा नहीं होती है । उन तथ्यों और परिस्थितियों के बारे में कोई उपधारणा नहीं की जाती है जिनके अधीन व्यक्ति की

[1] ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 2070.

मृत्यु हुई होगी । धारा 108 के प्रति निर्देश करके मृत्यु की उपधारणा सात वर्ष बीत जाने के पश्चात् उद्भूत होगी और 6 वर्ष 364 दिन या इससे किसी कम समय पर कोई तर्क या तर्कणा अनुज्ञात करके लागू नहीं होगी । उपधारणा करने का अवसर केवल तब उद्भूत होगा जब प्रश्न उस न्यायालय, अधिकरण या किसी प्राधिकारी के समक्ष उठाया जाता है जिसे यह विनिश्चय करने के लिए कहा जाता है कि क्या व्यक्ति जीवित है या मर गया है । जब तक किसी न्यायालय के समक्ष या किन्हीं विधिक कार्यवाहियों में विवाद नहीं उठाया जाता है, तब तक उपधारणा करने का अवसर उद्भूत नहीं होता है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, प्रश्न सं. 1 का उत्तर अवश्य नकारात्मक होना चाहिए, जिसका मैं नकारात्मक उत्तर देता हूं ।

अंत में, मैं ज्येष्ठ अधिवक्तागण श्री गावनेकर, श्री पी. एन. जोशी, श्री अनिल अंतुरकर और श्री राजीव पाटिल का आभार व्यक्त करना चाहूंगा । जिन्होंने इस न्यायालय की सहायता करने के लिए कष्ट उठाया ।

32. उपरोक्त चर्चा के परिणामस्वरूप निम्नलिखित आदेश अपरिहार्य हैं :–

आदेश

(i) 2013 की द्वितीय अपील सं. 119 और 405 खारिज की जाती हैं ।

(ii) खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

(iii) इन दोनों अपीलों में इस न्यायालय द्वारा किया गया अंतरिम आदेश, दस सप्ताह की और अवधि के लिए प्रवर्तन में रहेगा ।

द्वितीय अपीलें खारिज की गईं ।

जस.

मांगी लाल

बनाम

सूरज मल

तारीख 17 फरवरी, 2016

न्यायमूर्ति विनीत कोठारी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित राजस्थान परिसर (किराया और बेदखली नियंत्रण) अधिनियम, 1950 की धारा 14(1)(ई)] – भू-स्वामी द्वारा किराएदार की बेदखली हेतु वाद – किराएदार द्वारा वाद संपत्ति को खाली न किया जाना – भू-स्वामी को विवादित परिसर की सद्‌भाविक आवश्यकता होना – जहां पर भू-स्वामी को अपने कुटुंब के लिए, किराए पर दिए गए परिसर की सद्‌भाविक आवश्यकता हो तो वह किराएदार से उक्त परिसर खाली करा सकता है और किराएदार को वह परिसर खाली करना पड़ेगा ।

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन वर्तमान द्वितीय अपील, सिविल अपील सं. 27/2011 "सूरजमल बनाम मांगी लाल विधिक प्रतिनिधि रामेश्वर लाल के माध्यम" में बेदखली और किराए के बकाए की वसूली के लिए अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा एक वाद विद्वान् अपर जिला और सेशन न्यायाधीश, बीवर, जिला अजमेर द्वारा तारीख 1 जुलाई, 2015 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा विद्वान् प्रथम अपीली न्यायालय ने प्रत्यर्थी-वादी की अपील को आंशिक रूप से मंजूर कर ली थी और सिविल मूल वाद सं. 08/2003 (315/993) (92/1989) "सूरजमल बनाम मांगी लाल विधिक प्रतिनिधि रामेश्वर लाल के माध्यम" में अपर सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड) सं. 1 बीवर के विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित बेदखली के लिए, तारीख 7 अक्तूबर, 2011 के निर्णय और डिक्री को अपास्त करते हुए, बीवर में स्थित वाद संपत्ति अर्थात् दुकान के संबंध में भू-स्वामी की सद्‌भाविक आवश्यकता के आधार पर बेदखली की डिक्री मंजूर कर ली थी जिसके द्वारा प्रतिवादी के प्रथम व्यतिक्रम के लाभ को विस्तारित करते हुए, बेदखली के लिए वादी-सूरजमल के पूर्वोक्त वाद को खारिज कर दिया था । प्रत्यर्थी-वादी द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय के तारीख 7 अक्तूबर, 2011 के पारित निर्णय

और डिक्री के विरुद्ध फाइल प्रथम अपील को विद्वान् प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा आंशिक रूप से मंजूर कर लिया गया था और तारीख 1 जुलाई, 2015 को बेदखली की डिक्री मंजूर कर ली थी । विद्वान् निचले प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय और बेदखली डिक्री से व्यथित होकर, वर्तमान अपीलार्थी/प्रतिवादी ने तारीख 18 अगस्त, 2015 को इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान द्वितीय अपील फाइल की । न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिलेख पर रखी गई सामग्री का परिशीलन किया जिसमें वादी के बेदखल करने के वाद को डिक्री करने के लिए विद्वान् प्रथम निचले अपीली न्यायालय द्वारा दिए गए कारण सम्मिलित हैं, इस न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि अपीलार्थी/प्रतिवादी द्वारा फाइल वर्तमान द्वितीय अपील खारिज किए जाने योग्य है, क्योंकि इसमें विद्वान् प्रथम निचले अपीली न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और डिक्री से कोई विधि के सारवान् प्रश्न उद्भूत होना नहीं कहा जा सकता है । भू-स्वामी का अपनी आवश्यकता के लिए उत्तम निर्णायक होने के बारे में सुस्थिर विधिक प्रास्थिति, निम्नलिखित निर्णयज मामलों से चित्रित होते हैं – माननीय उच्चतम न्यायालय ने सैत नागजी पुरुषोत्तम और कंपनी लिमिटेड बनाम विमलाभाई प्रभुलाल और अन्य वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां बेदखली भू-स्वामी की सद्भाविक आवश्यकता होती है, जिस सुसंगत तारीख पर उक्त आवश्यकता का न्यायनिर्णयन किया जाना है वह फाइल करने की तारीख होती है और मुकदमे की अवधि के दौरान लिया गया स्थान पश्चात्वर्ती घटनाएं जैसे अन्य क्रियाकलापों में लगाना या प्रश्नगत परिसर की आवश्यकता है जिसके लिए व्यवसाय ऐसी सद्भाविक आवश्यकता को उलटता नहीं है अन्यथा ऐसी पश्चात्वर्ती घटनाएं ऐसी आवश्यकता पूरी तरह ग्रहण के संबंध में प्रकृति और आयाम जैसे हैं और यह पूरी तरह से महत्व खो देते हैं और मुकदमे की प्रक्रिया जब अंतिम प्रक्रम पर पहुंचती है तो स्वामी को अनुतोष से इनकार करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है । माननीय उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ ने प्रथीवा देवी बनाम टी. वी. कृष्णन वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि स्वामी अपनी आवासीय आवश्यकता का उत्तम निर्णायक होता है, निम्नलिखित मत व्यक्त है – "स्वामी अपनी आवासीय आवश्यकता का उत्तम निर्णायक होता है । वह मामले में पूरी तरह से स्वतंत्र होता है । यह न्यायालयों का विषय क्षेत्र

नहीं है कि वह भू-स्वामी को निर्देश करे कि कैसे और किस तरीके से, उसे रहना चाहिए या उसके स्वयं के आवासीय स्तर को विहित करना चाहिए । उच्च न्यायालय को अपीलार्थी की आयु के बारे में और उसकी आयु पर विचार करने की उत्सुकता रखने के बजाय उसकी देखभाल करने की आवश्यकता पर विचार करना चाहिए । उसे अपीलार्थी ही समझ सकता है न कि उच्च न्यायालय । उच्च न्यायालय द्वारा दी गई अनावश्यक सलाह अनुचित थी । इसमें यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि उसे कुटुंब मित्र के घर में रहने का किसी प्रकार अधिकार, जो भी हो, था । दूसरी ओर, वह केवल मौन सहमति से ही वहां थी । ऐसी कोई विधि नहीं है जो भू-स्वामी को अपनी संपत्ति का लाभकारी आनंद लेने से वंचित करता हो । उच्च न्यायालय ने यह अधिकथित करने में गलती की है कि इसका परीक्षण, वैकल्पिक आवास की उपलब्धता है और न कि अधिनियम की धारा 14(1)(ई) के अधीन भू-स्वामी के दावे के सद्भाविक न्यायनिर्णयन में ऐसे व्यवसाय का विधिक अधिकार है । वैकल्पिक आवास की उपलब्धता पर विचार करते हुए, न्यायालय को न केवल इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या ऐसा आवास उपलब्ध है अपितु इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि क्या भू-स्वामी को ऐसे आवास का विधिक अधिकार भी है । अपीलार्थी ने अधिनियम की धारा 14(1)(ई) के अधीन पट्टांतरित परिसरों की अपनी सद्भाविक व्यक्तिगत आवश्यकता को सिद्ध कर दिया था और उसके दावे को इस आधार पर नामंजूर नहीं किया जा सकता है कि वह परिस्थितियों के कारण अपने कुटुंब मित्र के साथ मेहमान के रूप में रह रही थी ।" इसके अतिरिक्त, जैसा कि सत्यावती शर्मा बनाम यूनियन आफ इंडिया वाले मामले में, दो न्यायाधीशों की खंडपीठ के नवीनतम निर्णय में स्वयं माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, जिसकी बाद में महाराष्ट्र राज्य और अन्य बनाम सुपर मैक्स इंटरनेशनल प्राइवेट लि. और अन्य वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ द्वारा पुनः अभिपुष्टि की गई है जिसमें उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट तौर पर उल्लिखित किया है यद्यपि उच्चतम न्यायालय का झुकाव वर्ष 1990 के आगे के पूर्व भू-स्वामी से वर्ष 1950 से 1990 की ओर रहा है । सत्यावती शर्मा और सुपर मैक्स इंटरनेशनल प्राइवेट लि. वाले मामले में निर्णयों के सुसंगत उद्धरण वर्तमान संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत हैं – "किराया नियंत्रण विधानों का निर्वचन करते हुए, न्यायालयों का झुकाव निश्चित तौर पर बदल गया है । वर्ष 1950 के दशक

से वर्ष 1990 के शुरूआती दौर के निर्णयों के विश्लेषण से यह दर्शित होता है कि कई मामलों में किराएदार के पक्ष में न्यायालयों के निर्वचन में भारी झुकाव रहा है जिससे किराएदार को फायदा होता था । इन मामलों में, न्यायालय ने लगातार यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रत्येक किराया नियंत्रण विधान का सर्वोपरि उद्देश्य उन भू-स्वामियों के शोषण के विरुद्ध किराएदारों को संरक्षा प्रदान करने का रहा है जो अत्यधिक अभाव की पृष्ठभूमि में निवास या व्यवसाय करने के लिए मकान की उनकी आवश्यकता को देखते हुए अनुचित लाभ उठाने की ईप्सा रखते थे । तथापि, विभिन्न प्रवृत्ति बाद के निर्णयों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है ।" सुपर मैक्स इंटरनेशनल प्रा. लि. वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय के निर्णय का सुसंगत पैरा 71 वर्तमान संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत है – "71. हम सत्यावती शर्मा वाले मामले में, अभिव्यक्त दृष्टिकोणों की पुनः अभिपुष्टि करते हैं और भू-स्वामी और किराएदार के बीच रिश्तों को संतुलित और वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण के लिए आवश्यकता पर जोर देते हैं । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि न्यायालय का भू-स्वामी के पक्ष में झुकाव होना चाहिए परन्तु इस धारणा के लिए कोई गुंजाइश नहीं है कि सभी किराएदार किसी भी वर्ग के रूप में हों भयानक परिस्थितियों में और सभी परिस्थितियों के अधीन न्यायालय के संरक्षण की निराशा में है । (वर्तमान अपीलार्थी का मामला जो मुंबई फोर्ट में स्थित एक बिल्डिंग में 9000 वर्ग फीट क्षेत्र जिसका किराया 5236.58 के साथ 515.35 रुपए की दर से अधिक बहुतायत बिंदु कब्जे में है) ।" प्रकाश के विधिक प्रतिनिधि बनाम पूर्णिमा वाले मामले में, इस न्यायालय ने यह जोर दिया है कि भू-स्वामी निम्नलिखित निबंधनों में अपनी आवश्यकता का उत्तम निर्णायक होता है – "प्रत्यर्थी-वादियों के विद्वान् काउंसेल श्री एस. एल. पुंगालिया ने इन दलीलों का बलपूर्वक विरोध किया था और यह तर्क दिया कि वर्तमान द्वितीय अपील में कोई विधि का सारवान् प्रश्न उद्‌भूत नहीं होता है और निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए तथ्यों के निष्कर्ष ठोस और सुसंगत साक्ष्य पर आधारित हैं और द्वितीय अपील खारिज किए जाने योग्य है चूंकि भू-स्वामी की सद्‌भाविक आवश्यकता विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष पूर्णरूप से सिद्ध हुई थी और माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला के अनुसार, इसमें किराएदार को भू-स्वामी को निर्देश देने के लिए नहीं है कि कैसे और किस तरीके में उसे अपने व्यवसाय स्थान के लिए अपनी सद्‌भाविक आवश्यकता से संतुष्ट होना चाहिए और निचले न्यायालय

द्वारा पाए गए तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि वादियों का जीविका स्रोत ही एस. टी. डी. पी. सी. ओ. बूथ था जिसे वह वर्तमान में सीढ़ियों के नीचे चला रहा है और उसे इस व्यवसाय को वहां से बाहर निकालने के लिए परिसर की अधिक आवश्यकता थी । डेंजिल नाजरथ बनाम बलवंत सिंह के विधिक प्रतिनिधि और अन्य वाले मामले में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है जो इस प्रकार है – "पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनते हुए और आक्षेपित निर्णय का परिशीलन करते हुए तथा विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए साक्ष्य से, इस न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित भू-स्वामी की सद्भाविक आवश्यकता के बारे में तथ्य के निष्कर्षों को किसी भी प्रकार से उलटा नहीं जा सकता है । वे ठोस कारणों और साक्ष्य के आधार पर हैं और आक्षेपित निर्णय में कोई हस्तक्षेप प्रतिवादी-किराएदार की वर्तमान प्रथम अपील में किया जाना अपेक्षित नहीं है । स्वामी-वादी, स्वर्ण सिंह ने अपने शपथपत्र के पैरा 7 और 8 में यह स्पष्ट रूप से अभिकथन किया है कि वादी के कुटुंब के लिए उपलब्ध घर तीन कमरों का था और उनके दो विवाहित भाइयों और तीन विवाहित बहनों और माता-पिता के लिए बहुत ही छोटा था, उक्त आवास अपेक्षा के हिसाब से बहुत ही छोटा और इसलिए, उन्हें अपने स्वयं के आवासीय प्रयोजन के वाद घर की आवश्यकता थी । प्रतिपरीक्षा में कोई रिश्तेदार और कुटुंब सदस्यों की संख्या के बारे में उक्त अभिसाक्षी से कुछ नहीं पूछा गया है और इसलिए, शपथपत्र में किए गए प्रकथन उक्त अभिसाक्षी अर्थात् स्वर्ण सिंह की प्रतिपरीक्षा में स्थित सबूत पर्याप्त थे । यह सुव्यवस्थित है कि भू-स्वामी की सद्भाविक आवश्यकता के बारे में निकाले गए निष्कर्ष तथ्य के निष्कर्ष हैं और न उन्हें किसी आधार के बिना उलटा जा सकता है, इसमें अपीली न्यायालय हस्तक्षेप नहीं कर सकता है और यद्यपि प्रथम अपील है चूंकि विचारण न्यायालय के अपर जिला न्यायाधीश, श्री करणपुर के थे और इसमें विधि के सारवान् प्रश्न की अपेक्षा नहीं की जा सकती है क्योंकि जैसाकि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील के लिए अपेक्षित है, फिर भी इस न्यायालय का समाधान हो गया है कि डिक्री अपील के अधीन हस्तक्षेप करने योग्य नहीं है और प्रतिवादी-किराएदार द्वारा फाइल वर्तमान अपील में कोई गुणागुण या बल नहीं है ।" तद्नुसार और उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, विधिक प्रतिनिधि-रामेश्वर लाल पुत्र श्री स्वर्गीय मांगी लाल के माध्यम से अपीलार्थी-प्रतिवादी-मांगी लाल द्वारा

फाइल वर्तमान द्वितीय अपील खारिज की जाती है । (पैरा 5, 6 और 7)

अवलम्बित निर्णय

		पैरा
[2011]	2011 (3) डी. एन. जे. (राजस्थान) 1217 में प्रकाशित : **डेंजिल नाजरथ** बनाम **बलवंत सिंह के विधिक प्रतिनिधि और अन्य ;**	6
[2009]	(2009) 9 एस. सी. सी. 772 : **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** बनाम **सुपर मैक्स इंटरनेशनल प्राइवेट लि. और अन्य ;**	6
[2009]	(एस. बी. सी. एस. ए.) सं. 132/2009 : **प्रकाश के विधिक प्रतिनिधित्व** बनाम **पूर्णिमा ;**	6
[2008]	(2008) 5 एस. सी. सी. 287 : **सत्यावती शर्मा** बनाम **यूनियन आफ इंडिया ;**	6
[2005]	(2005) 8 एस. सी. सी. 252 : **सैत नागजी पुरुषोत्तम और कंपनी लिमिटेड** बनाम **विमलाभाई प्रभुलाल और अन्य ;**	6
[1996]	(1996) 5 एस. सी. सी. 353 : **प्रथीवा देवी** बनाम **टी. वी. कृष्णन** ।	6

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 की एस. बी. सिविल अपील सं. 374.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी-प्रतिवादी-किराएदार की ओर से	सर्वश्री सुदेश बंसल, विद्वान् काउंसेल के साथ आरती गोयल, विद्वान् काउंसेल
प्रत्यर्थी/वादी-भू-स्वामी की ओर से	श्री जे. पी. गुप्ता, विद्वान् काउंसेल

न्यायमूर्ति विनीत कोठारी – सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन वर्तमान द्वितीय अपील, सिविल अपील सं. 27/2011 "सूरजमल बनाम मांगी लाल विधिक प्रतिनिधि रामेश्वर लाल के माध्यम" में बेदखली और किराए के बकाए की वसूली के लिए अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा एक

वाद विद्वान् अपर जिला और सेशन न्यायाधीश, बीवर, जिला अजमेर द्वारा तारीख 1 जुलाई, 2015 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा विद्वान् प्रथम अपीली न्यायालय ने प्रत्यर्थी-वादी की अपील को आंशिक रूप से मंजूर कर ली थी और सिविल मूल वाद सं. 08/2003(315/993)(92/1989) "सूरजमल बनाम मांगी लाल विधिक प्रतिनिधि रामेश्वर लाल के माध्यम" में अपर सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड) सं. 1 बीवर के विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित बेदखली के लिए, तारीख 7 अक्तूबर, 2011 के निर्णय और डिक्री को अपास्त करते हुए, बीवर में स्थित वाद संपत्ति अर्थात् दुकान के संबंध में भू-स्वामी की सद्भाविक आवश्यकता के आधार पर बेदखली की डिक्री मंजूर कर ली थी जिसके द्वारा प्रतिवादी के प्रथम व्यतिक्रम के लाभ को विस्तारित करते हुए, बेदखली के लिए वादी-सूरजमल के पूर्वोक्त वाद को खारिज कर दिया था ।

2. विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 7 अक्तूबर, 2011 के आक्षेपित निर्णय और डिक्री में पारित निष्कर्षों और अंतिम आदेश के सुसंगत भाग वर्तमान संदर्भ के लिए इसमें नीचे उद्धृत है :–

> "......... इस प्रकार पत्रावली पर खुद प्रतिवादीगण के गवाह ने यह स्वीकार किया है कि वादी कपड़े की छपाई का कार्य करता है और डी ड2 ने भी वादी को कपड़े की छपाई का कार्य करना कहा है । परन्तु इस गवाह ने यह इनकार किया है कि वह फेरी लगाकर बेचता हो । वादी के द्वारा जो वादपत्र पेश किया है उसमें वादी ने यह तो कहा है कि वह कपड़ा बेचता है परन्तु इस वादपत्र में वादी के द्वारा यह नहीं कहा गया है कि वादी उक्त कपड़ा बेचने के फेरी लगाकर बेचता है । अतः ऐसी स्थिति में वादी द्वारा फेरी लगाकर कपड़ा बेचने के संबंध में जो साक्ष्य नहीं दिया गया है वह अभिवचनों से परे है । कपड़ों की छपाई का कार्य करने के संबंध में पी ड1 सूरजमल ने यह स्वीकार किया है कि मैं जिस घर में छपाई का कार्य करता हूं वह उड़ान चौक में स्थित है । उसके मालिक मेरे पिताजी हैं । इससे स्पष्ट है कि छपाई का कार्य करने के लिए वादी के पास परिसर उपलब्ध है । वादी का यह कथन नहीं है कि जिस परिसर में वह छपाई का कार्य कर रहा है वह उसके लिए छोटा पड़ता हो । इस गवाह ने यह भी कहा है कि हमारे पिताजी ने हिस्सा दिया हुआ है जो बंटवारा जुबानी किया हुआ है । इस गवाह ने यह कहा है कि मेरे पिताजी ने वादग्रस्त दुकान दी है और कुछ नहीं दिया जिसकी लिखा-

पढ़ी की रजिस्ट्री है जिसे पेश कर दूंगा परंतु वादी ने ऐसा कोई दस्तावेज पेश नहीं किया कि वादी के पिता ने मात्र वादग्रस्त दुकान ही दी हो और कुछ नहीं दिया हो । इस गवाह ने यह कहा है कि सूरजमल मेरे घर पर कपड़े पेटीकोट कभी-कभी छपाई का काम ले जाता है । सूरजमल कपड़े बेचता भी है और छपाई का काम भी करता है । सूरजमल साड़ियां ओढ़ने आदि पर सुनहरी की छपाई का काम करके दे जाता है । सूरजमल हमारे घर से साड़ियां ले जाता है । इस गवाह ने यह कहा कि साड़ियां मेरी पत्नी देती है । इस गवाह ने छपाई के संबंध में यह स्वीकार किया है कि छपाई का कार्य उड़ान चौक में अपने घर में ही करता है । मैंने उसको घर जाकर साड़ियां वगैरह छापते हुए देखा है जो करीब 8-10 साल से देख रहा हूं । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वादी सूरजमल के पास छपाई का कार्य करने के लिए स्वयं का परिसर उपलब्ध है, जिसमें वह मौजूदा समय में छपाई का कार्य कर रहा है । पी ड3 पारसमल ने अपनी जिरह में यह कहा है कि सूरजमल साइकिल पर कपड़े बांध कर फेरी लगाता है परंतु इस गवाह ने यह कहा कि मेरे सामने सूरजमल से हमारे घर पर ही साड़ियां, कपड़े वगैरह बेचते देखा है और आस-पास में भी बेचता है का कोई भी अभिवचन वादी के वादपत्र में नहीं है । इस गवाह ने अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि बाटा कंपनी के पास जो बिल्डिंग है उसके मालिक वादी के पिता थे लेकिन वहां मैंने प्रकाश को ही धंधा करता देखा है । पी ड4 प्रकाश जो अपने आपको कबीर बैंक का स्वामी बताता है वह अपनी जिरह में यह स्वीकार करता है कि वादग्रस्त दुकान की छत का मालिक सूरजमल है । इस प्रकार का वादी का भाई पी ड4 प्रकाशचंद ने भी यह कहा है कि छत का मालिक सूरजमल का होना बताता है । इस गवाह ने यह भी कहा है कि वादी ने कपड़ा फेरी लगाकर किसको बेचा, नाम नहीं बता सकता । इस गवाह ने यह भी कहा है कि मैं निश्चित समय नहीं बता सकता कि वादी फेरी लगाकर कपड़ा कब से बेच रहा है । पी ड5 देवेंद्र कुमार ने अपनी जिरह में यह कहा है कि मुझे वादी सूरजमल मिलकियत जायदाद की जानकारी नहीं है । यह गवाह तो बाटा कंपनी के पास वाली जायदाद भगवानदास वादी के भाई के द्वारा धंधा करना बताता है । इस गवाह ने यह भी कहा है कि सूरजमल वादी कपड़े की छपाई का काम कहां पर करता है उसकी जानकारी मुझे नहीं है । इस गवाह ने यह भी कहा है कि मेरे सामने वादी से अन्य

किसी व्यक्ति ने कपड़ों को नहीं खरीदा । इस प्रकार वादी के द्वारा जो कपड़ा छपाई करने और बेचे जाने के लिए वादग्रस्त दुकान की युक्तियुक्त व सद्भावी आवश्यकता होना बताया है वह साबित नहीं होती, क्योंकि वादी का छपाई का कार्य पूर्व से ही अपने घर में कर रहा है । वादी के द्वारा यह भी नहीं बताया गया है कि छपाई के कार्य से उसे कितनी आय हो जाती है । डी ड1 रामेश्वरलाल को जिरह में यह सुझाव दिया गया है कि वादग्रस्त दुकान के ऊपर वाली मंजिल में कबीर एंटरप्राइजेज के नाम से व्यवसाय हो रहा है और इस कबीर एंटरप्राइजेज की मालिक निर्मलादेवी हो । पी ड1 सूरजमल ने अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि वादग्रस्त दुकान के ऊपर की मालिक निर्मला भगवानदास जो एक मेरे भाई और निर्मलादेवी मेरी पत्नी है । अतः स्पष्ट है कि वादी की पत्नी निर्मलादेवी के नाम से वादग्रस्त दुकान के ऊपर व्यवसाय हो रहा है । डी ड1 रामेश्वरलाल का कहना है कि वादी स्वयं वादग्रस्त दुकान में कार्य कर रहा है । वादी की पत्नी निर्मलादेवी बतौर गवाह न्यायालय में उपस्थित नहीं हुई जो यह कहती कि वादग्रस्त दुकान के ऊपर वाली दुकान में वह स्वयं काम कर रहा है । इसकी पत्नी काम नहीं कर रही है । अन्यथा भी इस दुकान की स्वामी निर्मलादेवी है । इस संबंध में भी कोई दस्तावेज पेश नहीं किया गया है । वकील प्रतिवादी के द्वारा जो न्यायिक दृष्टांत नरेन्द्र/प्रदीप उपरोक्त पेश किया है उसमें माननीय उच्च न्यायालय ने यह माना है कि पत्नी के द्वारा फ्लैट का अर्जन किया गया है तो वादी की युक्तियुक्त व सद्भावी आवश्यकता नहीं मानी गई है । मौजूदा प्रकरण में वादी पत्नी निर्मलादेवी के नाम वादग्रस्त दुकान में कबीर एंटरप्राइजेज के नाम से व्यवसाय करना बताया है व पत्रावली पर वादी के द्वारा ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि वादी की पत्नी की अपनी कोई आय का स्वतंत्र स्रोत है और उससे यह दुकान वादी की पत्नी के द्वारा खरीद की गई हो । रिलीज डीड प्रदर्श ए 1 व ए 2 में यह स्पष्ट जाहिर होता है कि दावा दायर होने के बाद इन दोनों परिसर में वादी के द्वारा अपना हिस्सा परित्याग कर दिया है । तथापि, इन दोनों परिसर में वादी का हिस्सा काफी कम आता है परन्तु फिर भी अपना हिस्सा परित्याग करना वादी को किसी अन्य परिसर की आवश्यकता नहीं होना दर्शाता है । जहां तक दुकान खाली होने का प्रश्न है तो वादी के पास वादग्रस्त परिसर के ऊपर वाला परिसर अपनी पत्नी के नाम से है जबकि प्रतिवादीगण के पास अन्य कोई परिसर निजी नहीं

है केवल मात्र इस आधार पर मार्केट में ढूंढने पर किराए की अन्य दुकान उपलब्ध हो सकती है, यह नहीं माना जा सकता है कि दुकान खाली होने पर प्रतिवादीगण के मुकाबले वादी को अधिक कठिनाई होगी । जबकि वादी पूर्व से छपाई का कार्य अपने रिहायशी परिसर में कर रहा है । वादग्रस्त दुकान का मुख करीब 8 फीट चौड़ा होना बताया गया है । अतः उपरोक्त विवेचन को ध्यान में रखते हुए यह वादी यह विवाद्यक साबित करने में असफल रहा है । अतः यह विवाद्यक वादी के विरुद्ध व प्रतिवादीगण के पक्ष में तय किया जाता है ।

******

आदेश

19. अतः वादी का यह वाद निष्कासन की हद तक प्रतिवादी को किराया अदायगी में प्रथम व्यतिक्रमी घोषित करते हुए खारिज किया जाता है परंतु वादी प्रतिवादी रामेश्वरलाल से मिती चैत वदी 9 संवत् 2045 से दावा डिक्री तक की तारीख का किराया प्राप्त करने का अधिकारी घोषित किया जाता है । वादी यह किराया दौराने वाद न्यायालय में या बैंक खाते में जमा किराए की राशि में समायोजित करते हुए शेष किराया को ही प्राप्त करने का अधिकारी होगा । प्रतिवादी द्वारा पेश प्रतिवाद बाबत तय करने मानक किराया खारिज किया जाता है ।

पक्षकारान वाद व प्रतिवाद का खर्चा अपना-अपना वहन करेंगे । उपरोक्तानुसार डिक्री पर्चा मुर्तिब हो ।

हस्ता./-
(राजेश कुमार)
अति. सिविल न्यायाधीश (व.ख.) संख्या 1
ब्यावर"

3. प्रत्यर्थी-वादी द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय के तारीख 7 अक्तूबर, 2011 के पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल प्रथम अपील को विद्वान् प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा आंशिक रूप से मंजूर कर लिया गया था और तारीख 1 जुलाई, 2015 को बेदखली की डिक्री मंजूर कर ली थी । निष्कर्षों के सुसंगत भाग और विद्वान् प्रथम अपीली न्यायालय के अंतिम आदेश वर्तमान संदर्भ के लिए इसमें नीचे उद्धृत किए गए हैं –

"22. इस विवाद्यक के संबंध में वादी पी डब्ल्यू 1 सूरजमल ने

वादपत्र में वर्णित अभिवचनों की ताईद करते हुए, यह कथन किया है कि मैं कपड़े बेचने व छपाई का काम करता हूं और फेरी लगाकर कपड़े बेचता हूं । मेरे को वादग्रस्त दुकान की स्वयं के कार्य हेतु आवश्यकता है । विवादित दुकान के अतिरिक्त मेरे पास धंधा करने के लिए अन्य कोई दुकान नहीं है । दुकान खाली नहीं होने की स्थिति में मुझे व मेरे परिवार को अधिक कठिनाई व असुविधा होगी । इसके विपरीत प्रतिवादी को कोई कठिनाई होगी, क्योंकि उसे दूसरी दुकान मिल सकती है । वादी के अन्य साक्षी पी ड3 पारसमल, पी ड4 प्रकाशचंद एवं पी ड5 देवेन्द्र ने भी वादी सूरजमल के उक्त कथनों की ताईद करते हुए, वादी को स्वयं के कपड़े के व्यवसाय के लिए विवादित दुकान की आवश्यकता होने का कथन किया है ।

23. वादी की उक्त साक्ष्य के खंडन के प्रतिवादपत्र में वर्णित तथ्यों को दोहराते हुए, पी ड1 प्रतिवादी रामेश्वरलाल ने शपथपत्र में यह कथन किया है कि वादी ने वादग्रस्त दुकान अपनी व्यवसाय के लिए नहीं बल्कि संचित पूंजी का उपयोग करने के लिए सस्ती दर पर मिलने के कारण क्रय की है । प्रतिवादी रामेश्वरलाल का यह भी कहना है कि वादी पहले से ही पाली बाजार में बाटा शू कंपनी के पास वाली स्वयं की निजी संपत्ति में वादी नीचे की दुकान में कपड़े की छपाई का कार्य करता है तथा ऊपर निवास करता है । आधुनिक युग में छपाई का कार्य बंद हो जाने से वादी ने छपाई का काम बंद करके गिफ्ट आईटम व खिलौने का काम शुरू कर दिया है । वादी को दुकान की कोई आवश्यकता नहीं है, इसी कारण वादी ने अपनी पारिवारिक संपत्ति में अपने हिस्से का परित्याग भी अपने भाईयों के हक में कर दिया है । उनका कहना है कि विवादित दुकान की वादी को कोई आवश्यकता नहीं है, इसके विपरीत दुकान प्रतिवादी के परिवार के भरणपोषण का एक मात्र सहारा होने से दुकान खाली करने पर वादी की तुलना में प्रतिवादी को अधिक कठिनाई होगी । प्रतिवादी के गवाहान डी ड अब्दुल शकूर, डी ड3 चंपालाल भी विवादित दुकान की वादी को कोई आवश्यकता नहीं होना कथन किया है । वादी की ओर से बाटा शू कंपनी के पास वाली दुकान के संबंध में यह बताया गया है कि यह दुकान उसकी पत्नी निर्मलादेवी की है और वही उसमें खिलौने आदि का व्यवसाय कर रही है ।

24. इस प्रकार उपरोक्तानुसार साक्ष्य के विवेचन से यह तथ्य

मुख्य रूप से उभर कर सामने आता है कि जहां तक वादी सूरजमल ने अपने कपड़े के व्यवसाय के लिए विवादित दुकान की स्वयं के लिए आवश्यकता बतायी है । वही प्रतिवादी का कहना है कि वादी सूरजमल ने कपड़े की छपाई का काम बंद कर दिया है और वह विवादित दुकान के ऊपर कबीर एंटरप्राइजेज के नाम से व्यवसाय कर रहा है । जबकि वादी सूरजमल ने कबीर एंटरप्राइजेज नाम का व्यवसाय उसकी पत्नी निर्मला देवी द्वारा करना बताया है । स्वयं पत्नी के साक्ष्य में उपस्थित नहीं होने के आधार पर, पत्नी के द्वारा किए जा रहे व्यवसाय को वादी का व्यवसाय मानते हुए, वह विधिसम्मत नहीं माना जा सकता है । क्योंकि एक पत्नी को पति से अलग अपना स्वतंत्र व्यवसाय करने का पूरा अधिकार होता और पत्र के व्यवसाय में सहायता करने के आधार पर, उस व्यवसाय को पति का नहीं माना जा सकता है । इस संबंध में अधीनस्थ न्यायालय ने न्यायिक दृष्टांत 2005 सी जे रेंट कंट्रोल पेज 115 नरेंद्र **बनाम** प्रदीप कुमार को आधार मानते हुए, विवादित दुकान की वादी की निजी व सद्भाविक आवश्यकता नहीं मानते हुए, जो निष्कर्ष निकाला है, वह विधिसम्मत नहीं है, क्योंकि उक्त नजीर में मामला रिहायशी फ्लैट से संबंधित था और किराएदार की पत्नी को फ्लैट अर्जित होना पति द्वारा अर्जित माना गया है । जबकि हस्तगत मामला व्यवसायिक परिसर से संबंधित है और एक पत्नी को पति से अलग स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में व्यवसाय करने का पूरा अधिकार है और पत्नी का व्यवसाय पति का नहीं माना जा सकता है । अतः उक्त नजीर हस्तगत मामले पर चस्पा नहीं होती है ।

25. इसके अतिरिक्त अपीलार्थी/वादी की ओर से प्रस्तुत नजीर 2004 सी जे रेंट कंट्रोल पेज 544 यूनियन ऑफ इंडिया **बनाम** पार्वती देवी में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिमत निर्धारित किया है कि भू-स्वामी अपनी आवश्यकता का सर्वोत्तम निर्णायक है, किराएदार उसे नहीं कह सकता है कि भू-स्वामी किसी प्रकार से रहे या व्यवसाय करे । इसके अतिरिक्त अन्य नजीर 199 डी एन जे राजस्थान पेज 194 महेन्द्र दत्त दुबे **बनाम** बी एल बंसल में भी माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि मकान-मालिक ही अपने परिसर के उपयोग का सर्वोत्तम निर्णायक हो सकता है । जहां तक प्रत्यर्थी/प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत नजीर का प्रश्न है, नजीरों का ससम्मान अवलोकन करने के पश्चात् मैं यह पाता

हूं कि तथ्यों की भिन्नता के कारण हस्तगत मामले में चस्पा नहीं होती है ।

26. अतः उपरोक्त विवेकानुसार अपीलार्थी/वादी विवादित दुकान के लिए अपने स्वयं के कपड़े के व्यवसाय के लिए निजी व सद्भाविक आवश्यकता को साबित करने में पूरी तरह सफल रहा है । जहां तक तुलनात्मक कठिनाई का प्रश्न है, वादी सूरजमल का यह कहना है कि विवादित दुकान के आस-पास दुकान किराए पर उपलब्ध हो सकती है । जबकि प्रतिवादी डी ड1 रामेश्वरलाल ने अपने बयानों में यह स्वीकार किया है कि उसने दावे के दौरान अन्य दुकान किराए पर लेने या खरीदने का प्रयास नहीं किया । वादी के अधिवक्ता द्वारा ब्यावर में स्थित हस्तगत वाद के दायर होने के पश्चात् नए बने मार्केटों व उनमें किराए हेतु उपलब्ध दुकानों की बाबत प्रश्न पूछे जाने पर प्रतिवादी डी ड1 रामेश्वरलाल ने अनभिज्ञता जाहिर की है । की ओर प्रस्तुत नजीर 1996 (3) डब्ल्यू. एल. एन. राज. पेज 607 गोविंद प्रसाद **बनाम** बंगाल में माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा नजीर 1996 (6) जजमेंट टुडे पेज 468 को उद्धरित करते हुए यह अभिमत प्रकट किया है कि प्रतिवादी ने दूसरा परिसर अपने व्यवसाय के लिए देखने का प्रयास नहीं किया है । इन परिस्थितियों में यदि विवादित दुकान के निष्कासन की डिक्री पारित नहीं की जाती तो प्रतिवादी की अपेक्षा वादी को ज्यादा हार्डशिप होगी ।

27. उपरोक्त विवेचनानुसार अपीलार्थी/वादी यह साबित करने में पूरी तरह से सफल रहा है कि विवादित परिसर की उसे अपने कपड़े के व्यवसाय के लिए युक्तियुक्त व सद्भाविक आवश्यकता है तथा दुकान खाली नहीं होने पर तुलनात्मक असुविधा एवं कठिनाई उसे ज्यादा होगी ।

28. उपरोक्त विवेचन की रोशनी एवं वादी की ओर से प्रस्तुत नजीरों में प्रतिपादित विधिक मतों के परिप्रेक्ष्य में विवाद्यक सं. 5 के बाबत अधीनस्थ न्यायालय का निष्कर्ष विधिक एवं तथ्यात्मक रूप से सही नहीं माना जा सकता है और अपास्त किए जाने योग्य है । अतः विवाद्यक सं. 5 को अपीलार्थी/वादी के पक्ष में तय किया जाता है ।

29. अतः उपरोक्तानुसार अधीनस्थ न्यायालय ने विवाद्यक सं. 5 के संबंध में विवादित परिसर की अपीलार्थी/वादी को स्वयं व्यवसाय

के लिए निजी व सद्भाविक आवश्यकता नहीं होने का जो निष्कर्ष अपने प्रश्नगत निर्णय में निकाला है, वह विधि एवं तथ्यों के विपरीत होने के साथ-साथ न्यायिक सिद्धांतों के अनुरूप नहीं होने से अपास्त किए जाने योग्य है तथा अपीलार्थी/वादी की ओर से प्रस्तुत हस्तगत अपील आंशिक रूप से स्वीकार किए जाने योग्य है ।

*****

आदेश

30. अतः अपीलार्थी/वादी सूरजमल द्वारा प्रस्तुत यह अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाकर अधीनस्थ न्यायालय के प्रश्नगत निर्णय दिनांक 7 अक्तूबर, 2011 को "वादी का वाद की बाबत निष्कासन खारिज किए जाने की हद तक" अपास्त किया जाकर, विवादित परिसर की अपीलार्थी/वादी को निजी युक्तियुक्त आवश्यकता होने के आधार पर, अपीलार्थी/वादी का वाद की बाबत निष्कासन प्रत्यर्थी/प्रतिवादी के विरुद्ध डिक्री किया जाना है । प्रत्यर्थी/प्रतिवादी को यह आदेश दिया जाता है कि इस आदेश से दो माह की अवधि में अपीलार्थी/वादी को परिसर खाली कर रिक्त कब्जा संभला दे । परिसर का रिक्त कब्जा प्राप्त होने तक अपीलार्थी/वादी, प्रत्यर्थी/प्रतिवादी से 125/- रुपए प्रतिमाह के हिसाब से हर्जाना इस्तेमाल प्राप्त करने का भी अधिकारी होगा । कन्फर्म डिक्री पर्चा तैयार हो । निर्णय की सत्य प्रति सहित अधीनस्थ न्यायालय की पत्रावली अविलंब भेजी जाए । खर्चा पक्षकारान अपना-अपना वहन करेंगे ।

हस्ता./-
(पूरण कुमार शर्मा)
अपर जिला न्यायाधीश सं.1
ब्यावर"

4. विद्वान् प्रथम अपीली निचले न्यायालय के निर्णय और बेदखली डिक्री से व्यथित होकर, वर्तमान अपीलार्थी/प्रतिवादी ने तारीख 18 अगस्त, 2015 को इस न्यायालय में वर्तमान द्वितीय अपील फाइल की है जिसे अभी स्वीकृति के लिए सुना जाना है ।

5. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिलेख पर रखी गई सामग्री का परिशीलन किया जिसमें वादी के बेदखल करने के वाद को डिक्री करने के लिए विद्वान् प्रथम निचले अपीली न्यायालय द्वारा दिए गए

कारण सम्मिलित हैं, इस न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि अपीलार्थी/प्रतिवादी द्वारा फाइल वर्तमान द्वितीय अपील खारिज किए जाने योग्य है, क्योंकि इसमें विद्वान् प्रथम निचले अपीली न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और डिक्री से कोई विधि के सारवान् प्रश्न उद्भूत होना नहीं कहा जा सकता है ।

6. भू-स्वामी का अपनी आवश्यकता के लिए उत्तम निर्णायक होने के बारे में सुस्थिर विधिक प्रास्थिति, निम्नलिखित निर्णयज मामलों से चित्रित होते हैं :–

(i) माननीय उच्चतम न्यायालय ने सैत नागजी पुरूषोत्तम और कंपनी लिमिटेड **बनाम** विमलाभाई प्रभुलाल और अन्य (2005) 8 एस. सी. सी. 252 वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां बेदखली भू-स्वामी की सद्भाविक आवश्यकता होती है, जिस सुसंगत तारीख पर उक्त आवश्यकता का न्यायनिर्णयन किया जाना है वह फाइल करने की तारीख होती है और मुकदमे की अवधि के दौरान लिया गया स्थान पश्चात्वर्ती घटनाएं जैसे अन्य क्रियाकलापों में लगाना या प्रश्नगत परिसर आवश्यकता है जिसके लिए व्यवसाय ऐसी सद्भाविक आवश्यकता को उलटता नहीं है अन्यथा ऐसी पश्चात्वर्ती घटनाएं ऐसी आवश्यकता पूरी तरह ग्रहण के संबंध में प्रकृति और आयाम जैसे हैं और यह पूरी तरह से महत्व खो देते हैं और मुकदमे की प्रक्रिया जब अंतिम प्रक्रम तक पहुंचती है तो स्वामी को अनुतोष से इनकार करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है ।

(ii) माननीय उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ ने प्रथीवा देवी **बनाम** टी. वी. कृष्णन (1996) 5 एस. सी. सी. 353 वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि स्वामी अपनी आवासीय आवश्यकता का उत्तम निर्णायक होता है, निम्नलिखित मत व्यक्त है –

> "स्वामी अपनी आवासीय आवश्यकता का उत्तम निर्णायक होता है । वह मामले में पूरी तरह से स्वतंत्र होता है । यह न्यायालयों का विषय क्षेत्र नहीं है कि वह भू-स्वामी को निर्देश करे कि कैसे और किस तरीके से, उसे रहना चाहिए या उसके स्वयं के आवासीय स्तर को विहित करना चाहिए । उच्च न्यायालय को अपीलार्थी की आयु के बारे में और उसकी आयु

पर विचार करने की उत्सुकता रखने के बजाय उसकी देखभाल करने की आवश्यकता पर विचार करना चाहिए । उसे अपीलार्थी ही समझ सकता है न कि उच्च न्यायालय । उच्च न्यायालय द्वारा दी गई अनावश्यक सलाह अनुचित थी । इसमें यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि उसे कुटुंब मित्र के घर में रहने का किसी प्रकार अधिकार, जो भी हो, था । दूसरी ओर, वह केवल मौन सहमति से ही वहां थी । ऐसी कोई विधि नहीं है जो भू-स्वामी को अपनी संपत्ति का लाभकारी आनंद लेने से वंचित करता हो । उच्च न्यायालय ने यह अधिकथित करने में गलती की है कि इसका परीक्षण, वैकल्पिक आवास की उपलब्धता है और न कि अधिनियम की धारा 14 (1)(ई) के अधीन भू-स्वामी के दावे के सद्भाविक न्यायनिर्णयन में ऐसे व्यवसाय का विधिक अधिकार है । वैकल्पिक आवास की उपलब्धता पर विचार करते हुए, न्यायालय को न केवल इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या ऐसा आवास उपलब्ध है अपितु इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि क्या भू-स्वामी को ऐसे आवास का विधिक अधिकार भी है । अपीलार्थी ने अधिनियम की धारा 14(1)(ई) के अधीन पट्टांतरित परिसरों की अपनी सद्भाविक व्यक्तिगत आवश्यकता को सिद्ध कर दिया था और उसके दावे को इस आधार पर नामंजूर नहीं किया जा सकता है कि वह परिस्थितियों के कारण अपने कुटुंब मित्र के साथ मेहमान के रूप में रह रही थी ।"

(iii) इसके अतिरिक्त, जैसा कि सत्यावती शर्मा **बनाम** यूनियन आफ इंडिया (2008) 5 एस. सी. सी. 287 वाले मामले में, दो न्यायाधीशों की खंडपीठ के नवीनतम निर्णय में स्वयं माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, जिसकी बाद में महाराष्ट्र राज्य और अन्य **बनाम** सुपर मैक्स इंटरनेशनल प्राइवेट लि. और अन्य (2009) 9 एस. सी. सी. 772 वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ द्वारा पुनः अभिपुष्टि की गई है जिसमें उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट तौर पर उल्लिखित किया है यद्यपि उच्चतम न्यायालय का झुकाव वर्ष 1990 के आगे के पूर्व भू-स्वामी से वर्ष 1950 से 1990 की ओर रहा है । **सत्यावती शर्मा** (उपर्युक्त) और **सुपर मैक्स इंटरनेशनल प्राइवेट लि.** (उपर्युक्त)

वाले मामलों में निर्णयों के सुसंगत उद्धरण वर्तमान संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत है –

"12. किराया नियंत्रण विधानों का निर्वचन करते हुए, न्यायालयों का झुकाव निश्चित तौर पर बदल गया है । वर्ष 1950 के दशक से वर्ष 1990 के शुरुआती दौर के निर्णयों के विश्लेषण से यह दर्शित होता है कि कई मामलों में किराएदार के पक्ष में न्यायालयों के निर्वचन में भारी झुकाव रहा है जिससे किराएदार को फायदा होता था । इन मामलों में, न्यायालय ने लगातार यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रत्येक किराया नियंत्रण विधान का सर्वोपरि उद्देश्य उन भू-स्वामियों के शोषण के विरुद्ध किराएदारों को संरक्षा प्रदान करने का रहा है जो अत्यधिक अभाव की पृष्ठभूमि में निवास या व्यवसाय करने के लिए मकान की उनकी आवश्यकता को देखते हुए अनुचित लाभ उठाने की ईप्सा रखते थे । तथापि, विभिन्न प्रवृत्ति बाद के निर्णयों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है ।"

सुपर मैक्स इंटरनेशनल प्राइवेट लि. (उपर्युक्त) वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय के निर्णय का सुसंगत पैरा 71 वर्तमान संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत है –

"71. हम **सत्यावती शर्मा** (उपर्युक्त) वाले मामले में, अभिव्यक्त दृष्टिकोणों की पुनः अभिपुष्टि करते हैं और भू-स्वामी और किराएदार के बीच रिश्तों को संतुलित और वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण के लिए आवश्यकता पर जोर देते हैं । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि न्यायालय का भू-स्वामी के पक्ष में झुकाव होना चाहिए परन्तु इस धारणा के लिए कोई गुंजाइश नहीं है कि सभी किराएदार किसी भी वर्ग के रूप में हो भयानक परिस्थितियों में और सभी परिस्थितियों के अधीन न्यायालय के संरक्षण की निराशा में है । (वर्तमान अपीलार्थी का मामला जो मुंबई फोर्ट में स्थित एक बिल्डिंग में 9000 वर्ग फीट क्षेत्र जिसका किराया 5236.58 के साथ 515.35 रुपए की दर से अधिक बहुतायत बिंदु कब्जे में है) ।"

(iv) प्रकाश के विधिक प्रतिनिधि **बनाम** पूर्णिमा (एस. बी. सी. एस. ए.) सं. 132/2009, निर्णीत तारीख 11.5.2011 वाले मामले में,

इस न्यायालय ने यह जोर दिया है कि भू-स्वामी निम्नलिखित निबंधनों में अपनी आवश्यकता का उत्तम निर्णायक होता है –

"5. प्रत्यर्थी-वादियों के विद्वान् काउंसेल श्री एस. एल. पुंगालिया ने इन दलीलों का बलपूर्वक विरोध किया था और यह तर्क दिया कि वर्तमान द्वितीय अपील में कोई विधि का सारवान् प्रश्न उद्भूत नहीं होता है और निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए तथ्यों के निष्कर्ष ठोस और सुसंगत साक्ष्य पर आधारित हैं और द्वितीय अपील खारिज किए जाने योग्य है चूंकि भू-स्वामी की सद्भाविक आवश्यकता विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष पूर्णरूप से सिद्ध हुई थी और माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों की शृंखला के अनुसार, इसमें किराएदार को भू-स्वामी को निर्देश देने के लिए नहीं है कि कैसे और किस तरीके में उसे अपने व्यवसाय स्थान के लिए अपनी सद्भाविक आवश्यकता से संतुष्ट होना चाहिए और निचले न्यायालय द्वारा पाए गए तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि वादियों का जीविका स्रोत ही एस. टी. डी. पी. सी. ओ. बूथ था जिसे वह वर्तमान में सीढ़ियों के नीचे चला रहा है और उसे इस व्यवसाय को वहां से बाहर निकालने के लिए परिसर की अधिक आवश्यकता थी ।

(v) डेंजिल नाजरथ **बनाम** बलवंत सिंह के विधिक प्रतिनिधि और अन्य (2011) 3 डी. एन. जे. (राज.) 1217 में प्रकाशित वाले मामले में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है जो इस प्रकार है –

"पक्षकारों के काउंसेलों को सुनते हुए और आक्षेपित निर्णय का परिशीलन करते हुए तथा विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए साक्ष्य से, इस न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित भू-स्वामी की सद्भाविक आवश्यकता के बारे में तथ्य के निष्कर्षों को किसी भी प्रकार से उलटा नहीं जा सकता है । वे ठोस कारणों और साक्ष्य के आधार पर हैं और आक्षेपित निर्णय में कोई हस्तक्षेप प्रतिवादी-किराएदार की वर्तमान प्रथम अपील में किया जाना अपेक्षित नहीं है । स्वामी-वादी, स्वर्ण सिंह ने अपने शपथपत्र के पैरा 7 और 8 में यह स्पष्ट रूप से अभिकथन किया है कि वादी के कुटुंब के लिए उपलब्ध घर

तीन कमरों का था और उनके दो विवाहित भाइयों और तीन विवाहित बहनों और माता-पिता के लिए बहुत ही छोटा था, उक्त आवास अपेक्षा के हिसाब से बहुत ही छोटा था और इसलिए, उन्हें अपने स्वयं के आवासीय प्रयोजन के वाद घर की आवश्यकता थी । प्रति-परीक्षा में कोई रिश्तेदार और कुटुंब सदस्यों की संख्या के बारे में उक्त अभिसाक्षी से कुछ नहीं पूछा गया है और इसलिए, शपथपत्र में किए गए प्रकथन उक्त अभिसाक्षी अर्थात् स्वर्ण सिंह की प्रतिपरीक्षा में स्थित सबूत प्रर्याप्त थे । यह सुव्यवस्थित है कि भू-स्वामी की सद्भाविक आवश्यकता के बारे में निकाले गए निष्कर्ष तथ्य के निष्कर्ष हैं और न उन्हें किसी आधार के बिना उलटा जा सकता, इसमें अपीली न्यायालय हस्तक्षेप नहीं कर सकता है और यद्यपि प्रथम अपील है चूंकि विचारण न्यायालय के अपर जिला न्यायाधीश, श्री करणपुर के थे और इसमें विधि के सारवान् प्रश्न की अपेक्षा नहीं की जा सकती है क्योंकि जैसाकि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील के लिए अपेक्षित है, फिर भी इस न्यायालय का समाधान हो गया है कि डिक्री अपील के अधीन हस्तक्षेप करने योग्य नहीं है और प्रतिवादी-किराएदार द्वारा फाइल वर्तमान अपील में कोई गुणागुण या बल नहीं है ।"

7. तद्नुसार और उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, विधिक प्रतिनिधि-रामेश्वर लाल पुत्र श्री स्वर्गीय मांगी लाल के माध्यम से अपीलार्थी-प्रतिवादी-मांगी लाल द्वारा फाइल वर्तमान द्वितीय अपील खारिज की जाती है । खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है । इस आदेश की एक प्रति दोनों निचले न्यायालयों और संबंधित पक्षकारों को तुरंत भेजी जाए ।

8. मामले की परिस्थितियों में, यह निर्देश दिया जाता है कि अपीलार्थी-प्रतिवादी-किराएदार एक वर्ष की अवधि अर्थात् 28 फरवरी, 2017 या उससे पूर्व प्रत्यर्थी-वादी-भू-स्वामी को वाद दुकान का कब्जा खाली करके शांतिपूर्वक सौंपेंगे और मार्च, 2016 के मास आरंभ से 5,000/- रुपए प्रति मास (केवल पांच हजार प्रति मास) अन्तकालीन लाभ देंगे और वह प्रत्यर्थी-वादी को अगले महीने की प्रत्येक 15 तारीख तक या अग्रिम में अंतकालीन लाभ का निरंतर संदाय करते रहेंगे और यदि वे एक वर्ष की अवधि तक अंतकालीन लाभ का संदाय करने में कोई चूक करते

हैं, जैसा कि उपर्युक्त में उल्लेख किया गया है, तो वह बेदखली के लिए तैयार रहेंगे और बेदखली की डिक्री तुरंत निष्पादित हो जाएगी । अपीलार्थी-प्रतिवादी-किराएदार आज से तीन मास के भीतर प्रत्यर्थी-वादी-भू-स्वामी को किराए का बकाया और अंतकालीन लाभ आदि सभी का संदाय करेगा, अन्यथा वह 9 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से वहन करेगा । अपीलार्थी-प्रतिवादी-किराएदार वाद परिसरों के कब्जे के भाग को उप-किराए पर नहीं देगा जैसा उपर्युक्त में उल्लिखित किया गया है या किसी और पक्ष में किसी संबंधित भाग को और पूर्वोक्त अवधि के दौरान उसमें किसी तृतीय पक्षकार का हित सृजन नहीं करेगा और यदि वह ऐसा करता है तो वह शून्य समझी जाएगी । अपीलार्थी-प्रतिवादी तीन मास के भीतर विचारण न्यायालय में और इस न्यायालय में शपथपत्र के साथ पूर्वोक्त शर्तों को निगमित करते हुए उससे संबंधित एक प्रति लिखित वचनपत्र भेजेगा । इससे यह स्पष्ट हो जाएगा कि यदि वाद परिसरों के कब्जा को शांतिपूर्वक खाली करके एक वर्ष की अवधि के भीतर प्रत्यर्थी-वादी-भू-स्वामी को नहीं सौंपता है, जैसा कि उपर्युक्त में उल्लिखित किया गया है, आज से या अंतकालीन लाभ का संदत्त नहीं करता है जैसा उपर्युक्त में निदेश दिया गया है तो सामान्य क्रम में डिक्री को शीघ्र निष्पादन के अतिरिक्त, प्रत्यर्थी-वादी-भू-स्वामी को इस न्यायालय की अवमानना अधिकारिता का अवलंब लेने का भी हक होगा ।

द्वितीय अपील खारिज की गई ।

मही./क.

दीना नाथ (मार्फत उसके विधिक प्रतिनिधि विशाल पुरी)

बनाम

मुन्नी लाल

तारीख 4 मई, 2016

न्यायमूर्ति अजय मोहन गोयल

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 65] – द्वितीय अपील – प्रश्नगत सम्पत्ति में प्रतिकूल कब्जे के आधार पर हक का दावा करना – कब्जे का दावा, शान्तिपूर्ण, खुला, सार्वभौमिक, अनन्य, निर्बाधित और कानूनी अवधि 12 वर्ष से अधिक अवधि तक निरन्तर रहना साबित नहीं होना – प्रतिकूल कब्जे के आधार पर हक खारिज होना – यदि कोई व्यक्ति किसी प्रश्नगत संपत्ति में प्रतिकूल कब्जे के आधार पर हक प्राप्त करने का दावा करता है तो उसे यह साबित करना होगा कि वह प्रश्नगत संपत्ति में, शान्तिपूर्ण, खुला, सार्वभौमिक, अनन्य, निर्बाधित और कानूनी अवधि 12 वर्षों से अधिक समय से निरन्तर कब्जे में है अन्यथा प्रतिकूल कब्जे के आधार पर प्रश्नगत सम्पत्ति में उसका दावा कायम रखे जाने योग्य नहीं होगा ।

वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी/वादी द्वारा घोषणा, स्थायी व्यादेश और कब्जे के लिए इस प्रभाव का एक वाद फाइल किया गया था कि वादी, वाद भूमि के कब्जे में है और प्रतिवादी का किसी भी प्रकार से उसमें कोई संबंध नहीं है और प्रतिवादी को वाद भूमि के ऊपर वादी के कब्जे में हस्तक्षेप करने से अवरुद्ध कर दिया जाए और यह भी कि वाद भूमि पर प्रतिवादी का कब्जा दर्शित करने वाले राजस्व प्रविष्टि भी जाली, अकृत और आरम्भतः शून्य है और वादी पर बाध्यकारी नहीं है और अभिखंडित तथा संशोधित किए जाने योग्य है । वाद इस प्रभाव के लिए भी फाइल किया गया था कि यदि वादी कब्जे में नहीं पाया जाता है तो इसमें के प्रार्थना-ए में वर्णित खाली भूमि के कब्जे के लिए वादी के पक्ष में और प्रतिवादी के विरुद्ध डिक्री पारित किया जाए । विद्वान् निचले न्यायालय ने तारीख 6 मई, 2004 के निर्णय द्वारा वाद डिक्री कर दिया था । उक्त निर्णय और डिक्री को अपील के माध्यम से वर्तमान अपीलार्थी/प्रतिवादी के हित-पूर्वाधिकारी द्वारा चुनौती दी गई थी जिसे विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा तारीख 22

अगस्त, 2006 के निर्णय और डिक्री के माध्यम से खारिज कर दिया गया था । इससे व्यथित होकर, वर्तमान अपीलार्थियों के हित-पूर्वाधिकारियों ने वर्तमान नियमित अपील फाइल की । श्री दीना नाथ की अपील लम्बित रहने के दौरान मृत्यु हो गई । उसके विधिक उत्तराधिकारी अभिलेख पर लाए गए, जिसके पश्चात् वे वर्तमान अपीलार्थी हैं । न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वादी का पक्षकथन यह है कि वह वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी है । तथापि, बंदोबस्त के समय पर प्रतिवादी ने उसे बिना बताए मिसल हैकियत में अपने पक्ष में कब्जे की प्रविष्टि करवा ली । तथापि, वादी के अनुसार, प्रतिवादी कभी भी वाद भूमि के कब्जे में नहीं रहा और वाद फाइल किए जाने के समय ही वादी बलपूर्वक उसका कब्जा लेने में सफल रहा था । प्रतिवादी की दलील यह है कि वह लम्बे समय से वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी है और वस्तुतः वाद भूमि पर उसका कब्जा 30 वर्ष से अधिक पुराना है और उक्त कब्जा, वादी के विरुद्ध प्रतिकूल, निरन्तर और निर्बाधित हो गया है । इसलिए, प्रतिवादी के अनुसार, उसे प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से उसे सुनिश्चित अधिकार प्राप्त हो गया और उसके अनुसार, बंदोबस्त के समय पर तैयार मिसल हैकियत में उसके पक्ष में अभिलिखित कब्जे की प्रविष्टि वस्तुतः सही तथ्यात्मक प्रास्थिति प्रदर्शित करती है । विद्वान् निचले न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वादी, वाद भूमि का स्वामी है और प्रतिवादी ने वाद फाइल किए जाने के ठीक पूर्व बलपूर्वक उसे कब्जे में ले लिया था । विद्वान् निचले न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी पिछले 30 वर्षों से अधिक समय से वाद भूमि पर अपने प्रतिकूल कब्जे को सिद्ध करने में असफल रहा है जैसा कि उसने दावा किया है । तद्नुसार, विद्वान् निचले न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी, प्रतिकूल कब्जे के आधार पर वाद भूमि पर अपने हक को सिद्ध नहीं कर सका है । विद्वान् निचले न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि वादी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य से यह प्रकट होता है कि प्रतिवादी ने वाद फाइल किए जाने के समय पर वादी से वाद भूमि का कब्जा बलपूर्वक लिया है । दूसरी ओर, विद्वान् निचले न्यायालय के अनुसार, प्रतिवादी ने अपने इस पक्षकथन अर्थात् 30 वर्षों से अधिक वाद भूमि पर कब्जा होना, के समर्थन में स्थानीय किसी स्वतंत्र साक्षी की परीक्षा नहीं कराई है । विद्वान् निचले न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि एक तरफ तो प्रतिवादी 30 वर्षों से अधिक समय से वाद भूमि पर अपने

कब्जे का दावा कर रहा है जबकि वर्ष 1978-1979 के लिए जमाबंदी की प्रतिलिपि प्रदर्श पी-2 प्रतिवादी के बयान का समर्थन नहीं करता है क्योंकि उक्त जमाबंदी में प्रतिवादी का कब्जा अभिलिखित नहीं था । यह मात्र वर्ष 1982-1983 में तैयार मिसल हैकियत प्रदर्श पी-3 में ही अभिलिखित था कि प्रतिवादी का कब्जा अभिलिखित हुआ है । विद्वान् निचले न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि यदि प्रतिवादी का वाद भूमि पर वस्तुतः कब्जा, जैसा कि उसके द्वारा अभिलिखित किया गया है, रहा है तो इस प्रभाव की प्रविष्टियां पूर्ववर्ती जमाबंदियों में अभिलिखित होनी चाहिए थी । इन आधारों पर, विद्वान् निचले न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि मिसल हैकियत में प्रतिवादी के कब्जे के बारे में प्रविष्टियां काल्पनिक और जाली हैं क्योंकि इनका कोई तथ्यात्मक आधार नहीं हैं । विद्वान् निचले न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी, प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से सुनिश्चित हक के अवयवों अर्थात् असली स्वामी के विरुद्ध खुला, शांतिपूर्ण और प्रतिकूल कब्जे को साबित नहीं कर सका है । यह भी अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि यह उपधारणा कर भी ली जाती है कि वर्ष 1981-82 में बंदोबस्त के समय पर प्रतिवादी, वाद भूमि के कब्जे में था तो भी प्रतिकूल आशय के अभाव में प्रतिवादी का कब्जा, पक्षद्रोही और प्रतिकूल कब्जे के निबंधनों में नहीं कहा जा सकता है । विद्वान् निचले न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि अभिलेखों के अनुसार, वाद भूमि, पृथक् सह-अंशधारियों के बीच संयुक्त थी और वादी ने अविभाजित हिस्से का क्रय किया था । विभाजन, वर्ष 1990 के पश्चात् और यह वर्ष 1994-95 के लिए जमाबंदी प्रदर्श पी-4 के तैयार होने के पूर्व पूरा हुआ था । तारीख 12 अगस्त, 1991 का नामांतरण सं. 306, उक्त भूमि के बारे में वादी के पक्ष में मंजूर हुआ था और इस तथ्य को प्रतिवादी द्वारा भी विनिर्दिष्टतया अपने लिखित कथन में विवादित नहीं किया गया है । इन आधारों पर, विद्वान् निचले न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह सिद्ध हो गया है कि वर्ष 1990-1991 के पूर्व वाद भूमि, पृथक् सह-अंशधारियों, जिनमें वादी सम्मिलित था, के संयुक्त कब्जे में थी । इसलिए, प्रतिवादी, उस तारीख से प्रतिकूल कब्जे का दावा कर रहा था जब वाद भूमि कतिपय सह-अंशधारियों के बीच संयुक्त थी जिसमें यह समादेश था कि प्रतिकूल कब्जे के आधार पर हक का अनुतोष प्राप्त करने के अनुक्रम में, प्रतिवादी को वाद भूमि के सभी सह-अंशधारियों के विरुद्ध पृथक् वाद फाइल करना चाहिए था क्योंकि अभिकथित प्रतिकूलता के आरम्भिक प्रक्रम

से वादी, वाद भूमि का पूर्ण स्वामी नहीं था । इन निष्कर्षों के आधार पर, विद्वान् निचले न्यायालय ने उपर्युक्त पहले ही अभिकथित निबंधनों में वाद डिक्री कर दिया था । विद्वान् अपील न्यायालय ने अपील में यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् को साबित करने के अनुक्रम में कतिपय तथ्यों को कथित किया जाना चाहिए और उन्हें सिद्ध करना चाहिए और प्रतिकूल कब्जे के सभी अवयवों को साबित करने का भार उस प्रतिवादी पर होता है जो ऐसे हक का दावा करता है । विद्वान् अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी को अपने अभिकथन को साबित करना चाहिए और यह सिद्ध करना चाहिए कि उसका कब्जा वास्तविक, प्रतिकूल, अनन्य, शांतिपूर्ण, निरन्तर, अखंडनीय, खुला, व्यापक, दृश्यमान, सुभिन्न, असंदिग्ध और पक्षद्रोही है । प्रतिवादी अपने प्रतिकूल कब्जे के आरम्भ और विस्तार की तारीख को साबित करने के लिए भी आबद्ध है किन्तु प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत मामले में इन सभी सामग्रियों का अभाव है जिसने मात्र यह कथन किया है कि वह पिछले 30 वर्षों से वाद भूमि के कब्जे में चला आ रहा है । विद्वान् अपील न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी वाद भूमि पर 'काबिज' के रूप में अभिलिखित है किन्तु वह उस बंदोबस्त के दौरान प्रथम बार ऐसा अभिलिखित किया गया था जो वर्ष 1982-1983 में हुआ था और इसके पहले प्रतिवादी किसी क्षमता में वाद भूमि के कब्जे में कभी भी अभिलिखित नहीं किया गया था और न ही वह 'काबिज' के रूप में अभिलिखित किया गया था । प्रतिवादी यह स्पष्टीकरण नहीं कर सका है कि किस प्रकार वह वाद भूमि के कब्जे में अभिलिखित हुआ था । विद्वान् अपील न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि प्रतिवादी वर्ष 1989-1990 के लिए जमाबंदी प्रदर्श पी-1 के अनुसार, पुनः 'काबिज' के रूप में अभिलिखित हुआ था किन्तु यह प्रतीत होता है कि इन प्रविष्टियों में बाद में सुधार किया गया था क्योंकि वर्ष 1994-1995 के लिए जमाबंदी प्रदर्श पी-4 में वादी, वाद भूमि में कब्जे सहित स्वामी के रूप में दर्शित किया गया था और इन प्रविष्टियों को प्रतिवादी द्वारा कभी भी चुनौती नहीं दी गई थी । तद्नुसार, विद्वान् अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री में तथा प्रतिवादी द्वारा फाइल अपील को खारिज करते हुए, विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री में कोई कमी नहीं है । विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री आर. के. गौतम के अनुसार, प्रतिवादी ने स्पष्टतः और सुस्पष्टतः यह सिद्ध कर दिया

है कि वह वाद फाइल किए जाने के समय पर पिछले 30 वर्षों से वाद भूमि के कब्जे में है और यह कि उसका प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से हक पूर्ण हो गया है । दूसरी ओर, प्रत्यर्थी के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एन. के. ठाकुर ने यह जोरदार तर्क दिया कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों और डिक्रियों तथा निष्कर्षों में कोई कमी या प्रतिकूलता नहीं है क्योंकि विवाद्यक सं. 5 पर विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष मामले के अभिलेखों से सम्यक् रूप से सिद्ध होते हैं और यह भी कि विद्वान् अपील न्यायालय ने भी विद्वान् निचले न्यायालय के निष्कर्षों को सही ही कायम रखा है । उनके अनुसार, प्रतिवादी पर-व्यक्ति है, जहां तक कि वाद भूमि का संबंध है और मिसल हैकियत में अभिलिखित उसके पक्ष में कब्जे की गलत प्रविष्टियों का लाभ उठाते हुए ही उसने वाद फाइल करने के समय बलपूर्वक वाद भूमि का कब्जा ले लिया था । इस न्यायालय ने अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल से उसके दावे के अनुसार, जब से प्रतिवादी वाद भूमि के कब्जे में है तब से अभिलेखों को प्रस्तुत करने के लिए कहा और उन सामग्रियों को प्रस्तुत करने के लिए कहा जिनसे ऐसा कब्जा सिद्ध होता है और न्यायिक तौर पर यह भी सिद्ध करने के लिए कहा कि वह प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से अपने हक को पूर्ण करता है । तथापि, विद्वान् काउंसेल, अभिलेखों के आधार पर इस न्यायालय के प्रश्नों का समाधान नहीं कर सके । (पैरा 10, 11, 12 और 13)

पक्षकारों के दोनों विद्वान् काउंसेल को सुनने के पश्चात् और निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों का परिशीलन करने के पश्चात् साथ ही मामले के अभिलेखों का परिशीलन करने के पश्चात्, न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि वर्तमान अपील में कोई गुणागुण नहीं है । दोनों निचले न्यायालयों ने सही ही यह निष्कर्ष निकाला है कि वादी, वाद भूमि का स्वामी था और प्रतिवादी का कब्जे के बारे में प्रविष्टियां त्रुटिपूर्ण थीं । प्रतिवादी यह साबित करने में बुरी तरह से असफल रहा है कि वह 30 वर्षों से अधिक समय से वाद भूमि के वास्तविक कब्जे में है जैसा कि उसके द्वारा अभिकथित है और यह कि उसका प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से हक पूर्ण हो गया था यह वर्णित करते हुए कि असली स्वामी के रूप में उसका कब्जा खुला, शांतिपूर्ण और पक्षद्रोही था । निचले न्यायालयों ने विवाद्यक सं. 5 को गलत तौर पर या अवैध तौर पर या प्रतिकूल कब्जे की विधि से संबंधित सुस्थिर सिद्धांतों के विरुद्ध विनिश्चित नहीं किया है । न्यायालय के सुविचारित मत में, प्रतिकूल कब्जे की विधि से संबंधित सुस्थिर सिद्धांतों को

प्रत्येक मामले के तथ्यों में लागू किया जाना चाहिए । यह भी कि प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक्, विधि और तथ्य का मिश्रित प्रश्न है । प्रतिकूल कब्जे को शासित करने वाली विधि तभी लागू होती है जब यदि एक पक्षकार तथ्यों के आधार पर प्रतिकूल कब्जे का दावा करते हुए, यह वर्णित करने में समर्थ रहता है कि उसका कब्जा खुला, शांतिपूर्ण और प्रतिकूल है और वह वाद फाइल किए जाने के 12 वर्ष से अधिक पूर्व से असली स्वामी के विरुद्ध प्रतिकूल है । लिखित कथन में किए गए प्रकथन अस्पष्ट और साधारण प्रकृति के हैं । प्रतिवादी ने मात्र यह उल्लेख किया है कि वह प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् को उद्भूत करने के लिए विधि द्वारा विहित अवधि से अधिक समय से वाद भूमि में कब्जे सहित स्वामी है और उसने वाद भूमि के स्वामी की हैसियत अर्जित कर ली है जिसका वह पहले ही कब्जे में अभिलिखित किया जा चुका है । इसके अतिरिक्त, उसने साधारण निबंधनों में यह कथन किया है कि उसका कब्जा स्वामी के अधिकार के बराबर प्रतिकूल हो गया है और प्रत्येक की जानकारी में खुला है जिसमें वह वादी ही सम्मिलित है जिसने पिछले 12 वर्ष से अधिक समय से कभी भी वाद भूमि में प्रवेश नहीं किया है और उसका कब्जा अस्थायी नहीं है अपितु निरन्तर, निर्विघ्न, व्यापक, पक्षद्रोही और सिद्ध हो गया है और वादी के बराबर अतिचारी होने के नाते खुला है । उसने इन साधारण प्रकथनों के अतिरिक्त अपनी दलीलों को सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी प्रस्तुत नहीं किया है । प्रतिकूल कब्जे का सिद्धांत यह है कि प्रतिकूल कब्जा, उस अतिचारी को असली स्वामी के रूप में मंजूरी देता है जो विधि की दृष्टि में, अपकृत्य का दोषी या अपराध होते हुए भी वैध तौर पर उस भूमि में हक अर्जित करने की अनुमति देता है जिसे वह 12 वर्षों से अधिक अवधि से अवैध तौर पर कब्जे में ले रखा है । (पैरा 14, 15, 16 और 17)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2010]	(2010) 14 एस. सी. सी. 316 : **चेट्टी कोनाती राव और अन्य** बनाम **पाल्ले वेंकटा सुब्बा राव** ।	18

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2008 की नियमित द्वितीय अपील सं. 54.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री आर. के. गौतम, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ मेहर चन्द, अधिवक्ता
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री एन. के. ठाकुर, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ श्रीमती जमुना ठाकुर, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति अजय मोहन गोयल – यह अपील, विद्वान् जिला न्यायाधीश, हमीरपुर द्वारा 2004 की सिविल अपील सं. 106 में पारित तारीख 22 अगस्त, 2006 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा विद्वान् अपील न्यायालय ने विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), हमीरपुर द्वारा 1995 की सिविल वाद सं. 116 में पारित तारीख 6 मई, 2004 के निर्णय और डिक्री की पुष्टि कर दी थी ।

2. प्रत्यर्थी/वादी द्वारा घोषणा, स्थायी व्यादेश और कब्जे के लिए इस प्रभाव का एक वाद फाइल किया गया था कि वादी, वाद भूमि के कब्जे में है और प्रतिवादी का किसी भी प्रकार से उसमें कोई संबंध नहीं है और प्रतिवादी को वाद भूमि के ऊपर वादी के कब्जे में हस्तक्षेप करने से अवरुद्ध कर दिया जाए और यह भी कि वाद भूमि पर प्रतिवादी का कब्जा दर्शित करने वाले राजस्व प्रविष्टि भी जाली, अकृत और आरम्भतः शून्य है और वादी पर बाध्यकारी नहीं है और अभिखंडित तथा संशोधित किए जाने योग्य है । वाद इस प्रभाव के लिए भी फाइल किया गया था कि यदि वादी कब्जे में नहीं पाया जाता है तो इसमें के प्रार्थना-ए में वर्णित खाली भूमि के कब्जे के लिए वादी के पक्ष में और प्रतिवादी के विरुद्ध डिक्री पारित की जाए ।

3. विद्वान् निचले न्यायालय ने निम्नलिखित निबंधनों में तारीख 6 मई, 2004 के निर्णय द्वारा वाद डिक्री कर दिया था :–

> "तद्द्वारा, वादी का वाद इस प्रभाव के साथ डिक्री किया जाता है कि तद्द्वारा वादी को वाद भूमि का पूर्ण स्वामी घोषित किया जाता है और प्रतिवादी का उस पर अप्राधिकृत कब्जा है क्योंकि प्रतिवादी, अपने प्रतिकूल कब्जे को सिद्ध करने में असफल रहा है । तद्द्वारा, मिसल हैकियत, 1982-83, प्रदर्श पी-3 में प्रतिवादी के पक्ष में कब्जे के बारे में राजस्व प्रविष्टि को अकृत और शून्य घोषित किया जाता है क्योंकि यह तथ्यात्मक प्रास्थिति के विरुद्ध है और वादी पर बाध्यकारी नहीं है और यह भी कि तद्द्वारा, हक के आधार पर कब्जे के लिए

वादी का वाद डिक्री किया जाता है और प्रतिवादी को वाद भूमि, टीका अप महल गौरा, मौजा बजूरी, तहसील और जिला हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश में मौजूद वर्ष 1989-90 के लिए जमाबंदी के अनुसार, 'गैरमुमकिन शहन' खाता सं. 63 मीन, खतौनी सं. 232, खसरा सं. 1300, माप 13.88 वर्ग मीटर में समाविष्ट भूमि का कब्जा वादी को सौंपने का निर्देश दिया जाता है । पक्षकार अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे ।"

4. उक्त निर्णय और डिक्री को अपील के माध्यम से वर्तमान अपीलार्थी/प्रतिवादी के हित-पूर्वाधिकारी द्वारा चुनौती दी गई थी जिसे विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा तारीख 22 अगस्त, 2006 के निर्णय और डिक्री के माध्यम से खारिज कर दिया गया था ।

5. इससे व्यथित होकर, वर्तमान अपीलार्थियों के हित-पूर्वाधिकारियों ने वर्तमान नियमित अपील फाइल की । श्री दीना नाथ की अपील लम्बित रहने के दौरान मृत्यु हो गई । उसके विधिक उत्तराधिकारी अभिलेख पर लाए गए, जिसके पश्चात् वे वर्तमान अपीलार्थी हैं ।

6. अपील को निम्नलिखित विधि के सारवान् प्रश्न पर, इस न्यायालय द्वारा तारीख 6 नवम्बर, 2008 को स्वीकार कर लिया गया था :-

"क्या निचले न्यायालयों ने प्रतिकूल कब्जे की विधि से संबंधित सुस्थिर सिद्धांतों के विरुद्ध विवाद्यक सं. 5 को गलत और अवैध तरीके से विनिश्चित किया है ?"

7. विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा यथाविरचित विवाद्यक सं. 5 निम्नलिखित है :-

"5. क्या प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से स्वामी हो गया है, जैसा कि अभिकथित है ?"

8. विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा इस विवाद्यक के साथ ही विवाद्यक सं. 1 और 2 को विनिश्चित किया गया ।

9. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और मामले के अभिलेखों का भी परिशीलन किया ।

10. वादी का पक्षकथन यह है कि वह वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी है । तथापि, बंदोबस्त के समय पर प्रतिवादी ने उसे बिना बताए

मिसल हैकियत में अपने पक्ष में कब्जे की प्रविष्टि करवा ली । तथापि, वादी के अनुसार, प्रतिवादी कभी भी वाद भूमि के कब्जे में नहीं रहा और वाद फाइल किए जाने के समय ही वादी बलपूर्वक उसका कब्जा लेने में सफल रहा था । प्रतिवादी की दलील यह है कि वह लम्बे समय से वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी है और वस्तुतः वाद भूमि पर उसका कब्जा 30 वर्ष से अधिक पुराना है और उक्त कब्जा, वादी के विरुद्ध प्रतिकूल, निरन्तर और निर्बाधित हो गया है । इसलिए, प्रतिवादी के अनुसार, उसे प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से उसे सुनिश्चित अधिकार प्राप्त हो गया और उसके अनुसार, बंदोबस्त के समय पर तैयार मिसल हैकियत में उसके पक्ष में अभिलिखित कब्जे की प्रविष्टि वस्तुतः सही तथ्यात्मक प्रास्थिति प्रदर्शित करती है । विद्वान् निचले न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वादी, वाद भूमि का स्वामी है और प्रतिवादी ने वाद फाइल किए जाने के ठीक पूर्व बलपूर्वक उसे कब्जे में ले लिया था । विद्वान् निचले न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी पिछले 30 वर्षों से अधिक समय से वाद भूमि पर अपने प्रतिकूल कब्जे को सिद्ध करने में असफल रहा है जैसा कि उसने दावा किया है । तद्नुसार, विद्वान् निचले न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी, प्रतिकूल कब्जे के आधार पर वाद भूमि पर अपने हक को सिद्ध नहीं कर सका है । विद्वान् निचले न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि वादी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य से यह प्रकट होता है कि प्रतिवादी ने वाद फाइल किए जाने के समय पर वादी से वाद भूमि का कब्जा बलपूर्वक लिया है । दूसरी ओर, विद्वान् निचले न्यायालय के अनुसार, प्रतिवादी ने अपने इस पक्षकथन अर्थात् 30 वर्षों से अधिक वाद भूमि पर कब्जा होना, के समर्थन में स्थानीय किसी स्वतंत्र साक्षी की परीक्षा नहीं कराई है । विद्वान् निचले न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि एक तरफ तो प्रतिवादी 30 वर्षों से अधिक समय से वाद भूमि पर अपने कब्जे का दावा कर रहा है जबकि वर्ष 1978-1979 के लिए जमाबंदी की प्रतिलिपि प्रदर्श पी-2 प्रतिवादी के बयान का समर्थन नहीं करता है क्योंकि उक्त जमाबंदी में प्रतिवादी का कब्जा अभिलिखित नहीं था । यह मात्र वर्ष 1982-1983 में तैयार मिसल हैकियत प्रदर्श पी-3 में ही अभिलिखित था कि प्रतिवादी का कब्जा अभिलिखित हुआ है । विद्वान् निचले न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि यदि प्रतिवादी का वाद भूमि पर वस्तुतः कब्जा, जैसा कि उसके द्वारा अभिलिखित किया गया है, रहा है तो इस प्रभाव की प्रविष्टियां पूर्ववर्ती जमाबंदियों में अभिलिखित होनी चाहिए थीं । इन आधारों

पर, विद्वान् निचले न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि मिसल हैकियत में प्रतिवादी के कब्जे के बारे में प्रविष्टियां काल्पनिक और जाली हैं क्योंकि इनका कोई तथ्यात्मक आधार नहीं हैं । विद्वान् निचले न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी, प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से सुनिश्चित हक के अवयवों अर्थात् असली स्वामी के विरुद्ध खुला, शांतिपूर्ण और प्रतिकूल कब्जे को साबित नहीं कर सका है । यह भी अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि यह उपधारणा कर भी ली जाती है कि वर्ष 1981-82 में बंदोबस्त के समय पर प्रतिवादी, वाद भूमि के कब्जे में था तो भी प्रतिकूल आशय के अभाव में प्रतिवादी का कब्जा, पक्षद्रोही और प्रतिकूल कब्जे के निबंधनों में नहीं कहा जा सकता है । विद्वान् निचले न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि अभिलेखों के अनुसार, वाद भूमि, पृथक् सह-अंशधारियों के बीच संयुक्त थी और वादी ने अविभाजित हिस्से का क्रय किया था । विभाजन, वर्ष 1990 के पश्चात् और यह वर्ष 1994-95 के लिए जमाबंदी प्रदर्श पी-4 के तैयार होने के पूर्व पूरा हुआ था । तारीख 12 अगस्त, 1991 का नामांतरण सं. 306, उक्त भूमि के बारे में वादी के पक्ष में मंजूर हुआ था और इस तथ्य को प्रतिवादी द्वारा भी विनिर्दिष्टतया अपने लिखित कथन में विवादित नहीं किया गया है । इन आधारों पर, विद्वान् निचले न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह सिद्ध हो गया है कि वर्ष 1990-1991 के पूर्व वाद भूमि, पृथक् सह-अंशधारियों, जिनमें वादी सम्मिलित था, के संयुक्त कब्जे में थी । इसलिए, प्रतिवादी, उस तारीख से प्रतिकूल कब्जे का दावा कर रहा था जब वाद भूमि कतिपय सह-अंशधारियों के बीच संयुक्त थी जिसमें यह समादेश था कि प्रतिकूल कब्जे के आधार पर हक का अनुतोष प्राप्त करने के अनुक्रम में, प्रतिवादी को वाद भूमि के सभी सह-अंशधारियों के विरुद्ध पृथक् वाद फाइल करना चाहिए था क्योंकि अभिकथित प्रतिकूलता के आरम्भिक प्रक्रम से वादी, वाद भूमि का पूर्ण स्वामी नहीं था । इन निष्कर्षों के आधार पर, विद्वान् निचले न्यायालय ने उपर्युक्त पहले ही अभिकथित निबंधनों में वाद डिक्री कर दिया था ।

11. विद्वान् अपील न्यायालय ने अपील में यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् को साबित करने के अनुक्रम में कतिपय तथ्यों को कथित किया जाना चाहिए और उन्हें सिद्ध करना चाहिए और प्रतिकूल कब्जे के सभी अवयवों को साबित करने का भार उस प्रतिवादी पर होता है जो ऐसे हक का दावा करता है । विद्वान् अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी को अपने अभिकथन को साबित करना

चाहिए और यह सिद्ध करना चाहिए कि उसका कब्जा वास्तविक, प्रतिकूल, अनन्य, शांतिपूर्ण, निरन्तर, अखंडनीय, खुला, व्यापक, दृश्यमान, सुभिन्न, असंदिग्ध और पक्षद्रोही है । प्रतिवादी अपने प्रतिकूल कब्जे के आरम्भ और विस्तार की तारीख को साबित करने के लिए भी आबद्ध है किन्तु प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत मामले में इन सभी सामग्रियों का अभाव है जिसने मात्र यह कथन किया है कि वह पिछले 30 वर्षों से वाद भूमि के कब्जे में चला आ रहा है । विद्वान् अपील न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी वाद भूमि पर 'काबिज' के रूप में अभिलिखित है किन्तु वह उस बंदोबस्त के दौरान प्रथम बार ऐसा अभिलिखित किया गया था जो वर्ष 1982-1983 में हुआ था और इसके पहले प्रतिवादी किसी क्षमता में वाद भूमि के कब्जे में कभी भी अभिलिखित नहीं किया गया था और न ही वह 'काबिज' के रूप में अभिलिखित किया गया था । प्रतिवादी यह स्पष्टीकरण नहीं कर सका है कि किस प्रकार वह वाद भूमि के कब्जे में अभिलिखित हुआ था । विद्वान् अपील न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि प्रतिवादी वर्ष 1989-1990 के लिए जमाबंदी प्रदर्श पी-1 के अनुसार, पुनः 'काबिज' के रूप में अभिलिखित हुआ था किन्तु यह प्रतीत होता है कि इन प्रविष्टियों में बाद में सुधार किया गया था क्योंकि वर्ष 1994-1995 के लिए जमाबंदी प्रदर्श पी-4 में वादी, वाद भूमि में कब्जे सहित स्वामी के रूप में दर्शित किया गया था और इन प्रविष्टियों को प्रतिवादी द्वारा कभी भी चुनौती नहीं दी गई थी । तद्नुसार, विद्वान् अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री में तथा प्रतिवादी द्वारा फाइल अपील को खारिज करते हुए, विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री में कोई कमी नहीं है ।

12. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री आर. के. गौतम ने यह तर्क दिया कि विवाद्यक सं. 5 पर दोनों निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष विधि में समर्थनीय नहीं हैं । उनके अनुसार, प्रतिवादी ने स्पष्टतः और सुस्पष्टतः यह सिद्ध कर दिया है कि वह वाद फाइल किए जाने के समय पर पिछले 30 वर्षों से वाद भूमि के कब्जे में है और यह कि उसका प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से हक पूर्ण हो गया है । दूसरी ओर, प्रत्यर्थी के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एन. के. ठाकुर ने यह जोरदार तर्क दिया कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों और डिक्रियों तथा निष्कर्षों में कोई कमी या प्रतिकूलता नहीं है क्योंकि विवाद्यक सं. 5 पर विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष मामले के अभिलेखों से सम्यक् रूप से सिद्ध होते हैं और यह भी कि विद्वान् अपील न्यायालय ने भी विद्वान् निचले

न्यायालय के निष्कर्षों को सही ही कायम रखा है । उनके अनुसार, प्रतिवादी पर-व्यक्ति है, जहां तक कि वाद भूमि का संबंध है और मिसल हैकियत में अभिलिखित उसके पक्ष में कब्जे की गलत प्रविष्टियों का लाभ उठाते हुए ही उसने वाद फाइल करने के समय बलपूर्वक वाद भूमि का कब्जा ले लिया था ।

13. इस न्यायालय ने अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल से उसके दावे के अनुसार, जब से प्रतिवादी वाद भूमि के कब्जे में है तब से अभिलेखों को प्रस्तुत करने के लिए कहा और उन सामग्रियों को प्रस्तुत करने के लिए कहा जिनसे ऐसा कब्जा सिद्ध होता है और न्यायिक तौर पर यह भी सिद्ध करने के लिए कहा कि वह प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से अपने हक को पूर्ण करता है । तथापि, विद्वान् काउंसेल, अभिलेखों के आधार पर इस न्यायालय के प्रश्नों का समाधान नहीं कर सके ।

14. पक्षकारों के दोनों विद्वान् काउंसेल को सुनने के पश्चात् और निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों का परिशीलन करने के पश्चात् साथ ही मामले के अभिलेखों का परिशीलन करने के पश्चात्, मेरा यह सुविचारित मत है कि वर्तमान अपील में कोई गुणागुण नहीं है । दोनों निचले न्यायालयों ने सही ही यह निष्कर्ष निकाला है कि वादी, वाद भूमि का स्वामी था और प्रतिवादी का कब्जे के बारे में प्रविष्टियां त्रुटिपूर्ण थीं । प्रतिवादी यह साबित करने में बुरी तरह से असफल रहा है कि वह 30 वर्षों से अधिक समय से वाद भूमि के वास्तविक कब्जे में है जैसा कि उसके द्वारा अभिकथित है और यह कि उसका प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से हक पूर्ण हो गया था यह वर्णित करते हुए कि असली स्वामी के रूप में उसका कब्जा खुला, शांतिपूर्ण और पक्षद्रोही था । निचले न्यायालयों ने विवाद्यक सं. 5 को गलत तौर पर या अवैध तौर पर या प्रतिकूल कब्जे की विधि से संबंधित सुस्थिर सिद्धांतों के विरुद्ध विनिश्चित नहीं किया है ।

15. मेरे सुविचारित मत में, प्रतिकूल कब्जे की विधि से संबंधित सुस्थिर सिद्धांतों को प्रत्येक मामले के तथ्यों में लागू किया जाना चाहिए । यह भी कि प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक्, विधि और तथ्य का मिश्रित प्रश्न है । प्रतिकूल कब्जे को शासित करने वाली विधि तभी लागू होती है जब यदि एक पक्षकार तथ्यों के आधार पर प्रतिकूल कब्जे का दावा करते हुए, यह वर्णित करने में समर्थ रहता है कि उसका कब्जा खुला, शांतिपूर्ण और प्रतिकूल है और वह वाद फाइल किए जाने के 12 वर्ष से अधिक पूर्व से

असली स्वामी के विरुद्ध प्रतिकूल है ।

16. लिखित कथन में किए गए प्रकथन अस्पष्ट और साधारण प्रकृति के हैं । प्रतिवादी ने मात्र यह उल्लेख किया है कि वह प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् को उद्भूत करने के लिए विधि द्वारा विहित अवधि से अधिक समय से वाद भूमि में कब्जे सहित स्वामी है और उसने वाद भूमि के स्वामी की हैसियत अर्जित कर ली है जिसका वह पहले ही कब्जे में अभिलिखित किया जा चुका है । इसके अतिरिक्त, उसने साधारण निबंधनों में यह कथन किया है कि उसका कब्जा स्वामी के अधिकार के बराबर प्रतिकूल हो गया है और प्रत्येक की जानकारी में खुला है जिसमें वह वादी ही सम्मिलित है जिसने पिछले 12 वर्ष से अधिक समय से कभी भी वाद भूमि में प्रवेश नहीं किया है और उसका कब्जा अस्थायी नहीं है अपितु निरन्तर, निर्विघ्न, व्यापक, पक्षद्रोही और सिद्ध हो गया है और वादी के बराबर अतिचारी होने के नाते खुला है । उसने इन साधारण प्रकथनों के अतिरिक्त अपनी दलीलों को सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी प्रस्तुत नहीं किया है ।

17. प्रतिकूल कब्जे का सिद्धांत यह है कि प्रतिकूल कब्जा, उस अतिचारी को असली स्वामी के रूप में मंजूरी देता है जो विधि की दृष्टि में, अपकृत्य का दोषी या अपराध होते हुए भी वैध तौर पर उस भूमि में हक अर्जित करने की अनुमति देता है जिसे वह 12 वर्षों से अधिक अवधि से अवैध तौर पर कब्जे में ले रखा है ।

18. **चेट्टी कोनाती राव और अन्य** बनाम **पाल्ले वेंकटा सुब्बा राव**[1] वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "12. .... प्रतिकूल कब्जा क्या है, इसके सबूत का भार किस पर है, न्यायालय के समक्ष ऐसे अभिवाकों इत्यादि के बारे में कई मामलों के विनिश्चयों की विषय-वस्तु रही है । टी. अंजनप्पा **बनाम** सोमालिंगप्पा (एस. सी. सी. पृष्ठ 577, पैरा 20) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि तथापि, मात्र लम्बे कब्जे से आवश्यक रूप से यह अभिप्राय नहीं निकाला जा सकता है कि यह असली स्वामी के प्रतिकूल है और प्रतिकूल कब्जे द्वारा हक अर्जित

[1] (2010) 14 एस. सी. सी. 316.

करने की विनिर्दिष्ट अपेक्षा यह है कि ऐसा कब्जा असली स्वामी के हक को इनकार करता हो । पूर्वोक्त निर्णय का सुसंगत पैरा निम्नलिखित है –

'20. विधि की यह सुस्थिर मान्यताप्राप्त प्रास्थिति है कि तथापि, मात्र लम्बे कब्जे से आवश्यक रूप से यह अभिप्राय नहीं निकाला जा सकता है कि यह असली स्वामी के प्रतिकूल है । प्रतिकूल कब्जा का वास्तविक अभिप्राय उस पक्षद्रोही कब्जे से है जो अभिव्यक्ततः या विवक्षिततः रूप से असली स्वामी के हक को इनकार करता है और प्रतिकूल कब्जा गठित करने के अनुक्रम में प्रतिकूल कब्जे को निरन्तर, सार्वभौमिक रूप से पर्याप्त और इस सीमा तक साबित किया जाना चाहिए ताकि यह दर्शित हो कि यह असली स्वामी के प्रतिकूल है । प्रतिकूल कब्जे द्वारा हक अर्जित करने की विनिर्दिष्ट अपेक्षाएं यह हैं कि ऐसा कब्जा असली स्वामी के हक को इनकार करते हुए शांतिपूर्ण, खुला और निरन्तर होना चाहिए । कब्जा इतना खुला और पक्षद्रोही होना चाहिए कि संपत्ति में हितबद्ध पक्षकारों द्वारा इसे जानने में पर्याप्त रूप से समर्थ हों, यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिकूल कब्जाधारी के साक्ष्य को वस्तुतः पूर्ववर्ती की पक्षद्रोही कार्यवाही के असली स्वामी को सूचित करता हो ।'

13. प्रतिकूल कब्जे के लिए कौन से तथ्य अपेक्षित हैं, इनके बारे में इस न्यायालय द्वारा कर्नाटक वक्फ बोर्ड **बनाम** भारत सरकार और अन्य (एस. एस. सी. 785) वाले मामले में संक्षिप्त तौर पर वर्णित किया गया है । यह भी मत व्यक्त किया गया है कि प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् करने वाले व्यक्ति के पक्ष में कोई साम्या नहीं होती है और चूंकि ऐसा व्यक्ति असली स्वामी के अधिकारों का अतिक्रमण करने की कोशिश करता है इसलिए उसे इसका स्पष्ट तौर पर अभिवाक् करना चाहिए और अपने प्रतिकूल कब्जे को सिद्ध करने के लिए आवश्यक तथ्यों को सिद्ध करना चाहिए । निर्णय का पैरा 11 हमारे प्रयोजन के लिए सुसंगत है, जो निम्नलिखित है –

'11. विधि की दृष्टि में एक स्वामी को लम्बे समय से किसी संपत्ति के कब्जे में समझा जाएगा जिसमें कोई हस्तक्षेप न हो । स्वामी द्वारा लम्बे समय से संपत्ति का प्रयोग नहीं करने

से उसका हक प्रभावित नहीं होता है । किन्तु प्रास्थिति तब परिवर्तित हो जाएगी जब एक अन्य व्यक्ति उस संपत्ति का कब्जा ले लेता है और उस पर अधिकार का दावा करता है । प्रतिकूल कब्जा, असली स्वामी के हक को इनकार करते हुए, पक्षद्रोही हक का स्पष्ट तौर पर प्रत्याख्यान द्वारा पक्षद्रोही कब्जा है । यह सुस्थिर सिद्धांत है कि प्रतिकूल कब्जे का दावा करने वाले पक्षकार को यह साबित करना चाहिए कि उसका कब्जा 'नेक वी, नेक क्लाम, नेक प्रीकारियों है' इसका अभिप्राय यह है कि उसका कब्जा शांतिपूर्ण, खुला और निरन्तर है । कब्जा निरन्तर और सार्वभौमिक तौर पर तथा इस सीमा तक पर्याप्त होना चाहिए कि जिससे यह दर्शित हो कि उसका कब्जा असली स्वामी के प्रतिकूल है । यह असली स्वामी के दोषपूर्ण बेकब्जा करने के साथ आरम्भ होता है और यह कानूनी अवधि के भीतर वस्तुतः दृश्यमान, अनन्य, प्रतिकूल और निरन्तर होता है (देखें – एस. एम. करीम **बनाम** बीबी शकीना, पार्सिन्नी **बनाम** सुखी तथा डी. एन. वेंकटरयप्पा **बनाम** कर्नाटक राज्य) अनन्य कब्जा और कब्जे का आशय के भौतिक तथ्य, असली स्वामी के अपवर्जन में स्वामी के रूप में अति महत्वपूर्ण कारक यह होता है कि वे इस प्रकृति के मामले की कोटि में आते हैं । प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् शुद्धतः विधि के प्रश्न नहीं होते हैं अपितु यह विधि और तथ्य का मिश्रित प्रश्न है, इसलिए, एक व्यक्ति जो प्रतिकूल कब्जे का दावा करता है, को यह दर्शित करना चाहिए कि (क) किस तारीख को वह कब्जे में आया, (ख) उसके कब्जे की प्रकृति क्या है, (ग) क्या तथ्यात्मक कब्जे के बारे में अन्य पक्षकार जानते थे, (घ) कितनी अवधि से उसका कब्जा निरन्तर है और (ङ) उसका कब्जा खुला और निर्बाधित है । एक व्यक्ति जो प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् करता है उसके पक्ष में कोई साम्या नहीं होती है । चूंकि वह असली स्वामी के अधिकारों का अतिक्रमण करने की कोशिश करता है इसलिए उसे ऐसा अभिवाक् स्पष्टतः करना चाहिए और अपने प्रतिकूल कब्जे को सिद्ध करने के लिए आवश्यक सभी तथ्यों को सिद्ध करना चाहिए [महेश चन्द्र शर्मा (डा.) **बनाम** राजकुमारी शर्मा] ।'

14. इस न्यायालय के कतिपय प्रमाणिकताओं को ध्यान में रखते हुए जिनमें से कुछ को उपर्युक्त निर्दिष्ट किया गया है, से सुरक्षित तौर पर यह कहा जा सकता है कि मात्र लम्बे कब्जे से आवश्यक रूप से यह अभिप्राय नहीं निकाला जा सकता है कि यह असली स्वामी के प्रतिकूल है । इसका अभिप्राय यह है कि प्रतिकूल कब्जा जो असली स्वामी के हक को अभिव्यक्ततः या विवक्षिततः इनकार करता है और प्रतिकूल कब्जा गठित करने के अनुक्रम में प्रतिकूल कब्जे को निरन्तर, सार्वभौमिक रूप से पर्याप्त और इस सीमा तक साबित किया जाना चाहिए ताकि यह दर्शित हो कि यह असली स्वामी के प्रतिकूल है । प्रतिकूल कब्जे द्वारा हक अर्जित करने की विनिर्दिष्ट अपेक्षाएं यह हैं कि ऐसा कब्जा असली स्वामी के हक को इनकार करते हुए शांतिपूर्ण, खुला और निरन्तर होना चाहिए । कब्जा इतना खुला और पक्षद्रोही होना चाहिए कि संपत्ति में हितबद्ध पक्षकारों द्वारा इसे जानने में पर्याप्त रूप से समर्थ हों । वादी 12 वर्षों के भीतर कब्जे के रूप में अपने हक को साबित करने के लिए बाध्य होता है और जब एक बार वादी अपने हक को साबित कर देता है तो सबूत का भार प्रतिवादी पर हो जाता है, यह सिद्ध करने के लिए कि प्रतिकूल कब्जे द्वारा उसका हक पूर्ण है । प्रतिकूल कब्जे का दावा करने के लिए दो आधारभूत अवयव हैं अर्थात् प्रतिवादी का कब्जा वादी के प्रतिकूल होना चाहिए और इसके पश्चात् प्रतिवादी का कब्जा 12 वर्षों की अवधि के लिए निरन्तर बने रहना चाहिए ।

15. कब्जा रखने का आशय, प्रतिकूल कब्जे के लिए एक सुज्ञात अपेक्षित अवयव है । मात्र कब्जे से कब्जा रखने का हक प्राप्त नहीं होता है जब तक कि कब्जा रखने वाले को उक्त प्रयोजन के लिए असली स्वामी के हक के प्रतिकूल संपत्ति अभिनिर्धारित नहीं की जाती है । व्यक्ति, जो प्रतिकूल कब्जे का दावा करता है, उसे यह सिद्ध करना अपेक्षित होता है कि वह किस तारीख से कब्जे में आया, कब्जे की प्रकृति, कब्जे का तथ्य, असली स्वामी को जानकारी, कब्जे की अवधि और कब्जा खुला और निर्बाधित है । एक व्यक्ति जो प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् करता है उसके पक्ष में कोई साम्या नहीं होती है क्योंकि वह असली स्वामी के अधिकारों का अतिक्रमण करने की कोशिश करता है और अतएव, उसे स्पष्ट तौर पर इसका

अभिवाक् करना चाहिए और प्रतिकूल कब्जे को सिद्ध करने के लिए आवश्यक सभी तथ्यों को सिद्ध करना चाहिए । न्यायालयों को हमेशा ही संपत्ति अधिकारों को उलटते समय परिसीमा संविधि के बारे में सजग रहना चाहिए । प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् शुद्धतः विधि का प्रश्न नहीं है अपितु, यह तथ्य और विधि का मिश्रित प्रश्न है ।"

19. इन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, और वर्तमान मामले के तथ्यों की पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए, मेरा यह सुविचारित मत है कि अपीलार्थी, यह वर्णित करने में बुरी तरह से असफल रहा है कि वह 12 वर्ष से अधिक अवधि से वाद भूमि के कब्जे में है, जैसा कि अभिकथित है और यह कि उसका अभिकथित कब्जा, असली स्वामी के विरुद्ध खुला, शांतिपूर्ण और प्रतिकूल था । विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा विवाद्यक सं. 5 के बारे में निकाले गए निष्कर्ष सही हैं और मामले के तथ्यों और अभिलेख पर के साक्ष्यों के सही मूल्यांकन पर आधारित हैं । विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा भी अपील में निकाले गए निष्कर्ष अभिलेखों पर आधारित हैं और अनुचित नहीं हैं । तद्नुसार, विधि के सारवान् प्रश्न का उत्तर दिया जाता है ।

20. तद्नुसार, उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, मैं विद्वान् निचले न्यायालयों द्वारा पारित सकारण निर्णयों और डिक्रियों में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाता हूं और इसलिए अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

क.

बलजीत सिंह और अन्य

बनाम

जीवन सिंह (मृत) मार्फत उसके विधिक प्रतिनिधिगण

तारीख 9 मई, 2016

न्यायमूर्ति संदीप शर्मा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100, 11 तथा आदेश 2 का नियम 2 – पूर्ववर्ती वाद में विवादित रास्ते में बाधा पहुंचाने के बारे में विनिश्चय होना – लगभग 10 वर्ष पश्चात् विरोधी पक्षकार द्वारा विवादित रास्ते में पुनः बाधा पहुंचाया जाना – वादी द्वारा नया वाद फाइल करना – विरोधी पक्षकार द्वारा प्रांङ्न्याय के आधार पर वाद का विरोध करना – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि वर्तमान वाद की विवाद्य विषयवस्तु पूर्ववर्ती वाद की विवाद्य विषयवस्तु से भिन्न है तो ऐसे मामले में प्रांङ्न्याय का सिद्धांत लागू नहीं होगा और वादी नया वाद लाने के लिए स्वतंत्र होगा ।

वर्तमान मामले में, संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि वादियों-प्रत्यर्थियों ने प्रतिवादियों-अपीलार्थियों को ग्राम तब्बा, तहसील और जिला ऊना, हि. प्र. में स्थित स्थल नक्शा के बिन्दु "एच" और "आई" पर नांद स्थापित करते हुए, शब्द "ए" से "जी" द्वारा दर्शित रास्ते के अधिकार को अवरुद्ध करने और कोई भी बाधा कारित करने से अवरुद्ध करने, तथा उसके ऊपर किसी भी निर्माण को उद्भूत करने से अवरुद्ध करने तथा स्थल नक्शा में लाल रंग से दर्शित बिन्दु पी-1 से पी-5 पर पशु बांधने के लिए आने-जाने और खूंटा गाड़ने से अवरुद्ध करने तथा रास्ते में नांद और खूंटा को हटाने के लिए प्रतिवादी को निर्देश देते हुए, स्थायी व्यादेश जारी करने के लिए एक वाद फाइल किया । वादी ने यह प्रकथन किया है कि उसने ग्राम तब्बा, तहसील और जिला ऊना में अपनी आबादी प्राप्त की है जो स्थल नक्शा में हरे रंग से दर्शित है और प्रतिवादी ने भी उसी गांव में आबादी प्राप्त की है जो स्थल नक्शा में पीले रंग से दर्शित है । शब्द "जे" से "एन" द्वारा चिह्नित जो लाल रंग में दर्शित है, ऊना राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा हुआ एक सामान्य मार्ग है जो "दक्षिण से पूर्व की ओर" जाता है और उसके बाद आगे "आबादियों के पीछे से उत्तर की ओर" जाता है और आबादियों के

बीच में जो रास्ता जुड़ा हुआ है उसे शब्द "ए" से "जी" में दर्शित किया गया है, जो लाल रंग में है । रास्ता सभी ओर से 9 फीट चौड़ा है । वादी और उसके कुटुम्ब सदस्य अन्य पड़ौसियों के साथ बिना किसी बाधा के उक्त रास्ते का प्रयोग करते हैं । वादी द्वारा यह भी प्रकथन किया गया है कि प्रतिवादी एक जिद्दी व्यक्ति है और रास्ते में बाधा डालने की कोशिश कर रहा है । पूर्व में भी वर्ष 1976 में प्रतिवादी ने उक्त रास्ते पर बलपूर्वक नांद का निर्माण करने और खूंटा गाड़ने की कोशिश कर चुका था जिसे वादी द्वारा विफल कर दिया गया था, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिवादी ने स्थायी व्यादेश के लिए वर्ष 1976 की सिविल वाद सं. 202 फाइल की थी जिसे तारीख 3 फरवरी, 1978 को खारिज कर दिया गया था । तथापि, प्रतिवादी ने उक्त निर्णय के विरुद्ध विद्वान् जिला न्यायाधीश के समक्ष एक अपील फाइल की थी । अन्ततोगत्वा विद्वान् जिला न्यायाधीश ने वर्ष 1982 की सिविल अपील सं. 40 में पारित तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के आदेश द्वारा इसे भागतः स्वीकार कर लिया था और प्रतिवादी को स्थल नक्शा प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए में शब्द "ए" से "ई" द्वारा यथानिर्दिष्ट विवादित स्थल का कब्जे सहित स्वामी घोषित करते हुए उसके ऊपर 9 फीट चौड़ा रास्ता मंजूर कर लिया था जिसका प्रयोग सामान्यतया वादियों और अन्यों द्वारा किया जाता है । इसके पश्चात्, प्रतिवादी ने तारीख 8 दिसम्बर, 1982 के उक्त निर्णय और डिक्री के विरुद्ध कोई अपील फाइल नहीं की जो अंतिम हो गया था और इस निर्णय को ध्यान में रखते हुए प्रतिवादी ने रास्ते से नांद और खूंटा हटा लिया था और उस समय पशुओं को बांधना बन्द कर दिया था । किन्तु, पुनः वर्ष 1996 में अर्थात् विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के अंतिम विनिश्चय के 10 वर्ष बीतने के पश्चात्, प्रतिवादी ने पुरानी सामग्रियों से पुनः नांद और खूंटे का निर्माण कर लिया और शब्द "ए" से "जी" लाल रंग में दर्शित रास्ते में पुनः अपने पशुओं को बांधना आरम्भ कर दिया । प्रतिवादी ने उसे अपने अवैध कार्य बंद करने के लिए कहा किन्तु उसने कोई ध्यान नहीं दिया, अतएव, यह वाद फाइल किया गया । प्रतिवादी ने लिखित कथन फाइल करते हुए, प्रांङ्-न्याय का प्रारम्भिक आक्षेप यह किया कि वाद, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 11 द्वारा वर्जित है, वादी तात्विक तथ्यों, विबंधन को छिपाने का दोषी है और वादी द्वारा फाइल स्थल नक्शा सही नहीं है । गुणागुणों पर, प्रतिवादी ने आबादी की मौजूदगी के तथ्य को स्वीकार किया और यह अभिकथन किया कि वादी का पुराना कमरा ढहा दिया गया है और दो नए

कमरे जो वस्तुतः सामान्य सहन के भाग हैं, का उसके द्वारा निर्माण किया गया है । प्रतिवादी द्वारा यह प्रकथन किया गया है कि वादी अपने अहाते की ओर गृह जल का प्रवाह परिवर्तित करने की कोशिश कर रहा है । प्रतिवादी ने पूर्ववर्ती मुकदमेबाजी और विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय से संबंधित, ग्राम तब्बा में दो स्थानों पर अपनी आबादी होना स्वीकार किया है । प्रतिवादी द्वारा यह भी प्रकथन किया गया है कि वह पुराने स्थल पर पशुओं को बांध रहा है । प्रतिवादी ने यह भी स्वीकार किया है कि उसे स्थल नक्शा प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए में शब्द "ए" से "ई" द्वारा यथानिर्दिष्ट विवादित स्थल का कब्जे सहित स्वामी घोषित किया गया है, इसके अध्यधीन कि उसके ऊपर 9 फीट चौड़ा रास्ता छोड़ा जाए जिसका सामान्यतया वादी और अन्यों द्वारा प्रतिवादी के बिना किसी बाधा के प्रयोग किया जाएगा । प्रतिवादी ने वादपत्र में किए गए अन्य प्रकथनों से इनकार किया है । वादी ने भी लिखित कथन का प्रत्युत्तर फाइल किया है और वादपत्र में किए गए अभिकथनों को दोहराया है और जिन्हें लिखित कथन में इनकार किया गया था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभिवचनों के आधार पर 6 विवाद्यक विरचित किए और सभी विवाद्यकों को वादी के पक्ष में विनिश्चित किया और तद्नुसार, वादी के वाद को डिक्री कर दिया । विद्वान् अपील न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई थी, जिसे खारिज कर दिया गया था । इससे व्यथित होकर वर्तमान द्वितीय अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय अपीलार्थी-प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल श्री अजय शर्मा द्वारा उद्भूत इस विनिर्दिष्ट आक्षेप का उल्लेख करता है कि वाद, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के प्रांङ-न्याय के सिद्धांत के साथ पठित आदेश 2 के नियम 2 द्वारा वर्जित है तो इसे न्यायालय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में प्रयोज्य नहीं मान सकता है । वादपत्र के परिशीलन से यह स्पष्ट सुझाव मिलता है कि वादी ने प्रतिवादी के विरुद्ध 9 फीट रास्ते पर बाधा कारित करने से उसे अवरुद्ध करने के लिए व्यादेश की ईप्सा की है, जिसके अधिकार को विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा 1982 की सिविल अपील संख्या 40 में पारित तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के अपने निर्णय में पहले ही विनिश्चित किया जा चुका था, जो अंतिम हो गया है । वादपत्र के परिशीलन से कहीं भी यह सुझाव नहीं मिलता है कि वादी ने वर्तमान वाद के माध्यम से उस विवाद्यक का न्यायनिर्णयन करने की ईप्सा नहीं की है जो पूर्ववर्ती वाद की विषयवस्तु रही है । वर्तमान वाद

को ध्यान में रखते हुए, वादी ने मात्र यह प्रार्थना की है कि प्रतिवादी को 9 फीट चौड़े रास्ते पर बाधा कारित करने से अवरुद्ध किया जाए । यह भी विवादित नहीं है कि 9 फीट चौड़े रास्ते का प्रयोग करने के बारे में अधिकार को पूर्ववर्ती वाद अर्थात् वर्ष 1976 की सिविल वाद सं. 294 में पहले ही सुस्थिर किया जा चुका था जिसके द्वारा वादी और अन्य व्यक्तियों को विनिर्दिष्ट रास्ते को प्रयोग करने का हकदार अभिनिर्धारित किया गया था इस बात के अध्यधीन कि प्रतिवादी उस पर कोई बाधा कारित नहीं करेगा । इस प्रक्रम पर, यहां यह इंगित करना महत्वपूर्ण है कि वर्तमान वाद के माध्यम से वादी रास्ते पर अधिकार का दावा नहीं कर रहा है जिसे वह तारीख 3 फरवरी, 1978 के पूर्ववर्ती डिक्री के माध्यम से पहले ही प्राप्त कर चुका है । वर्तमान वाद के माध्यम से, उसने 9 फीट चौड़े रास्ते पर किसी प्रकार की बाधा कारित करने से प्रतिवादी को अवरुद्ध करते हुए, मात्र आज्ञापक व्यादेश की डिक्री की ईप्सा की है । अतएव, विद्वान् काउंसेल श्री अजय शर्मा की यह दलील कि वर्तमान वाद, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 11 द्वारा वर्जित है, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में स्वीकार नहीं किया जा सकता है । जहां तक सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 2 के नियम 2 का संबंध है, इसके उपबंध निम्नलिखित हैं – "2. **वाद के अन्तर्गत संपूर्ण दावा होगा** – (1) हर वाद के अन्तर्गत वह पूरा दावा होगा जिसे उस वाद हेतुक के विषय में करने का वादी हकदार है, किन्तु वादी वाद को किसी न्यायालय की अधिकारिता के भीतर लाने की दृष्टि से अपने दावे के किसी भाग का त्याग कर सकेगा । (2) **दावे के भाग का त्याग** – जहां वादी अपने दावे के किसी भाग के बारे में वाद लाने का लोप करता है या उसे साशय त्याग देता है वहां उसके पश्चात् वह इस प्रकार लोप किए गए या त्यक्त भाग के बारे में वाद नहीं लाएगा । (3) **कई अनुतोषों में से एक के लिए वाद लाने का लोप** – एक ही वाद हेतुक के बारे में एक से अधिक अनुतोष पाने का हकदार व्यक्ति ऐसे सभी अनुतोषों या उनमें से किसी के लिए वाद ला सकेगा, किन्तु यदि वह ऐसे सभी अनुतोषों के लिए वाद लाने का लोप न्यायालय की इजाजत के बिना करता है तो उसके पश्चात् वह इस प्रकार लोप किए गए किसी भी अनुतोष के लिए वाद नहीं लाएगा ।" उपर्युक्त उपबंधों के मूल परिशीलन से यह उपदर्शित होता है कि यदि कोई वादी एक ही वाद हेतुक के संबंध में प्रतिवादी के विरुद्ध कतिपय अनुतोष प्राप्त करने का हकदार है तो वह उस दावे को इस प्रकार अलग नहीं कर सकता

है कि दावे के एक भाग का लोप कर दे और दूसरे भाग का दावा करे । यदि वाद हेतुक एक ही है तो वादी को एक वाद में न्यायालय के समक्ष अपने सभी दावों को रखना होता है क्योंकि आदेश 2 का नियम 2 इस आधारभूत सिद्धांत पर आधारित है कि प्रतिवादी को एक ही वाद हेतुक के लिए दोबारा तंग नहीं करना चाहिए । किन्तु, वर्तमान मामले में, स्वीकृततः वाद फाइल करने के समय पर, वादी 9 फीट चौड़े रास्ते पर वादी द्वारा कारित मात्र बाधा से व्यथित था, जिसका अभिप्राय यह है कि उस सुसंगत समय पर वादी की मात्र शिकायत 9 फीट चौड़े रास्ते के बारे में थी, जिसका वादी को पूर्ववर्ती वाद द्वारा हकदार अभिनिर्धारित किया गया था, जिसको प्रतिवादी द्वारा बाधित किया गया था या है, इस प्रकार, प्रतिवादी के विरुद्ध आज्ञापक व्यादेश के लिए डिक्री की प्रार्थना की गई थी । अतएव, आदेश 2 का नियम 2, वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है । यदि सम्पूर्ण वादपत्र का परिशीलन किया जाए तो मेरे विवेक में इस बारे में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 2 के नियम 2 के बारे में कोई मानदंड अधिकथित नहीं किया जा सकता है क्योंकि वर्तमान वाद के माध्यम से वादी ने सम्पूर्ण दावा किया है जिसका वह वाद हेतुक के संबंध में हकदार है जो उसे सुसंगत समय पर उद्भूत हुआ था । स्वीकृततः, उस सुसंगत समय पर वादी को वाद हेतुक उद्भूत हुआ था जब प्रतिवादी ने 9 फीट चौड़े रास्ते को बाधित किया और इस प्रकार, यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि वादी वर्तमान वाद के माध्यम से अपने सम्पूर्ण दावे को नहीं कर सकता है, जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 2 के नियम 2 में समाविष्ट है । श्री अजय शर्मा ने यह भी तर्क दिया कि वादी को वाद फाइल करने के बजाय विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के निर्णय और डिक्री के निष्पादन के लिए वाद फाइल करना चाहिए था । वर्तमान मामले में, निस्संदेह, विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के निर्णय और डिक्री द्वारा प्रतिवादी को वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी अभिनिर्धारित किया गया था, जिसका अभिप्राय यह है कि डिक्री वादी के पक्ष में पारित की गई थी, इस शर्त के अध्यधीन कि वह 9 फीट चौड़ा रास्ता छोड़ेगा । तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के निर्णय और डिक्री के परिशीलन से यह सुझाव मिलता है कि उसे प्रतिवादी के पक्ष में पारित किया गया था, न कि वादी के पक्ष में, प्रतिवादी का वाद उसे कब्जे सहित स्वामी अभिनिर्धारित करते हुए डिक्री किया गया था और मात्र रास्ते का

अधिकार ही वादी को दिया गया था । चूंकि, डिक्री प्रतिवादी के पक्ष में पारित किया गया था, इसलिए, वादी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 21 के नियम 32 के अधीन उसके प्रवर्तन कराने का प्रश्न ही नहीं उठता है, इसके बजाय वह नए वाद हेतुक पर नया वाद फाइल करने के लिए सक्षम था, जो उसे प्रतिवादी द्वारा रास्ते में कारित बाधा से उद्भूत हुआ था । (पैरा 24, 25, 26, 27, 28 और 29)

इसके अतिरिक्त, वर्तमान मामले में, यह आधार साबित हो गया है कि तारीख 8 दिसम्बर, 1986 का निर्णय पारित होने के पश्चात् रास्ते से सभी नांद और खूंटे हटा लिए गए थे और वर्ष 1996 तक वादी और अन्य व्यक्ति बिना किसी बाधा के उस रास्ते का प्रयोग करते थे और इस प्रकार, 10 वर्षों तक वादी को तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के निर्णय का प्रवर्तन कराने के लिए कोई विधिक कार्यवाहियां फाइल करने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी । वर्ष 1996 में जब बाधा कारित की गई, जिसे अभिलेख पर सम्यक् रूप से साबित कर दिया गया है, तब वादी नया वाद फाइल करने का हकदार हो गया जिसे उसने वर्तमान मामले में किया है । चूंकि, वादी द्वारा फाइल वाद प्रांङ्-न्याय द्वारा वर्जित नहीं है, जैसा कि उपर्युक्त अभिनिर्धारित किया गया है इसलिए, वादी को नया वाद फाइल करने से कोई विनिर्दिष्ट वर्जन नहीं है । यदि चर्चा की सुविधा के लिए यह उपधारणा कर ली जाती है कि वादी से तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के निर्णय और डिक्री का प्रवर्तन कराने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 21 के नियम 32 के अधीन निष्पादन आवेदन फाइल करना अपेक्षित था तो भी स्वीकृततः उसके पास वर्ष 1996 तक अर्थात् लगभग 10 वर्षों तक ऐसा आवेदन फाइल करने के लिए कोई अवसर/वाद हेतुक उद्भूत नहीं हुआ था और इसके पश्चात्, प्रतिवादी ने वादी के उस दावे को समाप्त करने के लिए परिसीमा अवधि का आक्षेप उद्भूत किया जिसका वह वस्तुतः मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पाने का हकदार था । यद्यपि, दोनों निचले न्यायालयों ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् वर्तमान मामले में समवर्ती निष्कर्ष निकाले हैं और सम्पूर्ण मुद्दे की पुनः परीक्षा करने के लिए इस न्यायालय के लिए कम गुंजाइश छोड़ी है, जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा कई बार अभिनिर्धारित किया गया है, तथापि, एकांकी रूप से यह ऋजु और न्यायोचित निष्कर्ष निकाला जाता है कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और डिक्रियां अवैध नहीं हैं और उलटे जाने योग्य नहीं हैं तथा वे अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के सही मूल्यांकन पर

आधारित हैं, इस न्यायालय ने अभिलेख पर के प्रत्यक्ष या दस्तावेजी साक्ष्यों की पुनः परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है । परिणामतः, पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय विधि में सही हैं और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के समुचित मूल्यांकन पर आधारित हैं । अतएव, वे कायम रखे जाने योग्य हैं । (पैरा 31, 32 और 33)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2000] एच. एल. जे. 2000 (एच. पी.) 1099 :
कमला देवी बनाम **जसवंत सिंह डोड और अन्य** । 30

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2005 की नियमित द्वितीय अपील सं. 108.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री अजय शर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री एन. के. ठाकुर, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ सुश्री जमुना, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति संदीप शर्मा – यह अपील प्रतिवादियों द्वारा विद्वान् जिला न्यायाधीश, हमीरपुर द्वारा पारित तारीख 5 फरवरी, 2005 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा उन्होंने विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी (1), न्यायालय सं. 2, ऊना द्वारा पारित तारीख 1 सितम्बर, 2003 के निर्णय और डिक्री, जिसमें प्रत्यर्थी-वादी द्वारा फाइल वाद की डिक्री कर दी गई थी, की पुष्टि कर दी थी ।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि वादियों-प्रत्यर्थियों (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् "वादा" कहा गया है) ने प्रतिवादियों-अपीलार्थियों (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् "प्रतिवादी" कहा गया है) को ग्राम तब्बा, तहसील और जिला ऊना, हि. प्र. में स्थित स्थल नक्शा के बिन्दु "एच" और "आई" पर नांद स्थापित करते हुए, शब्द "ए" से "जी" द्वारा दर्शित रास्ते के अधिकार को अवरुद्ध करने और कोई भी बाधा कारित करने से अवरुद्ध करने, तथा उसके ऊपर किसी भी निर्माण को उद्भूत करने से अवरुद्ध करने तथा स्थल नक्शा में लाल रंग से दर्शित बिन्दु पी-1 से पी-5 पर पशु बांधने के

लिए आने-जाने और खूंटा गाड़ने से अवरुद्ध करने तथा रास्ते में नांद और खूंटा को हटाने के लिए प्रतिवादी को निर्देश देते हुए, स्थायी व्यादेश जारी करने के लिए एक वाद फाइल किया ।

3. वादी ने यह प्रकथन किया है कि उसने ग्राम तब्बा, तहसील और जिला ऊना में अपनी आबादी प्राप्त की है जो स्थल नक्शा में हरे रंग से दर्शित है और प्रतिवादी ने भी उसी गांव में आबादी प्राप्त की है जो स्थल नक्शा में पीले रंग से दर्शित है । शब्द "जे" से "एन" द्वारा चिह्नित जो लाल रंग में दर्शित है, ऊना राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा हुआ एक सामान्य मार्ग है जो "दक्षिण से पूर्व की ओर" जाता है और उसके बाद आगे "आबादियों के पीछे से उत्तर की ओर" जाता है और आबादियों के बीच में जो रास्ता जुड़ा हुआ है उसे शब्द "ए" से "जी" में दर्शित किया गया है, जो लाल रंग में है । रास्ता सभी ओर से 9 फीट चौड़ा है । वादी और उसके कुटुम्ब सदस्य अन्य पड़ौसियों के साथ बिना किसी बाधा के उक्त रास्ते का प्रयोग करते हैं ।

4. वादी द्वारा यह भी प्रकथन किया गया है कि प्रतिवादी एक जिद्दी व्यक्ति है और रास्ते में बाधा डालने की कोशिश कर रहा है । पूर्व में भी वर्ष 1976 में प्रतिवादी ने उक्त रास्ते पर बलपूर्वक नांद का निर्माण करने और खूंटा गाड़ने की कोशिश कर चुका था जिसे वादी द्वारा विफल कर दिया गया था, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिवादी ने स्थायी व्यादेश के लिए वर्ष 1976 की सिविल वाद सं. 202 फाइल की थी जिसे तारीख 3 फरवरी, 1978 को खारिज कर दिया गया था । तथापि, प्रतिवादी ने उक्त निर्णय के विरुद्ध विद्वान् जिला न्यायाधीश के समक्ष एक अपील फाइल की थी । अन्ततोगत्वा विद्वान् जिला न्यायाधीश ने वर्ष 1982 की सिविल अपील सं. 40 में पारित तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के आदेश द्वारा इसे भागतः स्वीकार कर लिया था और प्रतिवादी को स्थल नक्शा प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए में शब्द "ए" से "ई" द्वारा यथानिर्दिष्ट विवादित स्थल का कब्जे सहित स्वामी घोषित करते हुए उसके ऊपर 9 फीट चौड़ा रास्ता मंजूर कर लिया था जिसका प्रयोग सामान्यतया वादियों और अन्यों द्वारा किया जाता है । इसके पश्चात्, प्रतिवादी ने तारीख 8 दिसम्बर, 1982 के उक्त निर्णय और डिक्री के विरुद्ध कोई अपील फाइल नहीं की जो अंतिम हो गया था और इस निर्णय को ध्यान में रखते हुए प्रतिवादी ने रास्ते से नांद और खूंटा हटा लिया था और उस समय पशुओं को बांधना बन्द कर दिया था । किन्तु, पुनः वर्ष 1996 में अर्थात् विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 8

दिसम्बर, 1986 के अंतिम विनिश्चय के 10 वर्ष बीतने के पश्चात्, प्रतिवादी ने पुरानी सामग्रियों से पुनः नांद और खूंटे का निर्माण कर लिया और शब्द "ए" से "जी" लाल रंग में दर्शित रास्ते में पुनः अपने पशुओं को बांधना आरम्भ कर दिया । प्रतिवादी ने उसे अपने अवैध कार्य बंद करने के लिए कहा किन्तु उसने कोई ध्यान नहीं दिया, अतएव, यह वाद फाइल किया गया ।

5. प्रतिवादी ने लिखित कथन फाइल करते हुए, प्रांङ्-न्याय का प्रारम्भिक आक्षेप यह किया कि वाद, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में सी. पी. सी. कहा गया है) की धारा 11 द्वारा वर्जित है, वादी तात्विक तथ्यों, विबंधन को छिपाने का दोषी है और वादी द्वारा फाइल स्थल नक्शा सही नहीं है । गुणागुणों पर, प्रतिवादी ने आबादी की मौजूदगी के तथ्य को स्वीकार किया और यह अभिकथन किया कि वादी का पुराना कमरा ढहा दिया गया है और दो नए कमरे जो वस्तुतः सामान्य सहन के भाग हैं, का उसके द्वारा निर्माण किया गया है । प्रतिवादी द्वारा यह प्रकथन किया गया है कि वादी अपने अहाते की ओर गृह जल का प्रवाह परिवर्तित करने की कोशिश कर रहा है । प्रतिवादी ने पूर्ववर्ती मुकदमेबाजी और विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय से संबंधित, ग्राम तब्बा में दो स्थानों पर अपनी आबादी होना स्वीकार किया है । प्रतिवादी द्वारा यह भी प्रकथन किया गया है कि वह पुराने स्थल पर पशुओं को बांध रहा है । प्रतिवादी ने यह भी स्वीकार किया है कि उसे स्थल नक्शा प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए में शब्द "ए" से "ई" द्वारा यथानिर्दिष्ट विवादित स्थल का कब्जे सहित स्वामी घोषित किया गया है, इसके अध्यधीन कि उसके ऊपर 9 फीट चौड़ा रास्ता छोड़ा जाए जिसका सामान्यतया वादी और अन्यों द्वारा प्रतिवादी के बिना किसी बाधा के प्रयोग किया जाएगा । प्रतिवादी ने वादपत्र में किए गए अन्य प्रकथनों से इनकार किया है ।

6. वादी ने भी लिखित कथन का प्रत्युत्तर फाइल किया है और वादपत्र में किए गए अभिकथनों को दोहराया है और जिन्हें लिखित कथन में इनकार किया गया था ।

7. विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभिवचनों के आधार पर 6 विवाद्यक विरचित किए और सभी विवाद्यकों को वादी के पक्ष में विनिश्चित किया और तद्नुसार, वादी के वाद को डिक्री कर दिया । विद्वान् अपील न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई थी, जिसे खारिज कर दिया गया था ।

8. यह द्वितीय अपील निम्नलिखित विधि के सारवान् प्रश्नों पर स्वीकार की गई है :–

(1) क्या दोनों विद्वान् निचले न्यायालयों ने प्रयोज्य विधि के उपबंधों, पक्षकारों के अभिवचनों और उनके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों का मूल्यांकन करने में त्रुटि कारित की है, जिससे तद्द्वारा, पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री दूषित हो जाती है ?

(2) क्या वाद, जैसा कि वादी द्वारा फाइल किया गया है, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 2 के नियम 2 के उपबंधों का अधिक्रमण करता है और इस पहलू को विद्वान् निचले न्यायालयों द्वारा अनदेखी की गई, जिससे तद्द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्रियां दूषित हो जाती हैं ?

(3) क्या प्रतिवादी सं. 1 के कथनों के साथ ही पूर्ववर्ती वाद में, स्थल नक्शा दस्तावेज प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए का गलत परिशीलन किया गया है, जिससे तद्द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्रियां दूषित हो जाती हैं ?

(4) क्या व्यादेश का वाद जो उस व्यक्ति द्वारा फाइल किया गया है, जो कब्जे में नहीं है, विधि में कायम रखे जाने योग्य नहीं है किन्तु प्रतिकूल विनिश्चय, जैसा कि विद्वान् निचले न्यायालयों द्वारा पारित किया गया है, तद्द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्रियां दूषित हो जाती हैं ?

9. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और मामले के अभिलेखों का परिशीलन किया ।

10. अपीलार्थी-प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल श्री अजय शर्मा ने यह जोरदार तर्क दिया कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्रियां अवैध और तथ्यतः गलत होने के कारण कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं । उन्होंने बलपूर्वक यह तर्क दिया कि दोनों निचले न्यायालयों ने वादी द्वारा संलग्न स्थल नक्शे का परिशीलन करने में गंभीर त्रुटि कारित की है क्योंकि वह उस स्थल नक्शे के पूर्णतया प्रतिकूल है जिसके आधार पर पूर्ववर्ती वाद में डिक्री पारित की गई थी और स्थल नक्शा प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए को डिक्री का एक अनिवार्य अंग बनाया गया था । उन्होंने यह तर्क दिया कि निचले न्यायालयों द्वारा यह विनिर्दिष्टतः यह अभिनिर्धारित

किया गया है कि प्रतिवादी वाद स्थल का कब्जे सहित स्वामी है और वादी को मात्र 9 फीट चौड़ा रास्ता ही मंजूर किया गया था । पूर्ववर्ती स्थल नक्शा और प्रतिवादी द्वारा अभिलेख पर लाया गया वर्तमान स्थल नक्शा के साथ ही वादी द्वारा अभिलेख पर लाए गए स्थल नक्शे के परिशीलन से यह स्पष्टतः सिद्ध होता है कि वर्तमान अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा कोई भी बाधा उद्भूत नहीं की गई थी । श्री शर्मा ने इस न्यायालय का ध्यान सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 2 के नियम 2 के उपबंधों की ओर भी दिलाया है जहां वादी से अपने संपूर्ण मामले को रखने की अपेक्षा की गई है ।

11. श्री शर्मा ने यह जोरदार तर्क दिया कि वादी द्वारा फाइल वाद, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 11 के अधीन पूर्णतया वर्जित है क्योंकि इस मामले में उद्भूत संविवाद का विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा 1976 की सिविल वाद सं. 202 में पहले ही विनिश्चय किया जा चुका है और इस प्रकार, वादी वर्तमान वाद के माध्यम से इस मुद्दे को उद्भूत करने से विबंधित है । उन्होंने यह भी अभिवाक् किया कि यदि पूर्ववर्ती डिक्री का कोई अधिक्रमण किया गया है तो वर्तमान वाद में वादी के लिए उपचार, वाद फाइल करने के द्वारा नहीं अपितु सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 21 के नियम 32 के अधीन प्राप्त किया जा सकता है और इस प्रकार, विद्वान् दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और डिक्रियां अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य हैं ।

12. वादी-प्रत्यर्थी के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एन. के. ठाकुर ने विद्वान् दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों का समर्थन किया है और बलपूर्वक यह दलील दी है कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के सही मूल्यांकन पर आधारित हैं । उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान अपील में लिए गए आधारों के साथ ही प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा फाइल लिखित कथन की ओर दिलाया है, जिसके द्वारा डिक्री पारित करने के बारे में तथ्य की जानकारी प्रतिवादी-अपीलार्थी को दी गई है, इसके अलावा, यह भी स्वीकार किया गया है कि विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा 1982 के सिविल अपील सं. 40 में पारित तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के निर्णय के अनुसरण में, 9 फीट चौड़ा रास्ता वादी (इसमें के प्रतिवादी-अपीलार्थी) के लिए छोड़ा गया था ।

13. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री ठाकुर ने यह अभिवाक् किया है कि

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 11 के उपबंध वर्तमान मामले में लागू नहीं होते हैं, एकमात्र इस कारण से कि वर्तमान वाद के माध्यम से वाद भूमि के बारे में नया संविवाद उद्भूत नहीं किया गया है जो पूर्ववर्ती वाद की विषयवस्तु थी । उन्होंने यह कथन किया कि पक्षकारों के अधिकार, विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा 1982 की सिविल अपील सं. 40 (जो 1976 की सिविल वाद सं. 202 से उद्भूत हुई थी), में पारित तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के निर्णय और डिक्री द्वारा पहले ही सुस्थिर कर दिए गए हैं जो अब अंतिम हो गया है । वर्तमान वाद के माध्यम से वे इसमें उपर्युक्त निर्दिष्ट विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के निर्णय के निबंधनों में शब्द "ए" से "जी" द्वारा दर्शित रास्ते के अधिकार को बंद करने या कोई बाधा कारित करने से प्रतिवादी-अपीलार्थी को अवरुद्ध करने के लिए मात्र स्थायी व्यादेश के लिए डिक्री के लिए ही प्रार्थना कर सकते थे ।

14. श्री ठाकुर ने अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा उद्भूत इन तर्कों का भी खंडन किया कि वर्तमान वाद सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 2 के नियम 2 का अधिक्रमण करता है । उन्होंने यह भी कथन किया कि चूंकि वादी उस रास्ते को बन्द करने से व्यथित है जिसके लिए उसे जिला न्यायाधीश द्वारा हकदार अभिनिर्धारित किया गया है तो उसे रास्ते के लिए दावा करते हुए नया वाद फाइल करना चाहिए क्योंकि वाद फाइल करते समय, वादी ने मात्र यह दावा किया है कि वह रास्ता पाने का हकदार है और इस प्रकार, वाद कायम रखे जाने योग्य है और यह सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 2 के नियम 2 द्वारा वर्जित नहीं हैं ।

15. दोनों पक्षकारों की ओर से दी गई विरोधी दलीलों का उल्लेख करने के पूर्व, यह स्पष्टतः दर्शित होता है कि विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा 1982 की सिविल अपील सं. 40 में पारित तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के निर्णय द्वारा वर्तमान प्रतिवादी-अपीलार्थी को उस वाद में प्रस्तुत स्थल नक्शा प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए में शब्द "ए" से "ई" द्वारा यथानिर्दिष्ट विवादित स्थल का कब्जे सहित स्वामी घोषित किया गया था, इस शर्त के अध्यधीन कि उसके ऊपर 9 फीट चौड़ा सामान्य रास्ता दिया जाए जिसका प्रयोग प्रतिवादी द्वारा कारित किसी बाधा के बिना वादी और अन्यों द्वारा सामान्यतः किया जाएगा और स्थल नक्शा उस सुसंगत समय पर, न्यायालय द्वारा मंजूर डिक्री का एक अनिवार्य भाग भी होगा ।

16. पक्षकारों द्वारा फाइल वादपत्र के साथ ही लिखित कथन की संवीक्षा करने से यह भी प्रकट होता है कि उपर्युक्त यथानिर्दिष्ट विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के निर्णय और डिक्री को पारित करने के पश्चात् प्रतिवादी ने वाद भूमि से नांद और खूंटे हटा लिए थे और उसमें कोई बाधा उद्भूत नहीं की और इसके पश्चात्, वर्ष 1996 तक वादी के साथ ही अन्यों ने भी स्थल नक्शा प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए में शब्द "ए" से "ई" द्वारा यथाचिह्नित 9 फीट रास्ते का प्रयोग किया था। वादी ने स्थल नक्शा के बिन्दु "एच" और "आई" पर नांद उद्भूत करते हुए, शब्द "ए" से "जी" द्वारा चिह्नित रास्ते को बन्द करने और कोई बाधा कारित करने से प्रतिवादी को अवरुद्ध करने के लिए स्थायी व्यादेश के लिए वाद फाइल किया था। वादपत्र में यह विनिर्दिष्टतः प्रकथन किया गया है कि अपीलार्थी उस रास्ते पर बाधा कारित करने की कोशिश कर रहा है जिसके अधिकार को, विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा 1982 की सिविल अपील सं. 40 में पारित तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के निर्णय और डिक्री द्वारा पक्षकारों के बीच पहले से सुस्थिर किया जा चुका है।

17. वादी द्वारा 1996 के सिविल वाद सं. 294 में फाइल वादपत्र के पैराग्राफ 3 और 5 के सामान्य परिशीलन से यह इंगित होता है कि प्रतिवादी-अपीलार्थी ने विवादित स्थल और सहन के रूप में अन्य भाग का दावा करते हुए, 1976 की वाद सं. 202 फाइल की थी किन्तु, उसे तारीख 3 फरवरी, 1978 को खारिज कर दिया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रतिवादी की आबादी के सामने स्थल नक्शा में लाल रंग में दर्शित शब्द "ए" से "जी" द्वारा चिह्नित सम्पूर्ण भाग और पीले रंग से दर्शित सहन के रूप में अन्य भाग को रास्ते के रूप में अभिनिर्धारित किया गया था। तथापि, विद्वान् जिला न्यायाधीश ने प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा फाइल 1982 की सिविल अपील सं. 40 में पारित तारीख 16 नवम्बर, 1981 के निर्णय द्वारा मामले में नए सिरे से विनिश्चय करने के लिए निचले न्यायालय के पास भेज दिया था जिसने तारीख 2 फरवरी, 1982 के निर्णय द्वारा प्रतिवादी के अभिवाक् को पुनः नामंजूर कर दिया था और वाद खारिज कर दिया था। इसके पश्चात्, अपीलार्थी-प्रतिवादी ने पुनः 1982 की सिविल अपील सं. 40 फाइल की जिसे तारीख 8 दिसम्बर, 1986 को विनिश्चित किया गया था, जिसके द्वारा स्थल नक्शा में लाल रंग में दर्शित शब्द "ए" से "एच" के रूप में चिह्नित क्षेत्र को बिना किसी बाधा के वादी और अन्यों द्वारा प्रयोग किए जाने के लिए सामान्य रास्ते के रूप

में अभिनिर्धारित किया गया था । चूंकि, प्रतिवादी-अपीलार्थी ने तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के उक्त निर्णय और डिक्री के विरुद्ध कोई अपील फाइल नहीं की, इसलिए, यह अंतिम हो गया था ।

18. वादपत्र के पैराग्राफ 7 और 8 में, यह विनिर्दिष्टतः प्रकथन किया गया है कि विद्वान् जिला न्यायाधीश, ऊना के विनिश्चय के पश्चात् वर्तमान अपीलार्थी-प्रतिवादी ने शब्द "ए" से "जी" चिह्नित रास्ते से नांद और खूंटे के साथ ही बाधाएं भी हटा ली थीं किन्तु कुछ समय के पश्चात् उसने पुरानी सामग्रियों से नांद का निर्माण कर लिया और खूंटे गाड़ लिए तथा शब्द "ए" से "जी" द्वारा दर्शित रास्ते पर पशु बांधना आरम्भ कर दिया और इस प्रकार, वर्तमान वाद फाइल किया गया ।

19. अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन फाइल करते हुए, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 11 और आदेश 2 के नियम 2 के अधीन विनिर्दिष्ट वर्जन के बारे में दोनों आरम्भिक आक्षेप उद्भूत किए गए । तथापि, विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा 1982 की सिविल अपील सं. 40 में प्रतिवादी-अपीलार्थी को वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी अभिनिर्धारित करते समय निर्णय पारित करते हुए, वादी और अन्य व्यक्तियों के पक्ष में 9 फीट चौड़ा रास्ता मंजूर किया था, से इनकार नहीं किया गया है । इसके अलावा, पैरा 4, 5 और 6 के स्पष्ट परिशीलन से यह दर्शित होता है कि प्रतिवादी ने यह स्वीकार किया है कि वह विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और डिक्री द्वारा आबद्ध है, जो पक्षकारों के बीच अंतिम हो गया था । तथापि, प्रतिवादी-अपीलार्थी ने लिखित कथन में वादी द्वारा वाद के साथ संलग्न स्थल नक्शा को विवादित किया है । यदि प्रतिवादी द्वारा फाइल लिखित कथन का सम्पूर्ण परिशीलन किया जाए तो यह सुरक्षित तौर पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 9 फीट चौड़े रास्ता की मौजूदगी के साथ ही इसके प्रतिवादी के पक्ष में अधिकार का प्रयोग करने से इनकार/विवादित नहीं किया गया है । इसके अलावा, अभिलेख पर कुछ नए तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है जो वर्तमान मामले का न्यायनिर्णयन करने के लिए सुसंगत नहीं हो सकता है ।

20. वादपत्र के साथ ही लिखित कथन में किए गए प्रकथनों के परिशीलन से, जिसको इसमें उपर्युक्त निर्दिष्ट किया गया है, से मेरे विवेक में यह कोई संदेह नहीं रह जाता है कि 9 फीट चौड़ा रास्ता अस्तित्व में है जैसा कि वादी द्वारा दावा किया गया है और प्रतिवादी द्वारा स्वीकार किया

गया है । दोनों पक्षकारों ने सुस्पष्टतः यह स्वीकार किया है कि विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के निर्णय द्वारा उनकी भूमि पर 9 फीट चौड़ा सामान्य रास्ता प्रतिवादी द्वारा बिना किसी बाधा के वादी और अन्यों द्वारा सामान्य प्रयोग के लिए छोड़ा गया था । चूंकि, प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में यह स्वीकार किया है कि वादी, विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित पूर्ववर्ती डिक्री के निबंधनों में बिना किसी बाधा के 9 फीट चौड़ा रास्ता प्रयोग करने का हकदार है, स्वीकृततः, जो अंतिम हो गया है, वादी द्वारा सिविल वाद में यथाप्रार्थित अनुतोष को पाने का हकदार है । वादी ने वाद में यह विनिर्दिष्ट प्रकथन किया है कि वर्ष 1996 अर्थात् तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के निर्णय और डिक्री को पारित करने के लगभग 10 वर्षों के पश्चात् प्रतिवादी विवादित भूमि पर नांद उद्भूत करके और खूंटे गाड़ते हुए 9 फीट चौड़े रास्ते में बाधा उद्भूत करनी आरम्भ कर दी थी और इसके पश्चात्, पशुओं को बांधना आरम्भ कर दिया था और अतएव वर्ष 1996 में वर्तमान वाद फाइल करने के लिए उसे नया वाद हेतुक उद्भूत हुआ ।

21. वादी यह साबित करने के लिए कि प्रतिवादी ने वस्तुतः 9 फीट चौड़े रास्ते को बाधित किया है, पूर्ववर्ती वाद में प्रदर्शित स्थल नक्शा प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए को अभिलेख पर लाया है और जिसे भारसाधक, साधारण अभिलेख रूम, ऊना द्वारा साबित किया गया है । अभि. सा. 2 जगदीश राम ने अपने पिता द्वारा तैयार स्थल नक्शा प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए को साबित किया है, जिनकी मृत्यु साक्षियों की परीक्षा के दौरान हो गई थी । अभि. सा. 3 बिसन दास ने वर्तमान मामले के स्थल नक्शा को साबित किया है जो प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए है । इस न्यायालय ने दोनों स्थल नक्शों अर्थात् वर्तमान वाद में संलग्न प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए के साथ ही पूर्ववर्ती स्थल नक्शा प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए का परिशीलन किया है जिससे स्पष्टतः यह सुझाव मिलता है कि वे एक समान हैं । अभि. सा. 4 सोमनाथ ने यह कथन किया है कि प्रतिवादी रघुवीर सिंह ने जयमल के घर से सटे नांद उद्भूत कर लिए थे और उक्त रास्ते में पशु बांधने के लिए खूंटे भी गाड़ लिए थे और इस प्रकार, उन सभी व्यक्तियों को बाधा कारित होती थी, जो उक्त रास्ते का प्रयोग करते थे । वादी जीवन सिंह अभि. सा. 5 ने अपने कथन में सुस्पष्टतः यह कथन किया है कि प्रतिवादी ने उक्त रास्ते पर नांद उद्भूत कर लिया है और खूंटे गाड़ लिए हैं, इस प्रकार, उक्त रास्ते का प्रयोग करना कठिन हो गया है । अपनी प्रतिपरीक्षा में, उसने वादपत्र में

किए गए सभी प्रकथनों को स्पष्टतः पुनः दोहराया है । दोनों पूर्वोक्त वादी साक्षियों की प्रतिपरीक्षा से यह भी सुझाव मिलता है कि वादी द्वारा अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए प्रस्तुत सभी साक्षी अपने बयान पर कायम रहे और प्रतिवादी, उनकी प्रतिपरीक्षा करते समय इससे कोई अन्य चीज उद्धृत करने में असमर्थ रहा । इसके अलावा, प्रतिवादियों द्वारा अभिलेख पर लाए गए साक्षियों के परिशीलन से वादी द्वारा 9 फीट रास्ते में नांद का निर्माण और खूंटे गाड़ते हुए बाधा करने के बारे में वादी के पक्षकथन का समर्थन मिलता है ।

22. प्रतिवादी साक्षी 1 रघुवीर सिंह ने यह स्वीकार किया है कि विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित पूर्ववर्ती आदेश के निबंधनों में उसने रास्ते से नांद के साथ ही खूंटे भी हटा लिए थे किन्तु, उसने विवादित रास्ते पर नांद के साथ ही खूंटे की मौजूदगी को स्वीकार किया है । उसने यह भी स्वीकार किया कि उक्त रास्ते पर उक्त खूंटे में पशु बांधे जाते हैं किन्तु उसने इस बात से इनकार किया कि पशुओं को बांधने के कारण वादी को किसी प्रकार की बाधा कारित होती है ।

23. प्रतिवादी साक्षी 2 रावल सिंह ने भी 9 फीट चौड़े रास्ते पर नांद के निर्माण और उक्त रास्ते पर खूंटा गाड़ने को भी स्वीकार किया है । उसने यह भी स्वीकार किया है कि प्रतिवादी विवादित रास्ते पर अपना पशु बांधता है । इसके अलावा, साक्ष्य में यह आया है कि रास्ते में पशु बांधने के कारण रास्ता गंदा हो गया है और उक्त रास्ते का प्रयोग करते हुए, आना-जाना कठिन हो गया है । वादी के साथ ही प्रतिवादी द्वारा अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य से यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट होता है कि प्रतिवादी द्वारा 9 फीट चौड़े रास्ते पर नांद का निर्माण करके और खूंटा गाड़कर पशु बांधकर रास्ता बाधित किया गया है । रास्ते पर पशु बांधने के तथ्य भी साबित हो गए हैं जैसा कि यह प्रतिवादी साक्षी 2 के साक्ष्य में आया है । प्रतिवादी साक्षी 2 के साक्ष्य में यह भी आया है कि विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय के पूर्ववर्ती निबंधनों के अनुसार, रास्ते से नांद और खूंटे हटा लिए गए थे, इसका अभिप्राय यह है कि वर्ष 1996 में वादी और अन्य व्यक्तियों को उस सुसंगत समय पर स्पष्ट 9 फीट चौड़ा रास्ता दिया गया था । अतएव, वादी का यह अभिकथन/प्रकथन कि विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय के निबंधनों के अनुसार 9 फीट चौड़ा रास्ता छोड़ा गया था किन्तु वर्ष 1996 में प्रतिवादी द्वारा इसे बाधित कर दिया गया, सम्यक् रूप से साबित होता है और इस प्रकार, 9 फीट चौड़े रास्ते पर किसी प्रकार

की बाधा कारित करने से प्रतिवादी को अवरुद्ध करते हुए, उसे व्यादेश के लिए वाद फाइल करने का सही ही अधिकार था ।

24. अब, यदि मैं, अपीलार्थी प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल श्री अजय शर्मा द्वारा उद्भूत इस विनिर्दिष्ट आक्षेप का उल्लेख करता हूं कि वाद, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के प्रांङ्-न्याय के सिद्धांत के साथ पठित आदेश 2 के नियम 2 द्वारा वर्जित है तो इसे हम वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में प्रयोज्य नहीं मान सकते हैं । वादपत्र के परिशीलन से यह स्पष्ट सुझाव मिलता है कि वादी ने प्रतिवादी के विरुद्ध 9 फीट रास्ते पर बाधा कारित करने से उसे अवरुद्ध करने के लिए व्यादेश की ईप्सा की है, जिसके अधिकार को विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा 1982 की सिविल अपील संख्या 40 में पारित तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के अपने निर्णय में पहले ही विनिश्चित किया जा चुका था, जो अंतिम हो गया है । वादपत्र के परिशीलन से कहीं भी यह सुझाव नहीं मिलता है कि वादी ने वर्तमान वाद के माध्यम से उस विवाद्यक का न्यायनिर्णयन करने की ईप्सा नहीं की है जो पूर्ववर्ती वाद की विषयवस्तु रही है । वर्तमान वाद को ध्यान में रखते हुए, वादी ने मात्र यह प्रार्थना की है कि प्रतिवादी को 9 फीट चौड़े रास्ते पर बाधा कारित करने से अवरुद्ध किया जाए । यह भी विवादित नहीं है कि 9 फीट चौड़े रास्ते का प्रयोग करने के बारे में अधिकार को पूर्ववर्ती वाद अर्थात् वर्ष 1976 की सिविल वाद सं. 294 में पहले ही सुस्थिर किया जा चुका था जिसके द्वारा वादी और अन्य व्यक्तियों को विनिर्दिष्ट रास्ते को प्रयोग करने का हकदार अभिनिर्धारित किया गया था इस बात के अध्यधीन कि प्रतिवादी उस पर कोई बाधा कारित नहीं करेगा । इस प्रक्रम पर, यहां यह इंगित करना महत्वपूर्ण है कि वर्तमान वाद के माध्यम से वादी रास्ते पर अधिकार का दावा नहीं कर रहा है जिसे वह तारीख 3 फरवरी, 1978 के पूर्ववर्ती डिक्री के माध्यम से पहले ही प्राप्त कर चुका है । वर्तमान वाद के माध्यम से, उसने 9 फीट चौड़े रास्ते पर किसी प्रकार की बाधा कारित करने से प्रतिवादी को अवरुद्ध करते हुए, मात्र आज्ञापक व्यादेश की डिक्री की ईप्सा की है । अतएव, विद्वान् काउंसेल श्री अजय शर्मा की यह दलील कि वर्तमान वाद, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 11 द्वारा वर्जित है, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में स्वीकार नहीं किया जा सकता है ।

25. जहां तक सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 2 के नियम 2 का संबंध है, इसके उपबंध निम्नलिखित हैं :–

"2. **वाद के अन्तर्गत संपूर्ण दावा होगा** – (1) हर वाद के अन्तर्गत वह पूरा दावा होगा जिसे उस वाद हेतुक के विषय में करने का वादी हकदार है, किन्तु वादी वाद को किसी न्यायालय की अधिकारिता के भीतर लाने की दृष्टि से अपने दावे के किसी भाग का त्याग कर सकेगा ।

(2) **दावे के भाग का त्याग** – जहां वादी अपने दावे के किसी भाग के बारे में वाद लाने का लोप करता है या उसे साशय त्याग देता है वहां उसके पश्चात् वह इस प्रकार लोप किए गए या त्यक्त भाग के बारे में वाद नहीं लाएगा ।

(3) **कई अनुतोषों में से एक के लिए वाद लाने का लोप** – एक ही वाद हेतुक के बारे में एक से अधिक अनुतोष पाने का हकदार व्यक्ति ऐसे सभी अनुतोषों या उनमें से किसी के लिए वाद ला सकेगा, किन्तु यदि वह ऐसे सभी अनुतोषों के लिए वाद लाने का लोप न्यायालय की इजाजत के बिना करता है तो उसके पश्चात् वह इस प्रकार लोप किए गए किसी भी अनुतोष के लिए वाद नहीं लाएगा ।"

26. उपर्युक्त उपबंधों के मूल परिशीलन से यह उपदर्शित होता है कि यदि कोई वादी एक ही वाद हेतुक के संबंध में प्रतिवादी के विरुद्ध कतिपय अनुतोष प्राप्त करने का हकदार है तो वह उस दावे को इस प्रकार अलग नहीं कर सकता है कि दावे के एक भाग का लोप कर दे और दूसरे भाग का दावा करे । यदि वाद हेतुक एक ही है तो वादी को एक वाद में न्यायालय के समक्ष अपने सभी दावों को रखना होता है क्योंकि आदेश 2 का नियम 2 इस आधारभूत सिद्धांत पर आधारित है कि प्रतिवादी को एक ही वाद हेतुक के लिए दोबारा तंग नहीं करना चाहिए ।

27. किन्तु, वर्तमान मामले में, स्वीकृततः वाद फाइल करने के समय पर, वादी 9 फीट चौड़े रास्ते पर वादी द्वारा कारित मात्र बाधा से व्यथित था, जिसका अभिप्राय यह है कि उस सुसंगत समय पर वादी की मात्र शिकायत 9 फीट चौड़े रास्ते के बारे में थी, जिसका वादी को पूर्ववर्ती वाद द्वारा हकदार अभिनिर्धारित किया गया था, जिसको प्रतिवादी द्वारा बाधित किया गया था या है, इस प्रकार, प्रतिवादी के विरुद्ध आज्ञापक व्यादेश के लिए डिक्री की प्रार्थना की गई थी । अतएव, आदेश 2 का नियम 2, वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है ।

28. यदि सम्पूर्ण वादपत्र का परिशीलन किया जाए तो मेरे विवेक में इस बारे में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 2 के नियम 2 के बारे में कोई मानदंड अधिकथित नहीं किया जा सकता है क्योंकि वर्तमान वाद के माध्यम से वादी ने सम्पूर्ण दावा किया है जिसका वह वाद हेतुक के संबंध में हकदार है जो उसे सुसंगत समय पर उद्भूत हुआ था । स्वीकृततः, उस सुसंगत समय पर वादी को वाद हेतुक उद्भूत हुआ था जब प्रतिवादी ने 9 फीट चौड़े रास्ते को बाधित किया और इस प्रकार, यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि वादी वर्तमान वाद के माध्यम से अपने सम्पूर्ण दावे को नहीं कर सकता है, जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 2 के नियम 2 में समाविष्ट है ।

29. श्री अजय शर्मा ने यह भी तर्क दिया कि वादी को वाद फाइल करने के बजाय विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के निर्णय और डिक्री के निष्पादन के लिए वाद फाइल करना चाहिए था । वर्तमान मामले में, निस्संदेह, विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के निर्णय और डिक्री द्वारा प्रतिवादी को वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी अभिनिर्धारित किया गया था, जिसका अभिप्राय यह है कि डिक्री वादी के पक्ष में पारित की गई थी, इस शर्त के अध्यधीन कि वह 9 फीट चौड़ा रास्ता छोड़ेगा । तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के निर्णय और डिक्री के परिशीलन से यह सुझाव मिलता है कि उसे प्रतिवादी के पक्ष में पारित किया गया था, न कि वादी के पक्ष में, प्रतिवादी का वाद उसे कब्जे सहित स्वामी अभिनिर्धारित करते हुए डिक्री किया गया था और मात्र रास्ते का अधिकार ही वादी को दिया गया था । चूंकि, डिक्री प्रतिवादी के पक्ष में पारित किया गया था, इसलिए, वादी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 21 के नियम 32 के अधीन उसके प्रवर्तन कराने का प्रश्न ही नहीं उठता है, इसके बजाय वह नए वाद हेतुक पर नया वाद फाइल करने के लिए सक्षम था, जो उसे प्रतिवादी द्वारा रास्ते में कारित बाधा से उद्भूत हुआ था ।

30. इस संबंध में, इस न्यायालय द्वारा **कमला देवी** बनाम **जसवंत सिंह डोड और अन्य**[1] वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

"10. ...... मेरी यह सुविचारित राय है कि सिविल प्रक्रिया

---

[1] एच. एल. जे. 2000 (एच. पी.) 1099.

संहिता, 1908 के आदेश 21 के नियम 32 के अधीन आवेदन कायम रखे जाने योग्य नहीं था । जब एक बार सक्षम न्यायालय द्वारा डिक्री पारित कर दी जाती है और डिक्री-धारक को खसरा सं. 397/2 और 397/3 में समाविष्ट भूमियों का हकदार अभिनिर्धारित कर दिया जाता है और निर्णीत ऋणियों को 397/1 में समाविष्ट भूमि के कब्जे का हकदार घोषित कर दिया जाता है तो मामला समाप्त हो जाता है । इसके पश्चात् यदि डिक्री-धारक के कब्जे में कोई अतिक्रमण या अवैध हस्तक्षेप किया जाता है तो इससे नया वाद हेतुक उद्भूत होता है जिसके लिए व्यथित पक्षकार द्वारा समुचित कार्रवाई की जा सकती है और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 21 के नियम 32 के अधीन कोई कार्यवाही की जानी सक्षम नहीं होगी [देखें – उमा शंकर **बनाम** सरबजीत (1996) 2 एस. सी. सी. 371 और अजीत चोपड़ा **बनाम** साढू राम (2000) 1 एस. सी. सी. 114] ।"

31. इसके अतिरिक्त, वर्तमान मामले में, यह आधार साबित हो गया है कि तारीख 8 दिसम्बर, 1986 का निर्णय पारित होने के पश्चात् रास्ते से सभी नांद और खूंटे हटा लिए गए थे और वर्ष 1996 तक वादी और अन्य व्यक्ति बिना किसी बाधा के उस रास्ते का प्रयोग करते थे और इस प्रकार, 10 वर्षों तक वादी को तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के निर्णय का प्रवर्तन कराने के लिए कोई विधिक कार्यवाहियां फाइल करने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी । वर्ष 1996 में जब बाधा कारित की गई, जिसे अभिलेख पर सम्यक् रूप से साबित कर दिया गया है, तब वादी नया वाद फाइल करने का हकदार हो गया जिसे उसने वर्तमान मामले में किया है । चूंकि, वादी द्वारा फाइल वाद प्रांङ्-न्याय द्वारा वर्जित नहीं है, जैसा कि उपर्युक्त अभिनिर्धारित किया गया है इसलिए, वादी को नया वाद फाइल करने से कोई विनिर्दिष्ट वर्जन नहीं है । यदि चर्चा की सुविधा के लिए यह उपधारणा कर ली जाती है कि वादी से तारीख 8 दिसम्बर, 1986 के निर्णय और डिक्री का प्रवर्तन कराने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 21 के नियम 32 के अधीन निष्पादन आवेदन फाइल करना अपेक्षित था तो भी स्वीकृततः उसके पास वर्ष 1996 तक अर्थात् लगभग 10 वर्षों तक ऐसा आवेदन फाइल करने के लिए कोई अवसर/वाद हेतुक उद्भूत नहीं हुआ था और इसके पश्चात्, प्रतिवादी ने वादी के उस दावे को समाप्त करने के लिए परिसीमा अवधि का आक्षेप उद्भूत किया जिसका वह वस्तुतः मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पाने का हकदार था ।

32. यद्यपि, दोनों निचले न्यायालयों ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् वर्तमान मामले में समवर्ती निष्कर्ष निकाले हैं और सम्पूर्ण मुद्दे की पुनः परीक्षा करने के लिए इस न्यायालय के लिए कम गुंजाइश छोड़ी है, जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा कई बार अभिनिर्धारित किया गया है, तथापि, एकांकी रूप से यह ऋजु और न्यायोचित निष्कर्ष निकाला जाता है कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और डिक्रियां अवैध नहीं हैं और उलटे जाने योग्य नहीं हैं तथा वे अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के सही मूल्यांकन पर आधारित हैं, इस न्यायालय ने अभिलेख पर के प्रत्यक्ष या दस्तावेजी साक्ष्यों की पुनः परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है ।

33. परिणामतः, पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, मुझे यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय विधि में सही हैं और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के समुचित मूल्यांकन पर आधारित हैं । अतएव, वे कायम रखे जाने योग्य हैं ।

34. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस न्यायालय ने दोनों पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य का विश्लेषण करते समय, अभिलेख पर लाए गए साक्षियों द्वारा किए गए सभी अभिकथनों को निर्दिष्ट करते हुए, मामले के प्रत्येक पहलू की परीक्षा की है, अभिलेख पर के साक्ष्यों की सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए मेरे विवेक में इस बारे में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित निर्णयों और डिक्रियों में कोई कमी और अवैधता नहीं है, इस प्रकार, इसे कायम रखा जाता है और अपील लम्बित आवेदनों के साथ, यदि कोई हो, खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

क.

श्री धनी राम पुत्र श्री चौधरी राम

बनाम

श्री कृष्णा प्रसाद पुत्र श्री सत्य नारायण

तारीख 16 अगस्त, 2016

न्यायमूर्ति पी. एस. राणा

हिमाचल प्रदेश शहरी किराया नियंत्रण अधिनियम, 1987 – धारा 14 और 24(5) – पुनरीक्षण आवेदन – मकान-मालिक की विवादित परिसरों का पुनर्निर्माण और पुनरोद्धार कराने की सद्भाविक आवश्यकता – किराएदार द्वारा विवादित परिसर खाली नहीं करना – बेदखली – किराएदार का पुनः प्रवेश करने का अधिकार – यदि यह साबित कर दिया जाता है कि विवादित परिसर के पुनर्निर्माण और पुनरोद्धार करने के लिए मकान-मालिक को विवादित परिसरों की सद्भाविक आवश्यकता है तो किराएदार को विवादित परिसर खाली करना पड़ेगा किन्तु विवादित परिसरों की पुनर्निर्माण और पुनरोद्धार करने के पश्चात् किराएदार को उसमें पुनः प्रवेश करने का अधिकार होगा ।

वर्तमान मामले में, श्री कृष्णा प्रसाद, मकान-मालिक ने हिमाचल प्रदेश शहरी किराया नियंत्रण अधिनियम, 1987 की धारा 14 के अधीन किराएदार की बेदखली के लिए आवेदन फाइल किया, इस आधार पर कि परिसरों का पुनर्निर्माण कराने के लिए मकान-मालिक को सद्भाविक आवश्यकता है । यह अभिवाक् किया है कि पुनर्निर्माण, किराएदार की बेदखली के बिना नहीं किया जा सकता है । यह अभिवाक् किया गया है कि मकान-मालिक सम्पूर्ण परिसरों का आधुनिक निर्माण और आधुनिक सुविधाओं, सुख-सुविधाओं और प्रौद्योगिकी के साथ पुनर्निर्माण करने के लिए आशयित है । यह अभिवाक् किया है कि परिसर मानवीय निवास के लिए असुरक्षित और अनुपयुक्त भी हो गया है । यह अभिवाक् किया है कि प्रश्नगत भवन 100 वर्ष से अधिक पुराना हो गया है और इसकी जीवन अवधि अधिक हो गई है । यह भी अभिवाक् किया है कि परिसरों की दीवारों में दरारें आ गई हैं । यह भी अभिवाक् किया कि परिसरों के फर्श और छत पूर्णतया क्षतिग्रस्त हो गए हैं । यह भी अभिवाक् किया कि किराएदार ने तारीख 1 जनवरी, 2000 से किराए के बकायों का संदाय नहीं किया है । यह अभिवाक् किया है कि

परिसर अनिवासी प्रकृति के हैं और उसका किराया 60/- रुपए प्रतिमाह है । यह अभिवाक् किया है कि विद्युत और जल सुविधाओं की आपूर्ति किराएदार को की जाती है । यह अभिवाक् किया कि परिसरों को प्रत्यर्थी को डीलक्स बेकरी के नाम से बेकरी की दुकान चलाने के लिए दिया गया था । यह भी अभिवाक् किया कि किराएदार ने अवैध तरीके से बेकरी के प्रयोग को परिवर्तित करके कुछ कबाड़ी की दुकान (पुराने और टुटे-फुटे फर्नीचरों का डीलर) खोल ली है । इसलिए, बेदखली आवेदन को स्वीकार करने की प्रार्थना की गई है । इसके विपरीत, किराएदार की ओर से फाइल उत्तर में यह अभिवाक् किया गया है कि आवेदन, आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन के कारण दूषित है । यह अभिवाक् किया है कि आरम्भतः परिसरों को वर्ष 1969 में 60/- रुपए प्रतिमाह पर चन्दर कान्ता को किराए पर दिया गया था । यह अभिवाक् किया है कि वर्ष 1977-78 की अवधि के दौरान परिसरों को कृष्णा प्रसाद और शारदा प्रसाद द्वारा क्रय कर लिया गया था और उन्हें किराया संदत्त किया जाता था । यह अभिवाक् किया है कि कृष्णा प्रसाद और शारदा प्रसाद के स्वामित्व आधे-आधे हिस्सों के थे । यह अभिवाक् किया है कि आधा हिस्सा चन्दर कान्ता और कन्वर विजय सिंह द्वारा धारित था । यह अभिवाक् किया है कि उपयोग बदलने से संबंधित अभिकथन गलत है । यह अभिवाक् किया है कि परिसरों का पुनर्निर्माण वर्ष 1969 में हुआ था । यह अभिवाक् किया है कि परिसरों को वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए किराए पर दिया गया था और किराएदार परिसरों में वाणिज्यिक क्रियाकलाप कर रहा है । यह अभिवाक् किया है कि भवन की दशा सही है और इसके पुनर्निर्माण कराने की कोई आवश्यकता नहीं है । इसलिए, ईप्सित बेदखली के आवेदन को खारिज करने के लिए प्रार्थना की गई है । मकान-मालिक ने भी प्रत्युत्तर फाइल किया और उन्हीं अभिकथनों का पुनः प्रत्याख्यान किया जिन्हें बेदखली आवेदन में अभिवाचित किया गया था । विद्वान् किराया नियंत्रक ने बेदखली आवेदन को भागतः मंजूर कर लिया और परिसरों के पुनर्निर्माण और पुनः भवन बनाने के आधार पर किराएदार की बेदखली का आदेश दिया क्योंकि परिसरों को खाली कराए बिना उनका पुनर्निर्माण और पुनः भवन बनाने का कार्य नहीं किया जा सकता था । विद्वान् किराया नियंत्रक ने तारीख 1 जनवरी, 2000 से तारीख 30 अप्रैल, 2010 तक 60/- रुपए प्रतिमाह की दर के साथ कानूनी ब्याज 9 प्रतिशत वार्षिक कुल 10,900/- रुपए बकाए किराए के आधार पर भी किराएदार के विरुद्ध बेदखली का आदेश पारित किया ।

विद्वान् किराया नियंत्रक ने यह भी निर्देश दिया कि यदि किराएदार 30 दिनों के भीतर बकाया किराया जमा कर देता है तो किराएदार की बकाए किराए के आधार पर बेदखली नहीं होगी । विद्वान् किराया नियंत्रक ने यह भी निर्देश दिया कि पुनः भवन बनाने और पुनर्निर्माण के आधार पर बेदखली का आदेश तब तक निष्पादित नहीं होगा जब तक कि मकान-मालिक द्वारा सक्षम प्राधिकारी से सम्यक् रूप से मंजूर/अनुमोदित भवन योजना प्रस्तुत नहीं कर देता है । विद्वान् किराया नियंत्रक के आदेश से व्यथित होकर धनी राम, किराएदार ने हिमाचल प्रदेश शहरी किराया नियंत्रण अधिनियम, 1987 की धारा 24(1)(ख) के अधीन अपील प्राधिकारी (II), के समक्ष 2010 की अपील सं. 32-एस./13(बी) शीर्षक धनी राम बनाम कृष्णा प्रसाद फाइल की । मकान-मालिक ने भी 2011 की प्रति-आक्षेप सं. 2-एस./11 शीर्षक कृष्णा प्रसाद बनाम धनी राम राणा फाइल की । विद्वान् प्रथम अपील प्राधिकारी ने किराएदार की अपील भागतः मंजूर कर ली और विद्वान् किराया नियंत्रक के आदेश को उपांतरित कर दिया । विद्वान् प्रथम अपील प्राधिकारी ने मकान-मालिक द्वारा फाइल प्रति-आक्षेप को खारिज कर दिया । विद्वान् प्रथम अपील प्राधिकारी के आदेश से व्यथित होकर किराएदार ने वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया । न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण आवेदन नामंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रत्यर्थी साक्षी 2 जे. के. महेन्द्रू ने यह कथन किया है कि वह वर्ष 2006 में आई. पी. एच. विभाग से कार्यपालक अभियन्ता के रूप में सेवानिवृत्त हुआ था और उसने परिसरों का निरीक्षण किया था और उसने एक रिपोर्ट प्रदर्श आर. डब्ल्यू. 2/ए प्रस्तुत की थी । उसने यह कथन किया है कि स्थल नक्शा प्रदर्श आर. डब्ल्यू. 2/बी है । उसने यह कथन किया है कि उसने 38 वर्षों तक आई. पी. एच. विभाग में सेवा की थी । उसने यह कथन किया है कि फोटोग्राफ्स प्रदर्श आर-1 से प्रदर्श आर-5 हैं और नेगेटिव प्रदर्श आर-6 से प्रदर्श आर-10 हैं । उसने यह स्वीकार किया कि उसने घटनास्थल के फोटोग्राफ्स लिए थे । प्रत्यर्थी साक्षी 2 ने इस सुझाव से इनकार किया है कि दीवारों में दरारें पड़ गई थी । प्रत्यर्थी साक्षी 2 ने इस सुझाव से इनकार किया है कि भवन 100 वर्ष पुराना है । प्रत्यर्थी साक्षी 2 ने इस सुझाव से इनकार किया है कि परिसरों की दशा जीर्णावस्था में है । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि फोटोग्राफ्स प्रदर्श आर-1 से प्रदर्श आर-5, विवादित परिसरों से संबंधित नहीं हैं । प्रत्यर्थी साक्षी 3 बलवंत राम ने यह कथन किया है कि उसकी दुकान

विवादित परिसरों से 100 मीटर की दूरी पर स्थित है । उसने यह कथन किया है कि किराएदार हार्डवेयर की दुकान चलाता है और यह भी कथन किया कि पूर्ववर्ती किराएदार परिसरों में बेकरी चलाता था । उसने यह कथन किया है कि परिसर समुचित दशा में है । उसने यह कथन किया है कि परिसरों की दीवारें, फर्श और खिड़कियां समुचित दशा में हैं । उसने यह कथन किया है कि परिसरों में कोई पुनर्निर्माण करने की आवश्यकता नहीं है । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि परिसरों की दीवारों और फर्श पर दरारें पड़ गई हैं । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि उसने किराएदार की प्रेरणा पर परिसरों की तथ्यात्मक दशा के विरुद्ध अभिसाक्ष्य दिया है । पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान् अधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि यद्यपि अपील प्राधिकारी द्वारा किराएदार की पुनः प्रवेश के अधिकार को मंजूर किया गया है किन्तु किराएदारी के निबंधनों और शर्तों, जिनमें आवास का आकार सम्मिलित है, को अवधारित नहीं किया गया है और इस आधार पर यदि पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया जाता है तो यह इसमें इसके पश्चात् उल्लिखित कारणों से बलरहित होने के कारण नामंजूर होने योग्य है । यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि आदेश 14 के नियम 3(ग) के अधीन किराएदार को पुनः प्रवेश का अधिकार है और पुनः प्रवेश के अधिकार को विद्वान् किराया नियंत्रक द्वारा विनिश्चित किया जाएगा जब किराएदार द्वारा नवीनतम विधि के अनुसरण में पुनः प्रवेश के लिए आवेदन फाइल किया जाएगा । पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान् अधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि जे. के. महेन्द्रू के परिसाक्ष्य और तकनीकी रिपोर्ट प्रदर्श आर. डब्ल्यू. 2/ए के अनुसार, परिसर निवास करने के लिए सुरक्षित, उपयुक्त और ठीक है तथा वर्तमान परिसर को ढहाने की कोई आवश्यकता नहीं है और यदि इस आधार पर पुनरीक्षण आवेदन स्वीकार किया जाता है तो, यह इसमें इसके पश्चात्, उल्लिखित कारणों से बलरहित होने के कारण नामंजूर किए जाने योग्य है । हिम इंजीनियर्स एण्ड आर्किटेक्ट एसोशिएशन ने अभिलेख पर रिपोर्ट प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 6/ए फाइल की है और रिपोर्ट में यह वर्णित है कि परिसरों की आयु 50-60 वर्ष के बीच है और परिसर अधिक समय तक जीवन जीने के लिए सही है । रिपोर्ट प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 6/ए में यह वर्णित है कि भवन, शिमला के बेहतर स्थान पर स्थित है और प्रस्थापित निर्माण द्वारा नया ढांचा बनाने के लिए परिसरों के स्वामी के आर्थिक भार में अत्यधिक वृद्धि होगी । रिपोर्ट प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 6/ए में यह वर्णित है कि स्थानीय परिसरों में विवाद्यक मात्र पुराने होने का है और

भवन के जीर्ण-शीर्ण अवस्था में होने का है तथा अन्य सभी भवनों का नए तरीकों से पुनर्निर्माण हुआ है । (पैरा 11.8, 11.9, 15 और 16)

यह सुस्थिर विधि है कि उच्च न्यायालय को पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग करते समय, मामले में अन्तर्वलित दुरुह और मौलिक विवाद्यकों पर विद्वान् किराया नियंत्रक और विद्वान् प्रथम प्राधिकारी द्वारा निकाले गए तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि इसमें अवैधता और अनौचित्यता कारित नहीं हुई हो । यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि विद्वान् प्रथम अपील प्राधिकारी के आदेश में कोई अवैधता या अनौचित्यता नहीं है । विवाद्यक सं. 1 का उत्तर नकारात्मक में दिया जाता है । मुद्दा सं. 1 पर निकाले गए निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, सिविल पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया जाता है । इसके अतिरिक्त, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 13 जनवरी, 2014 को विनिश्चित मैसर्स आर. एस. पूरनमल ट्रस्ट बनाम मैसर्स दयाल सन्स क्लाथ मर्चेन्टस् वाले मामले में, अधिकथित निर्णयज विधि को ध्यान में रखते हुए, किराएदार एक माह की अवधि के भीतर परिसरों को खाली करके कब्जा मकान-मालिक को सौंपेगा । इसके पश्चात्, मकान-मालिक विधि के अनुसरण में, 6 माह की अवधि के भीतर परिसरों का नया निर्माण पूरा करेगा । इसके पश्चात्, किराएदार को नवीनतम विधि के अनुसरण में नए निर्मित परिसरों में पुनः प्रवेश करने का अधिकार होगा । (पैरा 18 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2013]	2013 की सिविल अपील सं. 4127 : **हरि दास शर्मा** बनाम **विकास सूद** ;	14
[2011]	एच. एल. जे. 2011 एच. पी. 64 : **तारा दत्त शर्मा** बनाम **संजीव पंडित** ;	14
[2008]	(2008) 8 एस. सी. सी. 497 : **दीप चन्द्र जुनेजा** बनाम **लाजवंती कथूरिया (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण** ;	16
[2003]	(2003) 1 एस. सी. सी. 191 : **जगत पाल धवन** बनाम **काहन सिंह (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य** ;	16

[2001]	2001 एच. एल. जे. पृष्ठ 161 : **ओम प्रकाश** बनाम **गंगा राम** ;	14
[1988]	(1988) 1 एस. सी. सी. 274 : **प्रेम चन्द** बनाम **शांता प्रभाकर** ;	16
[1988]	ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 852 : **हीरा लाल** बनाम **प्रभु चौधरी** ;	18
[1987]	(1987) 3 एस. सी. सी. 538 : **गिरधरभाई** बनाम **सैय्यद मोहम्मद मीरसाहेब कादरी और अन्य** ;	18
[1987]	(1987) 2 एस. सी. सी. 219 : **सुशीला देवी और अन्य** बनाम **अविनाश चन्द्र जैन और अन्य** ।	18

पुनरीक्षण (सिविल) अधिकारिता : 2014 की सिविल पुनरीक्षण सं. 92.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन ।

पुनरीक्षणकर्ता की ओर से सर्वश्री जी. डी. वर्मा, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ बी. सी. वर्मा, अधिवक्ता

अपुनरीक्षणकर्ता की ओर से श्री अशोक के. सूद, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति पी. एस. राणा – वर्तमान सिविल पुनरीक्षण आवेदन हिमाचल प्रदेश शहरी किराया नियंत्रण अधिनियम, 1987 की धारा 24(5) के अधीन विद्वान् अपील प्राधिकारी (II), शिमला द्वारा 2010 की किराया अपील सं. 32-एस./13 (बी) शीर्षक धनी राम राणा बनाम कृष्णा प्रसाद में पारित आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा विद्वान् अपील प्राधिकारी ने विद्वान् किराया नियंत्रक के आदेश को इस सीमा तक उपांतरित कर दिया था कि किराएदार को किराएदारी के पारस्परिक नए निबंधनों के आधार पर हस्तांतरित परिसरों में पुनः प्रवेश करने का अधिकार होगा ।

2. श्री कृष्णा प्रसाद, मकान-मालिक ने हिमाचल प्रदेश शहरी किराया

नियंत्रण अधिनियम, 1987 की धारा 14 के अधीन किराएदार की बेदखली के लिए आवेदन फाइल किया, इस आधार पर कि परिसरों का पुनर्निर्माण कराने के लिए मकान-मालिक को सद्भाविक आवश्यकता है । यह अभिवाक् किया है कि पुनर्निर्माण, किराएदार की बेदखली के बिना नहीं किया जा सकता है । यह अभिवाक् किया गया है कि मकान-मालिक सम्पूर्ण परिसरों का आधुनिक निर्माण और आधुनिक सुविधाओं, सुख-सुविधाओं और प्रौद्योगिकी के साथ पुनर्निर्माण करने के लिए आशयित है । यह अभिवाक् किया है कि परिसर मानवीय निवास के लिए असुरक्षित और अनुपयुक्त भी हो गया है । यह अभिवाक् किया है कि प्रश्नगत भवन 100 वर्ष से अधिक पुराना हो गया है और इसकी जीवन अवधि अधिक हो गई है । यह भी अभिवाक् किया है कि परिसरों की दीवारों में दरारें आ गई हैं । यह भी अभिवाक् किया कि परिसरों के फर्श और छत पूर्णतया क्षतिग्रस्त हो गए हैं । यह भी अभिवाक् किया कि किराएदार ने तारीख 1 जनवरी, 2000 से किराए के बकायों का संदाय नहीं किया है । यह अभिवाक् किया है कि परिसर अनिवासी प्रकृति के हैं और उसका किराया 60/- रुपए प्रतिमाह है । यह अभिवाक् किया है कि विद्युत और जल सुविधाओं की आपूर्ति किराएदार को की जाती है । यह अभिवाक् किया कि परिसरों को प्रत्यर्थी को डीलक्स बेकरी के नाम से बेकरी की दुकान चलाने के लिए दिया गया था । यह भी अभिवाक् किया कि किराएदार ने अवैध तरीके से बेकरी के प्रयोग को परिवर्तित करके कुछ कबाड़ी की दुकान (पुराने और टुटे-फुटे फर्नीचरों का डीलर) खोल ली है । इसलिए, बेदखली आवेदन को स्वीकार करने की प्रार्थना की गई है ।

3. इसके विपरीत, किराएदार की ओर से फाइल उत्तर में यह अभिवाक् किया गया है कि आवेदन, आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन के कारण दूषित है । यह अभिवाक् किया है कि आरम्भतः परिसरों को वर्ष 1969 में 60/- रुपए प्रतिमाह पर चन्दर कान्ता को किराए पर दिया गया था । यह अभिवाक् किया है कि वर्ष 1977-78 की अवधि के दौरान परिसरों को कृष्णा प्रसाद और शारदा प्रसाद द्वारा क्रय कर लिया गया था और उन्हें किराया संदत्त किया जाता था । यह अभिवाक् किया है कि कृष्णा प्रसाद और शारदा प्रसाद के स्वामित्व आधे-आधे हिस्सों के थे । यह अभिवाक् किया है कि आधा हिस्सा चन्दर कान्ता और कन्वर विजय सिंह द्वारा धारित था । यह अभिवाक् किया है कि उपयोग बदलने से संबंधित अभिकथन गलत है । यह अभिवाक् किया है कि परिसरों का पुनर्निर्माण वर्ष

1969 में हुआ था । यह अभिवाक् किया है कि परिसरों को वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए किराए पर दिया गया था और किराएदार परिसरों में वाणिज्यिक क्रियाकलाप कर रहा है । यह अभिवाक् किया है कि भवन की दशा सही है और इसके पुनर्निर्माण कराने की कोई आवश्यकता नहीं है । इसलिए, ईप्सित बेदखली के आवेदन को खारिज करने के लिए प्रार्थना की गई है ।

4. मकान-मालिक ने भी प्रत्युत्तर फाइल किया और उन्हीं अभिकथनों का पुनः प्रत्याख्यान किया जिन्हें बेदखली आवेदन में अभिवाचित किया गया था ।

5. पक्षकारों के अभिवचनों के अनुसार, विद्वान् किराया नियंत्रक द्वारा तारीख 1 अक्तूबर, 2008 को निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए थे :–

(1) क्या हस्तांतरित परिसरों की पुनर्निर्माण कराने के प्रयोजन के लिए आवेदक की सद्भाविक आवश्यकता है, जैसा कि दावाकृत है ?

(2) क्या प्रश्नगत परिसर, मानवीय निवास के लिए अनुपयुक्त और असुरक्षित हो गए हैं, जैसा कि दावाकृत हैं ?

(3) क्या प्रत्यर्थी के पास किराया बकाया है, जैसा कि दावाकृत है ?

(4) क्या आवेदन, कायम रखे जाने योग्य नहीं है, जैसा कि अभिकथित है ?

(5) क्या आवेदन, आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन के कारण दूषित है, जैसा कि अभिकथित है ?

(6) क्या आवेदन में तात्विक विशिष्टियों का अभाव है, जैसा कि अभिकथित है ?

(7) अनुतोष ।

6. विद्वान् विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 1 और 3 को सकारात्मक में विनिश्चित किया और विवाद्यक सं. 2, 4, 5 और 6 को नकारात्मक में विनिश्चित किया । विद्वान् किराया नियंत्रक ने बेदखली आवेदन को भागतः मंजूर कर लिया और परिसरों के पुनर्निर्माण और पुनः

भवन बनाने के आधार पर किराएदार की बेदखली का आदेश दिया क्योंकि परिसरों को खाली कराए बिना उनका पुनर्निर्माण और पुनः भवन बनाने का कार्य नहीं किया जा सकता था । विद्वान् किराया नियंत्रक ने तारीख 1 जनवरी, 2000 से तारीख 30 अप्रैल, 2010 तक 60/- रुपए प्रतिमाह की दर के साथ कानूनी ब्याज 9 प्रतिशत वार्षिक कुल 10,900/- रुपए बकाए किराए के आधार पर भी किराएदार के विरुद्ध बेदखली का आदेश पारित किया । विद्वान् किराया नियंत्रक ने यह भी निर्देश दिया कि यदि किराएदार 30 दिनों के भीतर बकाया किराया जमा कर देता है तो किराएदार की बकाए किराए के आधार पर बेदखली नहीं होगी । विद्वान् किराया नियंत्रक ने यह भी निर्देश दिया कि पुनः भवन बनाने और पुनर्निर्माण के आधार पर बेदखली का आदेश तब तक निष्पादित नहीं होगा जब तक कि मकान-मालिक द्वारा सक्षम प्राधिकारी से सम्यक् रूप से मंजूर/अनुमोदित भवन योजना प्रस्तुत नहीं कर देता है ।

7. विद्वान् किराया नियंत्रक के आदेश से व्यथित होकर धनी राम, किराएदार ने हिमाचल प्रदेश शहरी किराया नियंत्रण अधिनियम, 1987 की धारा 24(1)(ख) के अधीन अपील प्राधिकारी (II), के समक्ष 2010 की अपील सं. 32-एस./13(बी) शीर्षक धनी राम बनाम कृष्णा प्रसाद फाइल की । मकान-मालिक ने भी 2011 की प्रति-आक्षेप सं. 2-एस./11 शीर्षक कृष्णा प्रसाद बनाम धनी राम राणा फाइल की । विद्वान् प्रथम अपील प्राधिकारी ने किराएदार की अपील भागतः मंजूर कर ली और विद्वान् किराया नियंत्रक के आदेश को उपांतरित कर दिया । विद्वान् प्रथम अपील प्राधिकारी ने मकान-मालिक द्वारा फाइल प्रति-आक्षेप को खारिज कर दिया ।

8. विद्वान् प्रथम अपील प्राधिकारी के आदेश से व्यथित होकर किराएदार ने वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया ।

9. न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान् अधिवक्ता और अपुनरीक्षणकर्ता के विद्वान् अधिवक्ता को सुना और न्यायालय ने ध्यानपूर्वक सम्पूर्ण अभिलेखों का परिशीलन भी किया ।

10. सिविल पुनरीक्षण आवेदन में अवधारण के लिए निम्नलिखित मुद्दे उद्भूत हुए हैं :–

(1) क्या सिविल पुनरीक्षण स्वीकार किए जाने योग्य है, जैसा कि पुनरीक्षण आवेदन के आधारों के ज्ञापन में उल्लिखित है ?

(2) अनुतोष ।

11. **मुद्दा सं. 1 पर सकारण निष्कर्ष**

11.1. अपीलार्थी साक्षी 1 अशोक कुमार, सी. टी. ओ., यूको बैंक, कसुम्पती ने अभिलेख पर प्रस्तुत प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 1/ए और प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 1/बी, प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 1/सी, प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 1/डी की प्रतिलिपियों को साबित किया है । उसने यह कथन किया है कि सावधि जमा रकम को उपभोक्ता द्वारा किसी भी समय वापस लिया जा सकता था ।

11.2. अपीलार्थी साक्षी 2 लेख राम, रजिस्ट्री लिपिक कार्यालय, उप-रजिस्ट्रार (ग्रामीण), शिमला ने विक्रय विलेख, प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 2/ए को साबित किया है । उसने यह कथन किया है कि क्रेता दो व्यक्ति अर्थात् कृष्णा प्रसाद और शारदा प्रसाद हैं ।

11.3. अपीलार्थी साक्षी 3 पुष्प राज, कनिष्ठ अभियन्ता, नगर निगम शिमला ने यह कथन किया है कि कृष्णा प्रसाद ने तारीख 12 जनवरी, 2009 को पुरानी भूमि पर पुनः निर्माण करने के लिए प्रस्थापित निर्माण स्थल नक्शा फाइल किया है जो प्रक्रियाधीन है । उसने यह कथन किया है कि प्रस्थापित निर्माण स्थल नक्शा, खसरा सं. 1001, 1011 और 1012 से संबंधित प्रस्तुत किया गया है जो उपमोहल, छोटा शिमला में स्थित है । उसने यह कथन किया है कि वह भवन के तथ्यात्मक स्थिति के बारे में कुछ नहीं कह सकता है । उसने यह कथन किया कि प्रस्थापित निर्माण स्थल नक्शा प्रक्रियाधीन है ।

11.4. अपीलार्थी साक्षी 4 कमलेश चन्देल, रिकार्ड कीपर, कार्यालय जिला और सेशन न्यायाधीश, शिमला ने यह कथन किया है कि वह समन अभिलेख लाया है और यह भी कथन किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 23 के नियम 3 के अधीन डिक्री प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 4/ए पारित किया गया था ।

11.5. अपीलार्थी साक्षी 5 कृष्णा प्रसाद, ने यह कथन किया है कि वह परिसरों का स्वामी है और धनी राम किराएदार है । उसने यह कथन किया है कि परिसरों का किराया 60/- रुपए प्रतिमाह है । उसने यह कथन किया है कि जमाबंदी की प्रतिलिपि प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 5/ए है । उसने यह कथन किया है कि वह विक्रय विलेख का मूल अभिलेख लाया है जो प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 2/ए है । उसने यह कथन किया है कि परिसरों में विद्युत और

जल आपूर्ति की सुविधाएं हैं । उसने यह कथन किया है कि किराएदार परिसरों में कबाड़ी (पुराने और टूटे-फूटे फर्नीचरों का डीलर) का कार्य करता है । उसने यह कथन किया है कि पूर्ववर्ती किराएदार परिसरों में बेकरी चलाता था । उसने यह कथन किया है कि परिसर 100 वर्ष पुराने हैं । उसने यह कथन किया है कि उसका आशय परिसरों की आर्थिक उपयोगिता बढ़ाने के लिए नई प्रौद्योगिकी के साथ परिसरों का पुनर्निर्माण करना है । उसने यह कथन किया है कि पुनर्निर्माण, किराएदार की बेदखली के बिना संभव नहीं है । उसने यह कथन किया है कि दीवारों में दरारें पड़ गई हैं, परिसरों की फर्श और परिसरों की ऊपरी छत भी क्षतिग्रस्त हो गई हैं । उसने यह कथन किया है कि उसने नगर निगम के समक्ष प्रस्थापित निर्माण स्थल नक्शा फाइल किया है, जो प्रक्रियाधीन है । उसने यह कथन किया है कि परिसरों का पुनर्निर्माण करने के लिए उसके पास आय के पर्याप्त स्रोत हैं । उसने यह कथन किया है कि उसने वर्ष 1978 में शारदा प्रसाद से परिसरों को क्रय किया है । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि परिसर अच्छी दशा में हैं । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि उसने वर्ष 2000 में किराया स्वीकार करने से इनकार कर दिया था । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि उसने किराएदार को तंग करने के लिए किराएदार से किराया प्राप्त नहीं किया था ।

11.6. अपीलार्थी साक्षी 6, बी. सी. शर्मा ने यह कथन किया है कि उसने शासकीय कालेज, सुन्दर नगर से सिविल इंजीनियरिंग में डिप्लोमा प्राप्त किया है । उसने यह कथन किया है कि वह एच. पी. एस. ई. बी. विभाग में कनिष्ठ अभियन्ता के रूप में तैनात है । उसने यह कथन किया है कि उसने भवनों की दशा के बारे में न्यायालय में 200-250 रिपोर्टें प्रस्तुत की हैं । उसने यह कथन किया है कि वह व्यक्तिगत तौर पर तारीख 10 मार्च, 2008 को परिसरों में गया था और उसके पश्चात् रिपोर्ट प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 6/ए प्रस्तुत की थी । उसने यह कथन किया है कि स्थल नक्शा प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 6/बी है । उसने यह कथन किया है कि फोटोग्राफ्स, प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 6/सी-1 से प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 6/सी-10 हैं और फोटोग्राफ्स के नेगेटिव प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 6/सी-11 से प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 6/सी-20 हैं । उसने यह कथन किया है कि परिसर अत्यधिक जीर्णावस्था में हैं । उसने यह कथन किया है कि किराएदार की बेदखली, परिसरों के पुनर्निर्माण के लिए आवश्यक है । उसने यह कथन किया है कि रिपोर्ट वस्तुतः सही हैं । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि फोटोग्राफ्स परिसरों से संबंधित नहीं हैं ।

उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि वह घटनास्थल पर गए बिना रिपोर्ट तैयार किया है । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि परिसर की दीवारों में कोई दरारें नहीं हैं । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि भवन की छत समुचित दशा में हैं । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि उसने मकान-मालिक की प्रेरणा पर रिपोर्ट प्रस्तुत की है ।

11.7. प्रत्यर्थी साक्षी 1 धनी राम, किराएदार ने मुख्य परीक्षा में शपथपत्र प्रदर्श आर. डब्ल्यू. 1/ए फाइल किया । शपथपत्र में यह वर्णित है कि किराएदार को वर्ष 1969 में 60/- रुपए प्रतिमाह पर चन्दर कान्ता द्वारा किराए पर रखा गया था । शपथपत्र में यह वर्णित है कि पश्चात्वर्ती वर्ष 1977-78 में परिसरों को कृष्णा प्रसाद और शारदा प्रसाद द्वारा क्रय कर लिया गया था । शपथपत्र में यह वर्णित है कि कृष्णा प्रसाद और शारदा प्रसाद द्वारा परिसरों का क्रय करने के पश्चात् वे किराएदार से 60/- रुपए प्रतिमाह की दर से किराया एकत्र करना प्रारम्भ कर दिया था । उसने यह कथन किया कि परिसरों में एक कमरा समाविष्ट है । शपथपत्र में यह वर्णित है कि आधा हिस्सा कृष्णा प्रसाद और शारदा प्रसाद द्वारा धारित था तथा आधा हिस्सा चन्दर कान्ता और विजय सिंह द्वारा धारित था । शपथपत्र में यह वर्णित है कि प्रश्नगत आवास, अनिवासी प्रकृति का है और किराएदार किसी भी समय पर परिसरों का उपयोग परिवर्तित नहीं कर सकता था । शपथपत्र में यह वर्णित है कि परिसरों का निर्माण वर्ष 1969 में हुआ था और भवन की दशा ठीक है । शपथपत्र में यह वर्णित है कि परिसर साधारण जीवन जीने लायक नहीं है और लकड़ी के कार्य भी ठीक हैं और अच्छी दशा में हैं । शपथपत्र में यह वर्णित है कि मकान-मालिक ने परिसरों का पुनर्निर्माण करने के लिए नगर निगम से कोई अनुज्ञा प्राप्त नहीं की है । शपथपत्र में यह वर्णित है कि मकान-मालिक के पास भवन का पुनर्निर्माण कराने के लिए पर्याप्त निधि नहीं है । शपथपत्र में यह वर्णित है कि किराएदार ने दिसम्बर, 2000 तक का किराया संदत्त कर दिया है और इसके पश्चात्, मकान-मालिक ने किराएदार से कोई किराया नहीं लिया । शपथपत्र में यह वर्णित है कि किराएदार ने विद्वान् किराया नियंत्रक, शिमला के समक्ष किराया जमा कर दिया है । प्रत्यर्थी साक्षी 1 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि वह यह नहीं जानता है कि तारीख 5 मई, 2006 को शारदा प्रसाद और कृष्णा प्रसाद के बीच कोई विभाजन कार्यवाहियां हुई थीं । प्रत्यर्थी साक्षी 1 ने यह स्वीकार किया है कि वह वर्ष 1978 के पश्चात् कृष्णा प्रसाद का किराएदार है । प्रत्यर्थी साक्षी 1 ने इस सुझाव से

इनकार किया है कि भवन 100 वर्ष पुराना है । स्वयं यह कथन किया है कि भवन का निर्माण वर्ष 1979 में हुआ था । प्रत्यर्थी साक्षी 1 ने इस सुझाव से इनकार किया है कि भवन की दीवारों और फर्श पर दरारें पड़ गई हैं । प्रत्यर्थी साक्षी 1 ने इस सुझाव से इनकार किया है कि उसने 1 जनवरी, 2001 के पश्चात् का किराया संदाय नहीं किया है ।

11.8. प्रत्यर्थी साक्षी 2 जे. के. महेन्द्रू ने यह कथन किया है कि वह वर्ष 2006 में आई. पी. एच. विभाग से कार्यपालक अभियन्ता के रूप में सेवानिवृत्त हुआ था और उसने परिसरों का निरीक्षण किया था और उसने एक रिपोर्ट प्रदर्श आर. डब्ल्यू. 2/ए प्रस्तुत की थी । उसने यह कथन किया है कि स्थल नक्शा प्रदर्श आर. डब्ल्यू. 2/बी है । उसने यह कथन किया है कि उसने 38 वर्षों तक आई. पी. एच. विभाग में सेवा की थी । उसने यह कथन किया है कि फोटोग्राफ्स प्रदर्श आर-1 से प्रदर्श आर-5 हैं और नेगेटिव प्रदर्श आर-6 से प्रदर्श आर-10 हैं । उसने यह स्वीकार किया कि उसने घटनास्थल के फोटोग्राफ्स लिए थे । प्रत्यर्थी साक्षी 2 ने इस सुझाव से इनकार किया है कि दीवारों में दरारें पड़ गईं थीं । प्रत्यर्थी साक्षी 2 ने इस सुझाव से इनकार किया है कि भवन 100 वर्ष पुराना है । प्रत्यर्थी साक्षी 2 ने इस सुझाव से इनकार किया है कि परिसरों की दशा जीर्णावस्था में है । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि फोटोग्राफ्स प्रदर्श आर-1 से प्रदर्श आर-5, विवादित परिसरों से संबंधित नहीं हैं ।

11.9. प्रत्यर्थी साक्षी 3 बलवंत राम ने यह कथन किया है कि उसकी दुकान विवादित परिसरों से 100 मीटर की दूरी पर स्थित है । उसने यह कथन किया है कि किराएदार हार्डवेयर की दुकान चलाता है और यह भी कथन किया कि पूर्ववर्ती किराएदार परिसरों में बेकरी चलाता था । उसने यह कथन किया है कि परिसर समुचित दशा में है । उसने यह कथन किया है कि परिसरों की दीवारें, फर्श और खिड़कियां समुचित दशा में हैं । उसने यह कथन किया है कि परिसरों में कोई पुनर्निर्माण करने की आवश्यकता नहीं है । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि परिसरों की दीवारों और फर्श पर दरारें पड़ गईं हैं । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि उसने किराएदार की प्रेरणा पर परिसरों की तथ्यात्मक दशा के विरुद्ध अभिसाक्ष्य दिया है ।

12. पक्षकारों द्वारा निम्नलिखित दस्तावेज फाइल किए गए हैं – (1) प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 1/ए, कृष्णा प्रसाद के नाम में सावधि जमा रसीद, जिसमें

कृष्णा प्रसाद ने यूको बैंक में 40,911/- रुपए (चालीस हजार नौ सौ ग्यारह रुपए मात्र) जमा किए थे । (2) प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 1/बी, यूको बैंक द्वारा 24 माह की अवधि के लिए कृष्णा प्रसाद के नाम में जारी 39,624/- रुपए (उनतालीस हजार छह सौ चौबीस रुपए मात्र) रकम की सावधि जमा रसीद है । (3) प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 1/सी, यूको बैंक द्वारा 12 माह की अवधि के लिए कृष्णा प्रसाद के नाम में जारी 41,494/- रुपए (इकतालीस हजार चार सौ चौरानवे रुपए मात्र) रकम की सावधि जमा रसीद है । (4) प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 1/डी, यूको बैंक द्वारा 24 माह की अवधि के लिए कृष्णा प्रसाद के नाम में जारी 36,055/- रुपए (छत्तीस हजार पचपन रुपए मात्र) रकम की सावधि जमा रसीद है । (5) प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 2/ए, रानी चन्दर कान्ता और पद्म सिंह के बीच साधारण मुख्तारनामा विजय सिंह के माध्यम से शारदा प्रसाद और कृष्णा प्रसाद पुत्र सत्य नारायण के पक्ष में निष्पादित तारीख 2 सितम्बर, 1978 के विक्रय विलेख की प्रतिलिपि, जिसमें प्रश्नगत परिसरों को 25,000/- रुपए (पच्चीस हजार रुपए मात्र) की रकम के प्रतिफल में क्रय किया गया था । (6) प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 4/ए, विद्वान् जिला न्यायाधीश, शिमला द्वारा 1995 की वाद सं. 138-एस/1 में पारित डिक्री सीट है जिसमें कृष्णा प्रसाद और शारदा प्रसाद के बीच विभाजन की अंतिम डिक्री पारित की गई थी । (7) प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 4/बी, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 23 के नियम 3 के साथ पठित धारा 151 के अधीन फाइल आवेदन है । (8) प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 5/ए, वर्ष 2002-2003 के लिए जमाबंदी की प्रतिलिपि है जिसके द्वारा शारदा प्रसाद और कृष्णा प्रसाद को वाद संपत्ति के सह-स्वामियों के रूप में अभिलिखित किया गया है और टिप्पण कालम में यह उल्लेख किया गया है कि शारदा प्रसाद के हिस्से का नामांतरण सं. 212 द्वारा जगजीवन प्रसाद, गया प्रसाद, बैज नाथ, रमेश कुमार, राकेश कुमार पुत्र श्रीमती रामरानी, पार्वती और पूनम को बराबर हिस्सों में बांटा गया था । यह वर्णित है कि नामांतरण सं. 226 द्वारा विभाजन हुआ था और कृष्णा प्रसाद के हिस्से में खाता आबंटित किया गया था । (9) प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 5/बी, धनी राम द्वारा कृष्णा प्रसाद के विरुद्ध हिमाचल प्रदेश शहरी किराया नियंत्रण अधिनियम, 1987 की धारा 21 के अधीन फाइल विभाजन की प्रतिलिपि है । (10) प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 5/सी, 1995 की सिविल वाद सं. 138-एस/1 शीर्षक कृष्णा प्रसाद बनाम शारदा प्रसाद और अन्य वाले मामले में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 23 के नियम 3 के अधीन फाइल आवेदन है । (11) प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 6/ए, हस्तांतरित

परिसरों से संबंधित हिम इंजीनियर्स एण्ड आर्किटेक्ट एसोशिएशन द्वारा फाइल तकनीकी स्थल निरीक्षण रिपोर्ट है । (12) प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 6/बी, स्थल नक्शा है । (13) प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 6/सी-1 से प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 6/सी-10 फोटोग्राफ्स हैं और इसके नेगेटिव प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 6/सी-11 से प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 6/सी-20 हैं । (14) प्रदर्श आर. डब्ल्यू. 2/ए, हस्तांतरित परिसरों से संबंधित अभियन्ता जे. के. महेन्द्रू द्वारा प्रस्तुत तकनीकी रिपोर्ट है । (15) प्रदर्श आर. डब्ल्यू. 2/बी, स्थल नक्शा है । (16) प्रदर्श आर-1 से प्रदर्श आर-5, फोटोग्राफ्स हैं ।

13. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान् अधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि वर्तमान बेदखली आवेदन, आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन के कारण दूषित है, इसलिए, इसमें इसके पश्चात् उल्लिखित कारणों से बलरहित होने के कारण नामंजूर होने योग्य है । न्यायालय ने वर्ष 2002-03 के लिए अभिलेख पर प्रस्तुत जमाबंदी प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 5/ए की प्रतिलिपि का परिशीलन किया । स्वामित्व कालम में कृष्णा प्रसाद और शारदा प्रसाद के नामों का उल्लेख किया गया है और कब्जा कालम में यह विनिर्दिष्टतः उल्लिखित है कि किराएदार कब्जे में है और टिप्पण कालम में यह विनिर्दिष्टतः उल्लिखित है कि शारदा प्रसाद की सम्पत्ति जगजीवन प्रसाद, गया प्रसाद, बैज नाथ, रमेश कुमार, राकेश कुमार पुत्र श्रीमती रामरानी, पार्वती और पूनम को बराबर हिस्सों में न्यागत हुई थी और यह भी विनिर्दिष्टतः उल्लिखित है कि नामांतरण सं. 226 द्वारा विभाजन हुआ था और सम्पूर्ण खाता कृष्णा प्रसाद के हिस्से में आता है । किराएदार ने भी मुख्य परीक्षा में साक्ष्य के माध्यम से शपथपत्र फाइल किया है । किराएदार ने यह स्वीकार किया है कि परिसरों को क्रय करने के पश्चात् वह कृष्णा प्रसाद और शारदा प्रसाद को किराया संदाय करता था । किराएदार ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि वह कृष्णा प्रसाद और शारदा प्रसाद को किराया संदाय करता था । उपर्युक्त कथित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वर्तमान बेदखली आवेदन, आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन के कारण दूषित नहीं है । यह सुस्थिर विधि है कि स्वीकृत तथ्यों को, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 58 के अधीन साबित किया जाना आवश्यक नहीं होता है ।

14. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान् अधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि निर्माण की प्रकृति और प्रस्थापित निर्माण पर कितना खर्चा होगा, का उल्लेख नहीं किया गया है और यदि इस आधार पर पुनरीक्षण आवेदन

मंजूर किया जाता है तो इसे इसमें इसके पश्चात् उल्लिखित कारणों से बलरहित होने के कारण नामंजूर कर दिया जाए । **तारा दत्त शर्मा** बनाम **संजीव पंडित**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि बेदखली आदेश पारित करने के लिए स्थल नक्शा का अनुमोदन अनिवार्य नहीं है । **ओम प्रकाश** बनाम **गंगा राम**[2] वाले नवीनतम मामले का भी उल्लेख किया जा सकता है । **हरि दास शर्मा** बनाम **विकास सूद**[3] वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 29 अप्रैल, 2013 को यह विनिश्चित किया गया है कि बेदखली आदेश में यह निर्देश कि बेदखली आदेश, भवन निर्माण की योजना के निवेदन पर निष्पादित होगा यह हिमाचल प्रदेश शहरी किराया नियंत्रण अधिनियम, 1987 की धारा 14(4) के उपबंधों के प्रतिकूल है । यह सुस्थिर विधि है कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि, भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 141 के अधीन भारत के सभी न्यायालयों पर आबद्धकर होती है ।

15. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान् अधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि यद्यपि अपील प्राधिकारी द्वारा किराएदार की पुनः प्रवेश के अधिकार को मंजूर किया गया है किन्तु किराएदारी के निबंधनों और शर्तों, जिनमें आवास का आकार सम्मिलित है, को अवधारित नहीं किया गया है और इस आधार पर यदि पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया जाता है तो यह इसमें इसके पश्चात् उल्लिखित कारणों से बलरहित होने के कारण नामंजूर होने योग्य है । यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि आदेश 14 के नियम 3(ग) के अधीन किराएदार को पुनः प्रवेश का अधिकार है और पुनः प्रवेश के अधिकार को विद्वान् किराया नियंत्रक द्वारा विनिश्चित किया जाएगा जब किराएदार द्वारा नवीनतम विधि के अनुसरण में पुनः प्रवेश के लिए आवेदन फाइल किया जाएगा ।

16. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान् अधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि जे. के. महेन्द्रू के परिसाक्ष्य और तकनीकी रिपोर्ट प्रदर्श आर. डब्ल्यू. 2/ए के अनुसार, परिसर निवास करने के लिए सुरक्षित, उपयुक्त और ठीक है तथा वर्तमान परिसर को ढहाने की कोई आवश्यकता नहीं है और यदि इस आधार पर पुनरीक्षण आवेदन स्वीकार किया जाता है तो, यह इसमें इसके

[1] एच. एल. जे. 2011 एच. पी. 64.

[2] 2001 एच. एल. जे. पृष्ठ 161.

[3] 2013 की सिविल अपील सं. 4127.

पश्चात्, उल्लिखित कारणों से बलरहित होने के कारण नामंजूर किए जाने योग्य है । हिम इंजीनियर्स एण्ड आर्किटेक्ट एसोशिएशन ने अभिलेख पर रिपोर्ट प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 6/ए फाइल की है और रिपोर्ट में यह वर्णित है कि परिसरों की आयु 50-60 वर्ष के बीच है और परिसर अधिक समय तक जीवन जीने के लिए सही है । रिपोर्ट प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 6/ए में यह वर्णित है कि भवन, शिमला के बेहतर स्थान पर स्थित है और प्रस्थापित निर्माण द्वारा नया ढांचा बनाने के लिए परिसरों के स्वामी के आर्थिक भार में अत्यधिक वृद्धि होगी । रिपोर्ट प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 6/ए में यह वर्णित है कि स्थानीय परिसरों में विवाद्यक मात्र पुराने होने का है और भवन के जीर्ण-शीर्ण अवस्था में होने का है तथा अन्य सभी भवनों का नए तरीकों से पुनर्निर्माण हुआ है । यह सुस्थिर विधि है कि पुनः भवन बनाने के प्रयोजन के लिए हस्तांतरित परिसरों की दशा में अतिरिक्त परिवर्तन करना अनिवार्य कारक नहीं है । [देखें – **प्रेम चन्द** बनाम **शांता प्रभाकर**[1], **जगत पाल धवन** बनाम **काहन सिंह (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य**[2]] यह सुस्थिर विधि है कि किराएदार, किराएदारी के निबंधनों के लिए मकान-मालिक को आदेशित नहीं कर सकता है जब मकान-मालिक अपनी आर्थिक उपयोगिता को बढ़ाने के लिए परिसरों का पुनर्निर्माण करना चाहता है । [देखें – **दीप चन्द्र जुनेजा** बनाम **लाजवंती कथूरिया (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण**[3]] ।

17. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान् अधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि विद्वान् किराया नियंत्रक और विद्वान् प्रथम अपील प्राधिकारी ने अभिलेख पर प्रस्तुत मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्यों का समुचित तौर पर मूल्यांकन नहीं किया है और इस आधार पर यदि पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया जाता है तो यह, इसमें इसके पश्चात्, उल्लिखित कारणों से बलरहित होने के कारण नामंजूर होने योग्य है । न्यायालय को अभिलेख पर प्रस्तुत मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्यों का ध्यानपूर्वक परिशीलन करना होता है ।

18. यह सुस्थिर विधि है कि उच्च न्यायालय को पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग करते समय, मामले में अन्तर्वलित दुरूह और मौलिक विवाद्यकों पर

---

[1] (1998) 1 एस. सी. सी. 274.

[2] (2003) 1 एस. सी. सी. 191.

[3] (2008) 8 एस. सी. सी. 497.

विद्वान् किराया नियंत्रक और विद्वान् प्रथम प्राधिकारी द्वारा निकाले गए तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि इसमें अवैधता और अनौचित्यता कारित नहीं हुई हो । [देखें – **हीरा लाल** बनाम **प्रभु चौधरी**[1], **गिरधरभाई** बनाम **सैय्यद मोहम्मद मीरसाहेब कादरी और अन्य**[2] तथा **सुशीला देवी और अन्य** बनाम **अविनाश चन्द्र जैन और अन्य**[3]] यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि विद्वान् प्रथम अपील प्राधिकारी के आदेश में कोई अवैधता या अनौचित्यता नहीं है । विवाद्यक सं. 1 का उत्तर नकारात्मक में दिया जाता है ।

मुद्दा सं. 2 (अनुतोष)

19. मुद्दा सं. 1 पर निकाले गए निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, सिविल पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया जाता है । इसके अतिरिक्त, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 13 जनवरी, 2014 को विनिश्चित मैसर्स आर. एस. पूरनमल ट्रस्ट बनाम मैसर्स दयाल सन्स क्लाथ मर्चेन्ट्स वाले मामले में, अधिकथित निर्णयज विधि को ध्यान में रखते हुए, किराएदार एक माह की अवधि के भीतर परिसरों को खाली करके कब्जा मकान-मालिक को सौंपेगा । इसके पश्चात्, मकान-मालिक विधि के अनुसरण में, 6 माह की अवधि के भीतर परिसरों का नया निर्माण पूरा करेगा । इसके पश्चात्, किराएदार को नवीनतम विधि के अनुसरण में नए निर्मित परिसरों में पुनः प्रवेश करने का अधिकार होगा । पक्षकार अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे । इस आदेश की प्रमाणित प्रति के साथ फाइल को वापस विद्वान् किराया नियंत्रक और विद्वान् अपील प्राधिकारी के पास भेजा जाए । पुनरीक्षण आवेदन निपटाया जाता है । सभी लम्बित प्रकीर्ण आवेदन/आवेदनों को भी निपटाया जाता है ।

पुनरीक्षण आवेदन नामंजूर किया गया ।

क.

---

[1] ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 852.

[2] (1987) 3 एस. सी. सी. 538.

[3] (1987) 2 एस. सी. सी. 219.

वेद प्रकाश

बनाम

गोपाला और अन्य

तारीख 9 सितम्बर, 2016

न्यायमूर्ति संदीप शर्मा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – 100, 151 और आदेश 41 का नियम 27 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65] – द्वितीय अपील – अतिरिक्त साक्ष्य की ग्राह्यता – यदि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों से अपीली न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि समुचित निर्णय सुनाने के लिए अतिरिक्त साक्ष्य लिया जाना आवश्यक है तभी वह अतिरिक्त साक्ष्य ग्रहण कर सकता है अन्यथा नहीं ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – 100 [सपठित हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 की धारा 31] – यदि कोई अभिधारी अपने अभिधृति अधिकारों का त्यजन/अभ्यर्पण करना चाहता है तो वह राज्य के पक्ष में ही कर सकता है किसी अन्य अभिधारी के पक्ष में नहीं – यदि कोई अभिधारी किसी अन्य व्यक्ति/अभिधारी के पक्ष में अपने अभिधृति अधिकारों का त्यजन/अभ्यर्पण करता है तो वह अवैध, अकृत और शून्य होगा ।

वर्तमान मामले में, वादियों ने प्रतिवादी के विरुद्ध घोषणा और स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश तथा वैकल्पिक रूप में, संयुक्त कब्जे के लिए विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, बिलासपुर के समक्ष एक वाद फाइल किया था जिसमें यह प्रकथन किया गया था कि खसरा सं. 59/7 में समाविष्ट माप 7-11 बीघा भूमि वादियों और अभिधारी के रूप में प्रतिवादी के संयुक्त कब्जे में थी और प्रतिवादी के नाम में अनन्य अभिधारी के रूप में राजस्व प्रविष्टियां गलत, शून्य और अवैध हैं तथा वादी, राजस्व कर्मचारियों की दुरभिसंधि से तैयार ऐसी काल्पनिक, कपटपूर्ण और अप्राधिकृत राजस्व प्रविष्टियों से आबद्ध नहीं हैं । वादियों ने वादपत्र में यह भी दावा किया था कि प्रतिवादी को वादियों के संयुक्त अभिधृति में कोई अधिकार, हक या हित नहीं है, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिवादी को संयुक्त अभिधृति में किसी

भी प्रकार से हस्तक्षेप करने से अवरुद्ध करते हुए, स्थायी व्यादेश और वादियों के कब्जे के लिए अनुतोष की प्रार्थना की गई थी । वादियों ने यह भी प्रकथन किया था कि वादी सं. 1, गोपाला राम और बाजा राम, वादी सं. 2 और 3 और प्रतिवादी तुलसी राम के पिता सगे भाई थे और वे किराए के रूप में प्रस्तुत 1/4 हिस्से का संदाय करने पर भूमि स्वामियों के अधीन माप 10.11 बीघा भूमि के कब्जे में संयुक्त अभिधारी थे । वादियों ने वादपत्र में यह भी प्रकथन किया था कि श्री बाजा राम की मृत्यु के पश्चात्, वादी सं. 2 और 3 ने उसके पुत्र के रूप में उसके अभिधारी अधिकारों को उत्तराधिकार में प्राप्त किया था । वादियों ने यह भी प्रकथन किया था कि हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 के प्रवर्तन में आने के पश्चात् कुल अभिधृति भूमि में से 3 बीघा भूमि को स्वामियों द्वारा पुनः प्राप्त किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप 7.11 बीघा वाद भूमि वादियों और प्रतिवादियों के संयुक्त अभिधृति में आ गई थी और वे उसके कब्जे में थी । वादी ने वादपत्र में विनिर्दिष्टतः यह कथन किया था कि जून, 1995 के पिछले सप्ताह में जब वे वाद भूमि जोत रहे थे तो प्रतिवादी ने संयुक्त कब्जे में हस्तक्षेप किया और संयुक्त अभिधृति में वादियों के अधिकारों को प्रश्नगत किया और जांच करने के पश्चात् वादियों को यह जानकारी हुई कि प्रतिवादी ने चालाकी से राजस्व कर्मचारियों के साथ दुरभिसंधि करके अपने पक्ष में गलत राजस्व प्रविष्टियां करवा ली थीं, इसके पश्चात्, वादियों ने प्रतिवादी को संयुक्त अभिधृति भूमि में हस्तक्षेप नहीं करने के लिए कहा और वादियों के नाम में राजस्व प्रविष्टियां सही कराके वादियों के दावे को स्वीकार करने के लिए कहा किन्तु उसने कोई कदम नहीं उठाया और इस प्रकार वादियों ने बाध्य होकर विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष वाद फाइल किया था । प्रतिवादियों ने लिखित कथन फाइल करते हुए, वादियों के दावे का खंडन किया, यह कथन करते हुए कि श्री बाजा राम, वादी सं. 2 और 3 तथा प्रतिवादी के पिता, अभिधारी के रूप में वाद भूमि के संयुक्त कब्जे में नहीं थे । प्रतिवादी ने यह दावा किया कि वाद भूमि सभी प्रकार से अनन्य रूप में प्रतिवादी के कब्जे में थी और इस प्रकार, श्री गरजा राम और बाजा राम ने नामांतरण सं. 74 की मंजूरी के समय पर भूमि स्वामी के अधीन अभिधारी के रूप में शेष भूमि के बारे में प्रतिवादी के कब्जे को अभिलेख में प्रविष्ट कराने के लिए अपनी सहमति दी थी और अब प्रतिवादी हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 के प्रवर्तन में आने के पश्चात् वाद भूमि का स्वामी हो गया है ।

प्रतिवादी ने यह भी दलील दी कि राजस्व प्रविष्टियां प्रतिवादी की अभिधृति और कब्जे के आधार पर सही दर्ज की गई हैं, इसलिए, अब वादियों के नाम में राजस्व प्रविष्टियों को परिवर्तित करने का प्रश्न ही नहीं है । प्रतिवादी ने विनिर्दिष्टतः संयुक्त अभिधारियों के रूप में वादियों के कब्जे से इनकार किया इसके बजाय प्रतिवादी ने प्रारम्भिक आक्षेप सं. 4 उद्भूत किया, जिसमें यह कथन करते हुए कि वादियों ने भूमि स्वामियों की उपस्थिति और सहमति के साथ नामांतरण सं. 74 को प्रविष्टि करते समय प्रतिवादी के पक्ष में अपने हिस्सों का त्याग कर दिया था क्योंकि 10.11 बीघा भूमि में से 1.10 बीघा भूमि को भूमि स्वामी द्वारा पुनः प्राप्त कर लिया गया था और शेष भूमि प्रतिवादी को अधिभोगी अभिधारी के रूप में दे दिया गया था । पूर्वोक्त पृष्ठभूमि में प्रतिवादी ने वादियों के दावे का खंडन किया, यह कथन करते हुए कि वादियों को राजस्व प्रविष्टियों को अकृत और शून्य घोषित कराने का कोई अधिकार नहीं है, विनिर्दिष्टतया नामांतरण सं. 74 को ध्यान में रखते हुए, क्योंकि वादी वाद भूमि के किसी भी हिस्से के कब्जे में नहीं हैं । प्रतिवादी ने वर्तमान संविवाद को विनिश्चित करने की सिविल न्यायालय की अधिकारिता के बारे में भी आक्षेप उद्भूत किया । प्रत्युत्तर के माध्यम से, वादियों ने वादपत्र में अन्तर्विष्ट अभिकथनों/प्रकथनों का पुनः प्रत्याख्यान किया और पुनः पुष्ट किया तथा लिखित कथन में अन्तर्विष्ट अभिकथनों से इनकार किया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने क्रमशः पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर विवाद्यक सं. 1 से 3 को वादियों के पक्ष में विनिश्चित किया और विवाद्यक सं. 4 से 7 का उत्तर नकारात्मक में दिया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 6 जून, 2002 के आक्षेपित निर्णय और डिक्री द्वारा वादियों का वाद डिक्री कर दिया, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि वाद संपत्ति, वादियों के साथ प्रतिवादी की संयुक्त अभिधृति है और वादी स्थायी व्यादेश पाने के हकदार हैं । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि वादी, वाद भूमि के संयुक्त कब्जे के लिए भी हकदार हैं । विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय से व्यथित और असंतुष्ट होकर अपीलार्थी/प्रतिवादी ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन 2002 की सिविल अपील सं. 78 के माध्यम से विद्वान् जिला न्यायाधीश, बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश के समक्ष अपील फाइल की, तथापि, यह तथ्य शेष रह जाता है कि विद्वान् जिला न्यायाधीश स्वयं के समक्ष उपलब्ध अभिलेखों का मूल्यांकन करने के पश्चात् विद्वान् विचारण

न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को कायम रखा और वर्तमान अपीलार्थी/प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत अपील को खारिज कर दिया । अतएव, इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इसमें उपर्युक्त निर्दिष्ट आवेदन में अन्तर्विष्ट पूर्वोक्त प्रकथनों के परिशीलन से यह स्पष्टतः सुझाव मिलता है कि आवेदक/अपीलार्थी ने यह वर्णित करने के लिए उपाबंध ए-1 और उपाबंध ए-2 को अभिलेख पर रखने के लिए प्रार्थना की है कि वादियों ने प्रतिवादी अर्थात् तुलसी राम के पक्ष में अपने अभिधृति का त्यजन कर दिया था । पूर्वोक्त आवेदन के गुणागुणों का उल्लेख करने के पूर्व, हिमाचल प्रदेश भूमि सुधार अधिनियम, 1972 की धारा 31 के प्रति निर्दिष्ट करना समुचित होगा, जो त्यजन के बारे में विचार करता है – "धारा 31. **त्यजन** – अभिधारी द्वारा भूमि स्वामी के पक्ष में अभिधृति का कोई त्यजन नहीं किया जाएगा । तथापि, यदि अभिधारी अपनी अभिधृति भूमि का स्वैच्छिक अभ्यर्पण करना चाहता है तो वह राज्य सरकार के पक्ष में होगा । राज्य सरकार विहित तरीके से त्यक्त भूमि में किसी उपयुक्त अभिधारी या भूमिहीन कृषक श्रमिक को प्रवेश कराने का अधिकार होगा ।" पूर्वोक्त विधि के उपबंधों का मूल परिशीलन करने से यह स्पष्टतः सुझाव मिलता है कि अभिधारी द्वारा भूमि स्वामी के पक्ष में अभिधृति का कोई त्यजन नहीं किया जा सकता है । इस पूर्वोक्त उपबंधों में यह भी उपबंधित है कि यदि अभिधारी अपनी अभिधृति भूमि का स्वैच्छिक अभ्यर्पण करना चाहता है तो वह राज्य सरकार के पक्ष में कर सकता है और इसके पश्चात्, राज्य सरकार को विहित तरीके से त्यक्त भूमि में किसी उपयुक्त अभिधारी या भूमिहीन कृषक श्रमिक को प्रवेश कराने का अधिकार होगा । पूर्वोक्त विधि के उपबंधों की सूक्ष्म संवीक्षा करने से यह स्पष्टतः सुझाव मिलता है कि अभिधृति, यदि कोई हो, का त्यजन सरकार के पक्ष में ही हो सकता है न कि किसी व्यक्ति के पक्ष में । यद्यपि, पूर्वोक्त विधि के उपबंधों के प्रथमदृष्ट्या परिशीलन से यह सुझाव मिलता है कि अभिधारी द्वारा भूमि स्वामी के पक्ष में अभिधृति का त्यजन नहीं किया जा सकता है किन्तु पूर्वोक्त विधि के उपबंध के द्वितीय भाग के परिशीलन से यह स्पष्ट सुझाव मिलता है कि अभिधृति, यदि कोई हो, का राज्य सरकार के पक्ष में ही अभ्यर्पण किया जा सकता है, इसका अभिप्राय यह है कि अभिधारी द्वारा सह-अभिधारी/संयुक्त अभिधारी के पक्ष में अभिधृति का अभ्यर्पण नहीं किया जा सकता है । यह

न्यायालय, इसमें उपर्युक्त रूप में प्रस्तुत, अधिनियम, 1972 की धारा 31 के विधि के पूर्वोक्त उपबंधों का परिशीलन करने के पश्चात् इस बात से पूर्णतया संतुष्ट हैं कि राज्य सरकार के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में अभिधृति का कोई त्यजन नहीं हो सकता है और इस प्रकार, इस न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए इन समवर्ती निष्कर्षों से असहमत होने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है कि एक अभिधारी द्वारा अन्य अभिधारी के पक्ष में अभिधृति का त्यजन नहीं किया जा सकता है । उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय को उपाबंध ए-1 और उपाबंध ए-2 को अभिलेख पर रखने के लिए अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए आवेदन मंजूर करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है जिसके द्वारा अभिकथित तौर पर वादियों, जो स्वीकृततः प्रतिवादी के साथ संयुक्त अभिधारी हैं, ने प्रतिवादी तुलसी राम के पक्ष में अपनी अभिधृति का त्यजन किया था । चूंकि, उपर्युक्त निर्दिष्ट अधिनियम, 1972 की धारा 31 के अधीन विनिर्दिष्ट वर्जन अन्तर्विष्ट है इसलिए, वादी संयुक्त अभिधारी होने के नाते उस प्रतिवादी के पक्ष में अभिधृति का त्यजन नहीं कर सकता है जो वादियों के साथ संयुक्त अभिधारी है और इस प्रकार कोई फायदा, यदि कोई हो, अपने इस दावे को सिद्ध करने के लिए पूर्वोक्त दस्तावेजों को अभिलेख पर रखते हुए, आवेदक/अपीलार्थी द्वारा नहीं उठाया जा सकता है कि अभिधृति का नामांतरण सं. 74 के अनुप्रमाणन के समय पर वादी द्वारा त्यजन कर दिया गया था । चूंकि, इस न्यायालय का यह मत है कि अभिलेख पर प्रस्तुत करने के लिए आशयित दस्तावेजों का, अधिनियम, 1972 की धारा 31 के निबंधनों से कोई सुसंगतता नहीं है, इसलिए, अपीलार्थी/आवेदक के विद्वान् काउंसेल द्वारा इसमें उपर्युक्त निर्दिष्ट निर्णय वर्तमान मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होते हैं । तद्नुसार, वर्तमान आवेदन खारिज किया जाता है । (पैरा 24, 25, 26 और 27)

विधि का सारवान् प्रश्न सं. 1 के परिशीलन, जिसके द्वारा यह न्यायालय यह विनिश्चित करने के लिए आबद्ध है कि 'क्या विद्वान् निचले न्यायालयों के निष्कर्ष, तारीख 13 मार्च, 2001 को विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 के अधीन आवेदन मंजूर करने के अनुसरण में प्रस्तुत साक्ष्य पर विचार नहीं करने के कारण दूषित है' से स्पष्टतः यह सुझाव मिलता है कि इस प्रश्न पर और अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है, विनिर्दिष्टतया, हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 की धारा 31 को ध्यान में

रखते हुए, जो अभिधृति के त्यजन के बारे में विचार करता है । जैसा कि अभिवचनों के साथ ही आक्षेपित निर्णय से यह स्पष्टतः प्रकट होता है कि अपीलार्थी/प्रतिवादी ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 के अधीन द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करने के आशय से आवेदन फाइल किया यह साबित करने के लिए कि नामांतरण सं. 74 के अनुप्रमाणन के समय पर वादियों ने अपने अभिधृति अधिकारों को प्रतिवादी श्री तुलसी राम के पक्ष में त्यक्त कर दिया था । यद्यपि, विद्वान् विचारण न्यायालय ने पूर्वोक्त आवेदन को मंजूर करने के पश्चात् द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करना मंजूर कर लिया था किन्तु अभिलेख पर प्रस्तुत द्वितीयक साक्ष्य से संतुष्ट नहीं होने के नाते और विश्वसनीय नहीं मानते हुए, प्रतिवादी द्वारा उद्भूत अभिधृति के त्यजन के अभिवाक् को नामंजूर कर दिया था । किन्तु, अब इस न्यायालय को अधिनियम, 1972 की धारा 31, जिस पर अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए आवेदन पर विचार करते समय इस न्यायालय ने विस्तारपूर्वक विचार किया है, का परिशीलन करने के पश्चात् यह पूर्णतः विश्वास हो गया है कि वादी का संयुक्त अभिधारी होने के नाते राज्य सरकार के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में अभिधृति का त्यजन/अभ्यर्पण करने का कोई अधिकार, जो भी हो, नहीं था । वर्तमान मामले में, चूंकि प्रतिवादी का भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 के अधीन द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करने का मात्र आशय नामांतरण सं. 74 के अनुप्रमाणन को साबित करने का था, यह वर्णित करते हुए कि वादी ने प्रतिवादी के पक्ष में अभिधृति का त्यजन कर दिया था, विद्वान् दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत द्वितीयक साक्ष्य, विनिर्दिष्टतः अधिनियम, 1972 की धारा 31, जिसमें अभिधारी द्वारा अभिधृति का त्यजन, यदि कोई हो, का राज्य सरकार के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में पूर्णतः वर्जित है, को ध्यान में रखते हुए, पर विचार करते समय पारित निर्णयों में कोई अवैधता और कमी, यदि कोई हो, नहीं हो सकती है । तद्नुसार, सारवान् प्रश्न सं. 1 का उत्तर दिया जाता है । इसी प्रकार, विधि का सारवान् प्रश्न 2 भी विद्वान् निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए इस प्रश्न से संबंधित है कि प्रत्यर्थी-वादी द्वारा प्रतिवादी-अपीलार्थी के पक्ष में किए गए त्यजन का कोई मूल्य नहीं है क्योंकि इसे हिमाचल प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1954 की धारा 38 के उपबंधों की अवहेलना करते हुए, रजिस्ट्रीकृत नहीं हुआ था । इसमें उपर्युक्त, अधिनियम, 1972 की धारा 31 के निबंधनों में अभिधारी द्वारा त्यजन, यदि कोई हो, के बारे में सविस्तार चर्चा को ध्यान में

रखते हुए, पूर्वोक्त प्रश्न पर और अधिक चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है, विनिर्दिष्टतया, जब इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अभिधारी/संयुक्त अभिधारी को राज्य सरकार के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में अभिधृति का त्यजन करने की कोई शक्ति नहीं है । अतएव, अधिनियम, 1972 की धारा 31 को ध्यान में रखते हुए, प्रतिवादी-अपीलार्थी के पक्ष में प्रत्यर्थी-वादी द्वारा किए गए रजिस्ट्रीकरण और त्यजन के बारे में, निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों, यदि कोई हो, की सत्यता की जांच करने की कोई आवश्यकता नहीं है । (पैरा 29 और 30)

अब, प्रश्न जो विनिश्चय करने के लिए शेष रह जाता है वह प्रश्न वाद ग्रहण करने की सिविल न्यायालय की अधिकारिता के बारे में है । स्वीकृततः, वादियों ने वर्तमान वाद के माध्यम से घोषणा और स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश तथा वैकल्पिक रूप में, इसमें उपर्युक्त दिए गए वर्णन के अनुसार, 7.11 बीघा भूमि प्रतिवादी के साथ संयुक्त अभिधारी के रूप में स्वयमेव दावा करने की ईप्सा की है । पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत अभिवचनों के साथ ही साक्ष्यों के मूल परिशीलन से कहीं भी यह सुझाव नहीं मिलता है कि भूमि स्वामी और अभिधारी के बीच विवाद्यक, यदि कोई हो, भूमि सुधार अधिनियम, 1972 की धारा 100 के अधीन साम्पत्तिक अधिकारों के कब्जे या प्रदत्त करने के बारे में रहा है, बजाय इसके, अभिलेख पर प्रस्तुत अभिलेखों के साथ ही साक्ष्यों के ध्यानपूर्वक परिशीलन से यह सुझाव मिलता है कि वादियों ने यह घोषणा करने की डिक्री की ईप्सा की है कि वे प्रतिवादी के साथ अभिधारी के रूप में वाद भूमि के संयुक्त कब्जे में हैं और राजस्व प्रविष्टियां, जो प्रतिवादी को अभिधृति में भूमि के बारे में, एकमात्र अभिधारी के रूप में दर्शित करती हैं, को अकृत और शून्य घोषित किया जा सकता है और इस प्रकार, यह न्यायालय पूर्वोक्त इस दलील को स्वीकार करने में कठिनाई महसूस करता है कि सिविल न्यायालय को कोई अधिकारिता नहीं थी । अभिलेखों से यह प्रकट होता है कि अपीलार्थी/प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल ने अधिकारिता का अभिवाक् उद्भूत करते समय हमारा ध्यान, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा 1988 की नियमित द्वितीय अपील सं. 338, चुनिया देवी बनाम जिन्दू राम वाले मामले में, पारित निर्णय की ओर दिया है किन्तु, यह वर्तमान मामले में लागू नहीं हो सकता है क्योंकि इस मामले में भूमि स्वामी और अभिधारी के बीच साम्पत्तिक अधिकारों को प्रदत्त करने के बारे में कोई विवाद्यक नहीं है, जैसा कि उपर्युक्त मत व्यक्त किया गया है, इसके बजाय वादियों ने

प्रतिवादी के साथ संयुक्त अभिधृति होने का स्वयं दावा करते हुए घोषणा करने और अभिधृति के अधीन भूमि के संयुक्त कब्जे में जमाबंदियों में उन्हें निरन्तर दर्शित करते हुए विश्वसनीय साक्ष्य अभिलेख पर रखने के लिए वाद फाइल किया है । वर्तमान वाद के माध्यम से, वादी ने मात्र उस राजस्व अभिलेख में सुधार की ईप्सा की है जिसे अभिकथित तौर पर प्रतिवादी ने राजस्व कर्मचारियों की सहायता से परिवर्तित कर दिया था जिसके द्वारा राजस्व प्राधिकारियों ने प्रतिवादियों के नाम को हटाते हुए प्रतिवादी सं. 1 को अभिधृति भूमि में एकमात्र अनन्य अभिधारी के रूप में प्रविष्ट कर लिया था । इसके अतिरिक्त, प्रतिवादी ने लिखित कथन फाइल करने के साथ ही सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए आवेदन फाइल करते हुए यह वर्णित करने का प्रयास किया है कि उसने हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 की धारा 4 के निबंधनों में साम्पत्तिक अधिकारों को प्रदत्त करने के माध्यम से वाद भूमि के बारे में स्वामी की प्रास्थिति अर्जित कर ली है । किन्तु, आश्चर्यजनक तौर पर, पक्षकारों में से किसी भी पक्षकार द्वारा अभिलेख पर ऐसा कोई मौखिक या प्रत्यक्ष साक्ष्य यह साबित करने के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया है कि प्रश्नगत वाद भूमि, साम्पत्तिक अधिकारों को प्रदत्त करने के माध्यम से उनमें निहित हो गई है, इसका अभिप्राय यह है कि वाद फाइल करने के समय पर पक्षकारों की प्रास्थिति वाद भूमि के ऊपर मात्र अभिधारी के रूप में थी और इस प्रकार, इस न्यायालय को अपीलार्थी/प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई इस दलील में कोई बल नहीं मिलता है कि हिमाचल प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1954 के अधीन सिविल न्यायालय को कोई वाद ग्रहण करने से विनिर्दिष्टतया वर्जित किया गया है । इस न्यायालय को निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों में कोई अनियमितता और कमी, यदि कोई हो, नहीं दिखाई देती है बजाय इसके ये अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के सही मूल्यांकन पर आधारित हैं । इस न्यायालय का यह पूर्णतया समाधान है कि दोनों निचले न्यायालयों ने मामले के प्रत्येक पहलू पर अतिसावधानीपूर्वक विचार किया है और वर्तमान मामले में, हस्तक्षेप, जो भी हो, करने का कारण नहीं बनता है । चूंकि, दोनों निचले न्यायालयों ने समवर्ती निष्कर्ष निकाले हैं, जो अन्यथा भी साक्ष्यों के समुचित मूल्यांकन पर आधारित प्रतीत होते हैं, इसलिए, इस न्यायालय को मामले में हस्तक्षेप करने का अति सीमित अधिकारिता क्षेत्र है । (पैरा 31 और 32)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	(2015) 4 एस. सी. सी. 264 : **लक्ष्मीदेवम्मा और अन्य** बनाम **रंगनाथ और अन्य ;**	14,32
[2015]	(2015) 1 एस. सी. सी. 677 : **वाडी** बनाम **अनावेदक/प्रतिवादी ;**	21
[2014]	(2014) 13 एस. सी. सी. 468 : **कर्नाटक राज्य और एक अन्य** बनाम **के. सी. सुब्रमणियम और अन्य ;**	22
[2012]	(2012) 8 एस. सी. सी. 148 : **भारत संघ** बनाम **इब्राहिम उद्दीन और एक अन्य ।**	23

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2006 की नियमित द्वितीय अपील सं. 545.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री विजय चौधरी, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री अजय कुमार, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ धीरज वशिष्ठ, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति संदीप शर्मा – सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन फाइल वर्तमान नियमित द्वितीय अपील, विद्वान् जिला न्यायाधीश, बिलासपुर, जिला बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश द्वारा पारित तारीख 5 सितम्बर, 2006 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध निदेशित है जिन्होंने विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, बिलासपुर द्वारा 1995 की सिविल वाद सं. 118 में पारित तारीख 6 जून, 2002 के निर्णय की पुष्टि कर दी थी जिसके द्वारा वादियों के वाद को घोषणा और स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश और संयुक्त कब्जे के विकल्प के साथ डिक्री कर दिया गया था ।

2. संक्षिप्त तथ्य, जैसा कि अभिलेखों से दर्शित होता है यह है कि वादियों (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् प्रत्यर्थियों कहा गया है) ने प्रतिवादी (जिसे इसमें इसके पश्चात् अपीलार्थी कहा गया है) के विरुद्ध घोषणा और स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश तथा वैकल्पिक रूप में, संयुक्त कब्जे के लिए

विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, बिलासपुर के समक्ष एक वाद फाइल किया था जिसमें यह प्रकथन किया गया था कि खसरा सं. 59/7 में समाविष्ट माप 7-11 बीघा भूमि वादियों और अभिधारी के रूप में प्रतिवादी के संयुक्त कब्जे में थी और प्रतिवादी के नाम में अनन्य अभिधारी के रूप में राजस्व प्रविष्टियां गलत, शून्य और अवैध हैं तथा वादी, राजस्व कर्मचारियों की दुरभिसंधि से तैयार ऐसी काल्पनिक, कपटपूर्ण और अप्राधिकृत राजस्व प्रविष्टियों से आबद्ध नहीं हैं । वादियों ने वादपत्र में यह भी दावा किया था कि प्रतिवादी को वादियों के संयुक्त अभिधृति में कोई अधिकार, हक या हित नहीं है, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिवादी को संयुक्त अभिधृति में किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप करने से अवरुद्ध करते हुए, स्थायी व्यादेश और वादियों के कब्जे के लिए अनुतोष की प्रार्थना की गई थी । वादियों ने यह भी प्रकथन किया था कि वादी सं. 1, गोपाला राम और बाजा राम, वादी सं. 2 और 3 और प्रतिवादी तुलसी राम के पिता सगे भाई थे और वे किराए के रूप में प्रस्तुत 1/4 हिस्से का संदाय करने पर भूमि स्वामियों के अधीन माप 10.11 बीघा भूमि के कब्जे में संयुक्त अभिधारी थे । वादियों ने वादपत्र में यह भी प्रकथन किया था कि श्री बाजा राम की मृत्यु के पश्चात्, वादी सं. 2 और 3 ने उसके पुत्र के रूप में उसके अभिधारी अधिकारों को उत्तराधिकार में प्राप्त किया था । वादियों ने यह भी प्रकथन किया था कि हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 के प्रवर्तन में आने के पश्चात् कुल अभिधृति भूमि में से 3 बीघा भूमि को स्वामियों द्वारा पुनः प्राप्त किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप 7-11 बीघा वाद भूमि वादियों और प्रतिवादियों के संयुक्त अभिधृति में आ गई थी और वे उसके कब्जे में थे । वादी ने वादपत्र में विनिर्दिष्टतः यह कथन किया था कि जून, 1995 के पिछले सप्ताह में जब वे वाद भूमि जोत रहे थे तो प्रतिवादी ने संयुक्त कब्जे में हस्तक्षेप किया और संयुक्त अभिधृति में वादियों के अधिकारों को प्रश्नगत किया और जांच करने के पश्चात् वादियों को यह जानकारी हुई कि प्रतिवादी ने चालाकी से राजस्व कर्मचारियों के साथ दुरभिसंधि करके अपने पक्ष में गलत राजस्व प्रविष्टियां करवा ली थीं, इसके पश्चात्, वादियों ने प्रतिवादी को संयुक्त अभिधृति भूमि में हस्तक्षेप नहीं करने के लिए कहा और वादियों के नाम में राजस्व प्रविष्टियां सही कराके वादियों के दावे को स्वीकार करने के लिए कहा किन्तु उसने कोई कदम नहीं उठाया और इस प्रकार वादियों ने बाध्य होकर विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष वाद फाइल किया था ।

3. प्रतिवादियों ने लिखित कथन फाइल करते हुए, वादियों के दावे का खंडन किया, यह कथन करते हुए कि श्री बाजा राम, वादी सं. 2 और 3 तथा प्रतिवादी के पिता, अभिधारी के रूप में वाद भूमि के संयुक्त कब्जे में नहीं थे । प्रतिवादी ने यह दावा किया कि वाद भूमि सभी प्रकार से अनन्य रूप में प्रतिवादी के कब्जे में थी और इस प्रकार, श्री गरजा राम और बाजा राम ने नामांतरण सं. 74 की मंजूरी के समय पर भूमि स्वामी के अधीन अभिधारी के रूप में शेष भूमि के बारे में प्रतिवादी के कब्जे को अभिलेख में प्रविष्ट कराने के लिए अपनी सहमति दी थी और अब प्रतिवादी हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 के प्रवर्तन में आने के पश्चात् वाद भूमि का स्वामी हो गया है । प्रतिवादी ने यह भी दलील दी कि राजस्व प्रविष्टियां प्रतिवादी की अभिधृति और कब्जे के आधार पर सही दर्ज की गई हैं, इसलिए, अब वादियों के नाम में राजस्व प्रविष्टियों को परिवर्तित करने का प्रश्न ही नहीं है । प्रतिवादी ने विनिर्दिष्टतः संयुक्त अभिधारियों के रूप में वादियों के कब्जे से इनकार किया इसके बजाय प्रतिवादी ने प्रारम्भिक आक्षेप सं. 4 उद्भूत किया, जिसमें यह कथन करते हुए कि वादियों ने भूमि स्वामियों की उपस्थिति और सहमति के साथ नामांतरण सं. 74 को प्रविष्ट करते समय प्रतिवादी के पक्ष में अपने हिस्सों का त्याग कर दिया था क्योंकि 10.11 बीघा भूमि में से 1.10 बीघा भूमि को भूमि स्वामी द्वारा पुनः प्राप्त कर लिया गया था और शेष भूमि प्रतिवादी को अधिभोगी अभिधारी के रूप में दे दिया गया था । पूर्वोक्त पृष्ठभूमि में प्रतिवादी ने वादियों के दावे का खंडन किया, यह कथन करते हुए कि वादियों को राजस्व प्रविष्टियों को अकृत और शून्य घोषित कराने का कोई अधिकार नहीं है, विनिर्दिष्टतया नामांतरण सं. 74 को ध्यान में रखते हुए, क्योंकि वादी वाद भूमि के किसी भी हिस्से के कब्जे में नहीं हैं । प्रतिवादी ने वर्तमान संविवाद को विनिश्चित करने की सिविल न्यायालय की अधिकारिता के बारे में भी आक्षेप उद्भूत किया ।

4. प्रत्युत्तर के माध्यम से, वादियों ने वादपत्र में अन्तर्विष्ट अभिकथनों/प्रकथनों का पुनः प्रत्याख्यान किया और पुनः पुष्ट किया तथा लिखित कथन में अन्तर्विष्ट अभिकथनों से इनकार किया ।

5. पक्षकारों के अभिवचनों के आधारों पर, विद्वान् विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :-

"1. क्या वाद संपत्ति, अभिधारी के रूप में प्रतिवादी के कब्जे में

होना गलत, शून्य और अवैध है, जैसा कि अभिकथित है ? यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

2. क्या वादी, व्यादेश का अनुतोष पाने के हकदार है, जैसी कि प्रार्थना की गई है ?

3. क्या वादी, वैकल्पिक रूप में वाद भूमि के संयुक्त कब्जे के अनुतोष को पाने के हकदार है, जैसा कि अभिकथित है ?

4. क्या इस न्यायालय को वाद विनिश्चित करने की अधिकारिता नहीं है, जैसा कि अभिकथित है ?

5. क्या वाद, परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित है, जैसा कि अभिकथित है ?

6. क्या वादियों का कृत्य और आचरण, वर्तमान वाद को वर्जित करता है, जैसा कि अभिकथित है ?

7. क्या वादियों ने प्रतिवादियों के पक्ष में वाद भूमि में अपनी अभिधृति के हिस्से को त्यजन कर दिया है, जैसा कि अभिकथित है, यदि ऐसा है तो इसके प्रभाव ?

8. अनुतोष ।"

6. विद्वान् विचारण न्यायालय ने क्रमशः पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर विवाद्यक सं. 1 से 3 को वादियों के पक्ष में विनिश्चित किया और विवाद्यक सं. 4 से 7 का उत्तर नकारात्मक में दिया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 6 जून, 2002 के आक्षेपित निर्णय और डिक्री द्वारा वादियों का वाद डिक्री कर दिया, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि वाद संपत्ति, वादियों के साथ प्रतिवादी की संयुक्त अभिधृति है और वादी स्थायी व्यादेश पाने के हकदार हैं । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि वादी, वाद भूमि के संयुक्त कब्जे के लिए भी हकदार हैं ।

7. विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय से व्यथित और असंतुष्ट होकर अपीलार्थी/प्रतिवादी ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन 2002 की सिविल अपील सं. 78 के माध्यम से विद्वान् जिला न्यायाधीश, बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश के समक्ष अपील फाइल की, तथापि, यह तथ्य शेष रह जाता है कि विद्वान् जिला न्यायाधीश स्वयं

के समक्ष उपलब्ध अभिलेखों का मूल्यांकन करने के पश्चात् विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को कायम रखा और वर्तमान अपीलार्थी/प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत अपील को खारिज कर दिया । अतएव, इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान अपील फाइल की गई ।

8. इस नियमित द्वितीय अपील को निम्नलिखित विधि के सारवान् प्रश्नों पर स्वीकार किया गया :–

"(1) क्या विद्वान् निचले न्यायालयों के निष्कर्ष, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 13 मार्च, 2001 को भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 के अधीन आवेदन मंजूर करने के अनुसरण में प्रस्तुत साक्ष्य का गलत विचार करने के कारण दूषित है ?

(2) क्या विद्वान् निचले न्यायालयों ने यह निष्कर्ष निकालने में त्रुटि की है कि प्रत्यर्थी-वादी द्वारा प्रतिवादी-अपीलार्थी के पक्ष में किए गए त्यजन का कोई मूल्य नहीं है क्योंकि यह रजिस्ट्रीकृत नहीं था जिससे हिमाचल प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1954 की धारा 38 के साथ पठित हिमाचल अभिलेख मैनुअल के पैरा 8.38ख और पैरा 8.1(v) की अवहेलना होती है ?

(3) क्या सिविल न्यायालय को वर्तमान वाद ग्रहण करने की अधिकारिता थी ?"

9. इस प्रक्रम पर, यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि आवेदक/अपीलार्थी ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन फाइल 2006 की सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 975 के माध्यम से मामले में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए प्रार्थना की थी । किन्तु, इस न्यायालय ने तारीख 20 जुलाई, 2007 के आदेश द्वारा यह आदेशित किया कि आवेदन पर मुख्य मामले की सुनवाई के समय विचार होगा ।

10. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री विजय चौधरी ने यह जोरदार तर्क दिया कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं क्योंकि वे अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के सही मूल्यांकन पर आधारित नहीं हैं । उन्होंने यह दलील दी कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय के मूल परिशीलन से यह सुझाव मिलता है कि निचले न्यायालयों ने अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय गंभीर त्रुटि कारित की है क्योंकि आक्षेपित निर्णय और डिक्री की सूक्ष्म

संवीक्षा से यह सुझाव मिलता है कि अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का सही परिप्रेक्ष्य में परिशीलन नहीं किया गया है, बल्कि सम्पूर्ण निर्णय अंदाजों, कल्पनाओं और अनुमानों पर आधारित है । उन्होंने यह भी दलील दी कि विद्वान् निचले विचारण न्यायालय ने वाद विनिश्चित करते समय अभिधृति के संविवाद पर विचार नहीं करके त्रुटि कारित की है क्योंकि स्वीकृततः प्रतिवादी तुलसी राम वर्ष 1971-72 के पूर्व संपत्ति के अनन्य कब्जे में था और इसके पश्चात्, हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 के प्रवर्तन में आने के पश्चात् स्वामी श्री क्रान्ति कुमार ने 1.10 बीघा तक की भूमि स्वामी के पक्ष में पुनः प्रवेश करने के लिए आवेदन फाइल किया था और शेष भूमि प्रतिवादी तुलसी राम के नाम में प्रविष्ट की गई थी ।

11. विद्वान् काउंसेल श्री चौधरी ने यह भी दलील दी कि नामांतरण के अनुप्रमाणन के बारे में अभिलेख को बार-बार मांगा गया था किन्तु उसका पता नहीं चल सका और इस प्रकार, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 के अधीन एक आवेदन द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए पारित किया गया था और साक्ष्य के आधार पर विद्वान् विचारण न्यायालय ने उसे स्वीकार कर लिया था । अधिनियम, 1972 की धारा 65 के अधीन फाइल आवेदन की कार्यवाहियों के दौरान भूमि स्वामी तारीख 24 अप्रैल, 2000 को आवेदक साक्षी 2 के रूप में उपस्थित होते हुए, सुस्पष्टतः यह कथन किया कि श्री तुलसी राम अभिधृति अभिधारी के नाते कब्जे में था और जिसमें से आधा भूमि में वर्ष 1975-76 में पुनः प्रवेश करने के लिए तत्कालीन भूमि सुधार अधिकारी के समक्ष एक आवेदन फाइल किया था और भूमि सुधार अधिकारी ने घटनास्थल का दौरा करने के पश्चात् कार्यवाहियां की थीं और भूमि में पुनः प्रवेश दिया था और उसका ततिमा भी तैयार किया गया था । श्री चौधरी ने यह भी दलील दी कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने वेद प्रकाश पुत्र श्री तुलसी राम, आवेदक साक्षी 1 और श्री क्रान्ति कुमार, आवेदक साक्षी 2 के कथनों पर विचार करने के पश्चात् द्वितीयक साक्ष्य की कार्यवाहियों में प्रतिवादी-अपीलार्थी तुलसी राम के पक्ष में आवेदन मंजूर कर लिया था और उन कार्यवाहियों में वादियों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य का न तो खंडन किया गया था और न ही आगे की कार्यवाहियों को वादी द्वारा किसी उच्चतर प्राधिकारियों/न्यायालयों के समक्ष ले जाया गया था और इस प्रकार, विद्वान् निचले न्यायालय ने तारीख 24 अप्रैल, 2000 को वादी साक्षी 2 द्वारा किए गए सुस्पष्ट कथनों के साथ

नामांतरण सं. 74 के अनुप्रमाणन के बारे में मूल्यांकन नहीं करके गंभीर त्रुटि कारित की है । उन्होंने यह भी दलील दी कि उपर्युक्त के अलावा, रोजनामचा, जो वर्ष 1972-73 में घटनास्थल पर प्रविष्ट किया गया था, से स्पष्टतः यह प्रकट होता है कि स्वयं वादियों ने यह कथन दिया था कि अभिधृति के अधीन भूमि प्रतिवादी तुलसी राम के नाम में प्रविष्ट होना चाहिए और इस प्रकार, उन्होंने साक्षियों की उपस्थिति में, प्रतिवादियों के पक्ष में अपने अभिधारण अधिकारों का त्यजन कर दिया था । उन्होंने बलपूर्वक यह दलील दी कि चूंकि अभिलेख पर यह साबित हो गया है कि वादियों के साथ ही वादियों के हित-पूर्वाधिकारी ने भी आरम्भ से ही विवादित भूमि में अपने अधिकारों का त्यजन कर दिया था । श्री चौधरी ने यह भी दलील दी कि वादपत्र के परिशीलन से यह सुझाव मिलता है कि वाद पूर्णतया परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित था क्योंकि स्वीकृततः, वर्ष 1983-84 के लिए जमाबंदी में परिवर्तन, यदि कोई हो, वर्ष 1983-84 में किया गया था, जबकि वाद वर्ष 1995 में फाइल किया गया था और इस प्रकार, परिसीमा अवधि के आधार पर वाद खारिज कर दिया जाना चाहिए ।

12. अपने पूर्वोक्त तर्कों को सिद्ध करने के लिए श्री चौधरी ने इस न्यायालय का ध्यान प्रदर्श डी-1, प्रदर्श डी-2 और प्रदर्श डी-3 की ओर दिलाया जिनमें प्रतिवादी तुलसी राम, गल्ला बटाई (किराया) के संदाय पर अभिधृति अभिधारी के रूप में अभिलिखित किया गया था । उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए, 2006 की सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 975 के साथ उपाबंध प्रदर्श ए-1 और प्रदर्श ए-2 की ओर भी दिलाया, यह इंगित करने के लिए कि नामांतरण, भूमि सुधार अधिकारी, बिलासपुर के समक्ष फाइल तारीख 7 मई, 1976 के आवेदन सं. 52 के अनुसार मंजूर किया गया था जिसमें वादियों ने प्रतिवादी के पक्ष में अपने अभिधारण अधिकारों का त्यजन कर दिया था । श्री चौधरी ने यह भी दलील दी कि विद्वान् निचले न्यायालयों ने गलत तौर पर यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रतिवादी द्वारा यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कोई विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है कि किस प्रकार नामांतरण वर्ष 1981 में अनुप्रमाणित हुआ था और किस आधार पर यह नामांतरण अनुप्रमाणित हुआ था और राजस्व अभिलेखों में परिवर्तन किया गया था क्योंकि प्रविष्टियों में, यदि कोई की गई हों, राजस्व अभिलेखों में भूमि सुधार अधिकारी के समक्ष वादी द्वारा किए गए कथन के अनुसरण में परिवर्तन हुए थे, जैसा कि अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए आवेदन

के साथ फाइल उपाबंध ए-1 और ए-2 से स्पष्टतः उपदर्शित होता है । श्री चौधरी ने बलपूर्वक दलील दी कि विद्वान् निचले न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालने में गंभीर त्रुटि की है कि वाद परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित नहीं है क्योंकि अभिलेख पर यह सम्यक् रूप से साबित कर दिया गया है कि तुलसी राम के पक्ष में नामांतरण, भूमि राजस्व अधिकारी के तारीख 7 मई, 1976 के आदेशों के अनुसरण में कालम सं. 13 के अनुसार, तारीख 23 सितम्बर, 1981 को नामांतरण सं. 122 द्वारा अनुप्रमाणित हुआ था और भूमि प्रतिवादी सं. 2 क्रान्ति कुमार के पक्ष में पुनः समाहित हो गई थी । अपीलार्थी की ओर से यह दलील दी गई है कि चूंकि पुनः प्रवेश के आदेश को तारीख 7 मई, 1976 का आदेश पारित करते समय चुनौती नहीं दी गई थी जिसके द्वारा भूमि मूल स्वामी क्रान्ति कुमार, प्रतिवादी के पक्ष में पुनः प्रवेश करते हुए, अभिधृति के अधीन भूमि के बारे में एकमात्र अभिधारी के रूप में अभिलिखित हुआ था, वाद, यदि कोई हो, इस विलम्बित प्रक्रम पर निचले न्यायालयों द्वारा परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 100 के निबंधनों में ग्रहण नहीं किया जा सकता था, जो वाद, यदि कोई हो, संस्थित करने के लिए उपबंधित है, जो सक्षम प्राधिकारी द्वारा आदेश पारित करने की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर होता है । उन्होंने यह भी कथन किया कि जब तक सक्षम प्राधिकारी द्वारा आदेश को चुनौती नहीं दी जाती है या अपास्त नहीं किया जाता है तब तक वादियों को कोई अधिकार, जो भी हों, वर्तमान वाद फाइल करते हुए, संयुक्त अभिधृति का दावा करने के लिए नहीं था ।

13. अपीलार्थी-प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल श्री चौधरी ने दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय को अभिखंडित और अपास्त करने की प्रार्थना करते हुए, बलपूर्वक यह दलील दी कि विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालने में गंभीर त्रुटि की है कि एक अभिधारी, दूसरे अभिधारी के पक्ष में अपनी अभिधृति का त्यजन नहीं कर सकता था । पूर्वोक्त पृष्ठभूमि में, श्री चौधरी ने यह प्रार्थना की कि आवेदन, 2006 की सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 975 को मंजूर किया जा सकता था और उसके साथ उपाबंध दस्तावेज को साक्ष्य में लिया जा सकता था, जो वर्तमान सम्पूर्ण संविवाद को विनिश्चित करने में सहायक होता । श्री चौधरी के अनुसार, पूर्वोक्त आवेदन के साथ उपाबंध ए-1 और उपाबंध ए-2 के मूल परिशीलन से यह स्पष्टतः सुझाव मिलता है कि नामांतरण सं. 74, मूल स्वामी क्रान्ति कुमार के पक्ष में, भूमि के पुनः प्रवेश का आदेश करते

समय भूमि सुधार अधिकारी को प्रभावित किया था और पटवारी, पटवर सर्किल धौन कोथी, तहसील सदर, जिला बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश ने वादियों का कथन अभिलिखित किया था जिसमें उन्होंने स्वयमेव यह कथन किया था कि प्रश्नगत भूमि प्रतिवादी तुलसी राम द्वारा जोती जाती है और इस प्रकार, उसका नाम जोत में अभिलिखित हो सकता है और उन्हें इसके बारे में कोई आपत्ति नहीं होगी ।

14. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्री अजय कुमार सूद, जिन्होंने विद्वान् अधिवक्ता श्री धीरज वशिष्ठ की सम्यक् रूप से सहायता की थी, ने दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों और डिक्रियों का समर्थन किया है । श्री सूद ने यह जोरदार तर्क दिया कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित निर्णयों और डिक्रियों के परिशीलन से यह सुझाव मिलता है कि निचले न्यायालयों ने मामले के प्रत्येक पहलू पर अति सावधानीपूर्वक विचार किया है और इस प्रकार, निचले न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्रियों में मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में इस न्यायालय का कोई हस्तक्षेप, जो भी हो, अपेक्षित नहीं है । उन्होंने यह भी दलील दी कि इस न्यायालय के पास साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन करने की अत्यधिक सीमित शक्ति होती है जब दोनों निचले न्यायालयों ने तथ्यों के साथ ही विधि पर समवर्ती निष्कर्ष निकाले हों । इस संबंध में, पूर्वोक्त अभिवाक् को सिद्ध करने के लिए उन्होंने **लक्ष्मीदेवम्मा और अन्य** बनाम **रंगनाथ और अन्य**[1] वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का अवलंब लिया है ।

15. उपर्युक्त के अलावा, श्री सूद ने यह जोरदार तर्क दिया कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता और कमी नहीं है क्योंकि अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्यों के मूल परिशीलन से यह स्पष्टतः सुझाव मिलता है कि वादियों और प्रतिवादी के हित-पूर्वाधिकारी, आरम्भ से ही वाद भूमि के संयुक्त कब्जे में थे और किसी भी समय पर वादियों ने प्रतिवादी के पक्ष में अपने अभिधारण अधिकारों का त्यजन नहीं किया था । अपने पूर्वोक्त तर्कों को सिद्ध करने के लिए, उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान वर्ष 1971-72 के लिए "मिसल हैकियत बंदोबस्त जादीद" की प्रति प्रदर्श पी-2 की ओर दिलाया है जिसमें वर्तमान खसरा सं. में समाविष्ट 10.11 बीघा भूमि देवी राम और रतन लाल के नाम स्वामियों

[1] (2015) 4 एस. सी. सी. 264.

के रूप में प्रविष्ट हैं और कब्जा कालम में श्री तुलसी राम, प्रतिवादी बाजा राम, वादी सं. 2 और 3 का पिता और श्री गोपाला राम, वादी सं. 1 के नाम 1/4, गल्ला बटाई के संदाय पर "गैर मारुसी" के रूप में अभिलिखित किया गया है । उन्होंने यह कथन किया कि प्रदर्श पी-2 को वाद के पक्षकारों के क्षेत्र में की जा रही नियमित बंदोबस्त व्यवस्था के दौरान तैयार किया गया था और वे अभिधृति के संयुक्त कब्जे में राजस्व कागजातों में सही ही कब्जे में अभिलिखित किए गए हैं । उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान वर्ष 1983-84 के लिए जमाबंदी की प्रतिलिपि प्रदर्श पी-1 की ओर दिलाया है जिसमें प्रतिवादी तुलसी राम को खसरा सं. 59/7 में 7.11 बीघा वाद भूमि के संबंध में प्रस्तुत 1/4 हिस्से के संदाय पर अधिभोगी अभिधृति के रूप में दर्शित किया गया है । उन्होंने यह भी तर्क दिया कि संबंधित पक्षकारों, विनिर्दिष्टतया प्रतिवादी द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के परिशीलन से कहीं भी यह सुझाव नहीं मिलता है कि प्रतिवादी किसी भी समय पर निचले न्यायालयों में ऐसा कोई विश्वसनीय साक्ष्य देने में समर्थ नहीं हुआ था कि जिसके आधार पर वादियों के नाम, नामांतरण अनुप्रमाणित करते समय प्रतिवादी के साथ संयुक्त अभिधृति अभिधारी के रूप में हटा दिया गया था । उन्होंने यह बलपूर्वक दलील दी कि प्रदर्श पी-2 से प्रदर्श पी-9 के मूल परिशीलन से यह स्पष्टतः सुझाव मिलता है कि वादियों के साथ प्रतिवादी गल्ला बटाई का संदाय करने पर "गैर मारुसी" के रूप में प्रविष्ट किए गए थे । श्री सूद ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है जिसमें विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि किसी भी समय पर, नामांतरण सं. 74 के अनुप्रमाणन के बारे में प्रत्याख्यान को प्रतिवादी द्वारा तर्कपूर्ण और विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत करके साबित किया जा सकता था, और इस प्रकार, श्री सूद ने बलपूर्वक यह दलील दी कि चूंकि प्रतिवादी तर्कपूर्ण और विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा अभिलेख पर यह साबित करने में असफल रहा है कि नामांतरण सं. 74 उस सुसंगत समय पर विधि के अनुसरण में किया गया था, इसलिए, दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय में कोई अवैधता और कमी नहीं पाई जा सकती है । उन्होंने यह भी दलील दी कि किसी भी समय पर प्रतिवादी नामांतरण सं. 74 से संबंधित अभिलेख उपलब्ध करा सकता था जिसमें भूमि सुधार अधिकारी ने वादियों द्वारा अभिकथित तौर पर दिए गए कथनों के आधार पर अभिकथित तौर पर नामांतरण सं. 74 प्रविष्ट किया था । श्री सूद ने अपीलार्थी/आवेदक द्वारा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए फाइल आवेदन को नामंजूर करने की प्रार्थना करते हुए, यह कथन किया है कि कोई आवेदन, यदि कोई हो, इस विलम्बित प्रक्रम पर मंजूर करने से निचले न्यायालयों द्वारा दिए गए समादेश की अवहेलना होती है जो साक्ष्य के साथ ही विधि के सही मूल्यांकन पर प्रकटतः आधारित है । श्री सूद ने अपने तर्कों के सार में, वर्तमान अपील के साथ ही अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए आवेदन को खारिज करने की प्रार्थना की, यह कथन करते हुए कि हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 की धारा 31 के निबंधनों में अभिधारी या भूमि स्वामियों के पक्ष में अभिधारी द्वारा कोई भी अभिधृति त्यजन नहीं की जा सकती है और इस प्रकार, अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए अपीलार्थी/आवेदक द्वारा फाइल आवेदन के साथ उपाबंध दस्तावेजों, यदि कोई हो, का कोई परिणाम नहीं होता है और इसे दोनों निचले न्यायालयों के समक्ष प्रस्तुत करने में लोप करने के पश्चात् इस द्वितीय अपील के प्रक्रम पर अवलंब लेने के लिए मंजूर नहीं किया जा सकता है ।

16. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और मामले के अभिलेखों का परिशीलन किया ।

17. चूंकि, इस न्यायालय ने 2006 की सिविल प्रकीर्ण सं. 975 के अधीन आवेदन को ग्रहण करते समय, तारीख 20 जुलाई, 2007 के आदेश द्वारा यह आदेशित किया था अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए आवेदन पर मुख्य अपील की सुनवाई करते समय विचार किया जाएगा, यह न्याय के हित में समुचित होगा, यदि इसे मामले के गुणागुणों का उल्लेख करने के पूर्व प्रथम प्रेरणा पर ही विचार में लिया जाता है ।

18. अभिलेख पर दस्तावेज अर्थात् तारीख 23 सितम्बर, 1981 को विनिश्चित नामांतरण सं. 74 की प्रतिलिपि और वर्ष 1972-73 के लिए रपट रोजनामचा की प्रमाणित प्रतिलिपि और पूर्वोक्त दस्तावेजों को अभिलेख पर साबित करने के लिए अतिरिक्त दस्तावेज प्रस्तुत करने की अनुज्ञा के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 के साथ पठित आदेश 41 के नियम 27 के अधीन पूर्वोक्त आवेदन फाइल किया गया था । वर्तमान आवेदन में आवेदक/अपीलार्थी ने यह कथन किया है कि मुकदमेबाजी के लम्बित रहने के दौरान राजस्व अभिलेखों, जिसके द्वारा

तत्कालीन भूमि सुधार अधिकारी ने नामांतरण सं. 74 द्वारा सांपत्तिक अधिकारों को प्रदत्त किया था और रपट रोजनामचा जिसके द्वारा वादियों ने अभिधृति के अपने अधिकारों को परित्यक्त किया था, को प्रस्तुत नहीं किया जा सका था । आवेदक/अपीलार्थी ने यह भी कथन किया है कि उन्होंने दस्तावेजों से संबंधित द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुज्ञा मंजूर करने के लिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 के अधीन एक आवेदन फाइल किया था और विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 13 मार्च, 2001 के आदेश द्वारा दोनों पक्षकारों के साक्ष्य अभिलिखित किए थे जिसे दोनों पक्षकारों का साक्ष्य अभिलिखित करने के पश्चात् विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया था । उपर्युक्त निर्दिष्ट आवेदन के परिशीलन से यह सुझाव मिलता है कि चूंकि तारीख 13 मार्च, 2001 के आदेश के अनुसरण में, प्रतिवादी द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत द्वितीयक साक्ष्य को वादी द्वारा प्रतिवादी के पक्ष में अभिधृति के त्यजन के साथ ही नामांतरण सं. 74 के बारे में प्रतिवादी के अभिवाक् पर विचार करते समय, दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पर्याप्त अभिनिर्धारित ही किया गया था, इसलिए, आवेदक/अपीलार्थी को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन आवेदन के साथ उपाबंध ए-1 और ए-2 के प्ररूप में नामांतरण सं. 74 की प्रमाणित प्रतियों के साथ ही रपट रोजनामचा को अभिलेख पर प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था । आवेदक/अपीलार्थी ने यह भी कथन किया है कि पूर्वोक्त दस्तावेजों को सम्यक् तत्परता के बावजूद उनके द्वारा पूर्ववर्ती में फाइल नहीं किया जा सका था ।

19. अनावेदक द्वारा प्रत्युत्तर के माध्यम से, आवेदक/अपीलार्थी की ओर से अभिलेख पर अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए की गई प्रार्थना का विरोध किया गया, यह कथन करते हुए कि संपूर्ण विवाद्यक, जिस पर अभिकथित अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की ईप्सा की गई है, पर विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अपने निर्णय के पैरा 14 और 15 पर विचार किया गया है और इस प्रकार, पूर्वोक्त दस्तावेजों को अभिलेख पर प्रस्तुत करने की कोई अपेक्षा नहीं है । अनावेदक ने यह भी कथन किया कि आवेदक/अपीलार्थी द्वारा ली गई प्रतिरक्षा मिथ्या और आधारहीन थी और विद्वान् निचले न्यायालयों ने पहले ही राजस्व प्रविष्टियों अर्थात् नामांतरण सं. 74 के विवाद्यक पर अपने निष्कर्ष निकाल चुके हैं । अनावेदक ने यह भी कथन किया कि आवेदन का प्रयोजन मामले की कमी को पूरा करना है और आवेदक/अपीलार्थी की ओर से पूर्णतया तत्परता का अभाव है और इस

प्रकार, वर्तमान आवेदन, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के उप-नियम 1 के खंड (कक) के निबंधनों में खारिज होने योग्य है ।

20. पूर्वोक्त पृष्ठभूमि में अनावेदक ने आवेदन को गलत, मिथ्या और आधारहीन होने के नाते खारिज करने की ईप्सा की है । अनावेदक/प्रतिवादी ने यह भी कथन किया है कि वर्तमान आवेदन, अपीलार्थी/आवेदक की ओर से मामले को पुनः खोलने का एक प्रयास है । अनावेदक/प्रतिवादी ने यह भी कथन किया है कि जब वाद का आधार ही अनन्य अभिधारी के रूप में अपीलार्थी/आवेदक के हित-पूर्वाधिकारी श्री तुलसी राम के पक्ष में अभिलिखित राजस्व प्रविष्टियां गलत, अवैध, अकृत और शून्य हैं और वादी ऐसी काल्पनिक, कपटपूर्ण और राजस्व अधिकारियों के साथ दुरभिसंधि में तैयार अवैध प्रविष्टियों से आबद्ध नहीं है, आवेदक/अपीलार्थी को लिखित कथन फाइल करते समय, अभिलेख पर राजस्व अभिलेख, यदि कोई हो, को फाइल करना चाहिए था । अनावेदक ने यह भी कथन किया कि चूंकि दोनों निचले न्यायालयों ने साक्ष्यों का मूल्यांकन करने के पश्चात् विवाद्यक पर अपने निष्कर्ष दे दिए हैं तो अब आवेदक/अपीलार्थी के इस आवेदन को विद्वान् निचले न्यायालयों के निष्कर्षों की अवज्ञा करते हुए मंजूर नहीं किया जा सकता है और इस प्रकार, दस्तावेजें, मामले का अवधारण करने के लिए न तो सुसंगत हैं, न ही आवश्यक हैं और इस प्रकार, आवेदन खर्चों के साथ खारिज होने योग्य है ।

21. आवेदक/अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने **वाडी** बनाम **अनावेदक/प्रतिवादी**[1] वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है, जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "5. अब यह स्पष्ट है कि नियम 27, अपील न्यायालय में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के बारे में विचार करता है । उप-नियम (1) में समाविष्ट साधारण सिद्धांत यह है कि अपील के पक्षकार मामले की कमी या रिक्तता को पूरा करने के लिए अपील न्यायालय में अतिरिक्त साक्ष्य (मौखिक या दस्तावेजी) प्रस्तुत करने के हकदार नहीं हैं । इस साधारण सिद्धांत का अपवाद खंड (क), खंड (कक) और (ख) के अधीन परिगणित है । हमारा यहां संबंध खंड (ख) से है,

[1] (2015) 1 एस. सी. सी. 677.

जो समर्थकारी उपबंध है । इसमें यह उपबंध है कि यदि अपील न्यायालय किसी दस्तावेज के पेश किए जाने की या किसी साक्षी की परीक्षा किए जाने की अपेक्षा या तो स्वयं निर्णय सुनाने के समर्थ होने के लिए या किसी अन्य सारवान् हेतुक के लिए करे तो अपील न्यायालय ऐसे साक्ष्य का लिया जाना या दस्तावेज का पेश किया जाना या साक्षी की परीक्षा का किया जाना अनुज्ञात कर सकेगा । अपील न्यायालय की अपेक्षा या आवश्यकता विवेक में यह धारण करते हुए उद्भूत होता है कि न्याय का हित सर्वोपरि है । यदि यह महसूस करता है कि ऐसे साक्ष्य के अभाव में निर्णय सुनाने का परिणाम त्रुटिपूर्ण विनिश्चय होगा और प्रभावी निर्णय सुनाने के लिए ऐसे साक्ष्य की स्वीकृति आवश्यक है, खंड (ख) ऐसा अनुक्रम स्वीकार करने के लिए समर्थ बनाता है । खंड (ख) का आह्वान, इसके लिए पक्षकारों की सतर्कता या उपेक्षा पर निर्भर नहीं करता है यह उनके अभिप्राय का नहीं होता है । अपीलार्थी को इसका अवलंब लेना होता है जब अभिलेख पर के सामग्रियों पर विचार करते समय यह महसूस होता है कि अतिरिक्त साक्ष्य की स्वीकृति, मामले में समाधानप्रद निर्णय सुनाने के लिए आवश्यक है ।"

22. **कर्नाटक राज्य और एक अन्य** बनाम **के. सी. सुब्रमणियम और अन्य**[1] वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का सुसंगत पैरा 4 और 5 निम्नलिखित प्रस्तुत है :–

"4. तथापि, हम इस तर्क से प्रभावित होना महसूस नहीं करते हैं और इसे आदेश 41 के नियम 27(1)(कक) को ध्यान में रखते हुए नामंजूर करना समुचित समझते हैं, जिसे स्पष्टतः निम्नलिखित कथित किया जाता है –

'27(1)(क) ....

(कक) अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की ईप्सा करने वाले पक्षकार को यह सिद्ध करना होता है कि वह सम्यक् तत्परता का प्रयोग करने के बावजूद ऐसे साक्ष्य की जानकारी नहीं रखता था या उसे उस समय पेश नहीं कर सकता था जब वह डिक्री पारित की गई थी जिसके विरुद्ध अपील की गई है, अथवा

---

[1] (2014) 13 एस. सी. सी. 468.

(ख) ....

इस उपबंध के परिशीलन पर यह असंदिग्ध तौर पर स्पष्ट होता है कि पक्षकार को अपीली प्रक्रम पर अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की ईप्सा करने की स्वतंत्रता है किन्तु उसकी अनुज्ञा तभी दी जा सकती है यदि ईप्सित साक्ष्य, सम्यक् तत्परता का प्रयोग करने के बावजूद विचारण के प्रक्रम पर प्रस्तुत नहीं किया जा सका था और यह कि साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया जा सका था क्योंकि यह उसकी जानकारी में नहीं था और अतएव, इसे अपीली फोरम के समक्ष अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत किया जाना समुचित था ।'

5. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि अपील के प्रक्रम पर अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए पक्षकार को मंजूर करने के पूर्व कई पूर्ववर्ती शर्तें जो विनिर्दिष्टतः समाविष्ट शर्तें इस प्रभाव की हैं कि पक्षकार सम्यक् तत्परता के बावजूद साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सका था और इसे उसकी कृपा या उसकी सुखद इच्छा पर मंजूर नहीं किया जा सकता है ।"

23. इस संबंध में, **भारत संघ** बनाम **इब्राहिम उद्दीन और एक अन्य**[1] वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का भी अवलंब लिया जा सकता है । निर्णय का सुसंगत पैरा 36 से 49 नीचे प्रस्तुत है :–

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908, आदेश 41, नियम 27

"36. साधारण सिद्धांत यह है कि अपील न्यायालय को, निचले न्यायालय के अभिलेख के परे नहीं जाना चाहिए और अपील में कोई साक्ष्य नहीं ले सकता है । तथापि, अपवाद के रूप में, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 का नियम 27, अपील न्यायालय को अपवादित परिस्थितियों में, अतिरिक्त साक्ष्य लेने के लिए समर्थ बनाता है । अपील न्यायालय, अतिरिक्त साक्ष्य पेश करने की मात्र तभी अनुज्ञा दे सकता है यदि इस नियम में अधिकथित शर्तें मौजूद पाई जाती हैं । पक्षकार ऐसे साक्ष्य की स्वीकृति के लिए अधिकारपूर्वक हकदार नहीं हैं । इस प्रकार, उपबंध तब लागू नहीं होता है जब

---

[1] (2012) 8 एस. सी. सी. 148.

अभिलेख पर के साक्ष्य के आधार पर अपील न्यायालय समाधानप्रद निर्णय उद्घोषित कर सकता है । मामला सम्पूर्णतः न्यायालय के विवेकाधिकार में आता है और इसका प्रयोग कम किया जाता है । ऐसा विवेकाधिकार स्वयं नियम में विनिर्दिष्ट परिसीमा द्वारा सीमित मात्र न्यायिक विवेकाधिकार है [देखें – के. वेंकटरमैय्या **बनाम** ए. सीताराम रेड्डी और अन्य (ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1526), नगर निगम, ग्रेटर बाम्बे **बनाम** लाला पंचम् और अन्य (ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1008), सून्दा राम और एक अन्य **बनाम** रामेश्वर लाल और एक अन्य (ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 479) और सैय्यद अब्दुल खादर **बनाम** रामी रेड्डी और अन्य (ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 553)]।

37. अपील न्यायालय को अपील में साधारणतया नया मुद्दा उद्भूत करने में पक्षकार को समर्थ बनाने के अनुक्रम में नया साक्ष्य प्रस्तुत करना मंजूर नहीं करना चाहिए । इसी प्रकार, जहां कतिपय मुद्दों को साबित करने का भार जिस पक्षकार पर होता है वह अपने भार का निर्वहन करने में असफल रहता है तो वह साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए नया अवसर पाने का हकदार नहीं होता है क्योंकि न्यायालय ऐसे मामलों में, उसके विरुद्ध उद्घोषित करता है और उसे निर्णय उद्घोषित करने में समर्थ बनाने के लिए कोई अतिरिक्त साक्ष्य अपेक्षित नहीं होता है [देखें – हाजी मोहम्मद इशाक **बनाम** मोहम्मद इकबाल और मोहम्मद अली एण्ड कम्पनी (ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 798)] ।

38. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन अपील न्यायालय को यह शक्ति है कि वह दस्तावेज प्रस्तुत करने की मंजूरी दे सकता है और साक्षियों की परीक्षा कर सकता है । किन्तु, उक्त न्यायालय की अपेक्षाएं उन मामलों में सीमित होनी चाहिए जहां निर्णय उद्घोषित करने हेतु स्वयं निर्णय सुनाने के समर्थ होने के लिए ऐसे साक्ष्य प्राप्त करने आवश्यक हैं । यह उपबंध अपील न्यायालय को अपीली प्रक्रम पर नए साक्ष्य लेने के लिए हकदार नहीं बनाता है जहां ऐसे साक्ष्य के बिना भी मामले में निर्णय सुनाया जा सकता है । यह अपील न्यायालय को विशिष्ट तरीके से निर्णय सुनाने के प्रयोजन मात्र के लिए नए साक्ष्य लेने का हकदार नहीं बनाता है । दूसरे शब्दों में, यह अपील न्यायालय को साक्ष्य की कमी को दूर करने

मात्र के लिए ही अतिरिक्त साक्ष्य स्वीकार करने के लिए सशक्त करता है [देखें – ग्रेटर बाम्बे **बनाम** लाला पंचम् और अन्य (ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1008)] ।

39. अपील न्यायालय को निचले न्यायालय के समक्ष एक पक्षकार या दूसरे पक्षकार द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य को अनुपूरक में लेने का अधिकार नहीं है । अतएव, विचारण न्यायालय के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत नहीं करने के समाधानप्रद कारणों के अभाव में, अपील में अतिरिक्त साक्ष्य स्वीकार नहीं करना चाहिए, क्योंकि निचले न्यायालय में शिथिलता का दोषी पक्षकार उदारता का हकदार नहीं है जिसको कि इस नियम के अधीन आगे साक्ष्य प्रस्तुत करना मंजूर कर लिया जाए । इसलिए, एक पक्षकार जिसे निचले न्यायालय में कतिपय साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त अवसर मिला था किन्तु वह ऐसा करने में असफल रहा या उसने ऐसा करने का चुनाव नहीं किया तो उसे अपील में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करना स्वीकार नहीं किया जा सकता है [देखें – उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** मनबुधन लाल श्रीवास्तव (ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 912) और एस. राजगोपाल **बनाम** सी. एम. अरमुगम् और अन्य (ए. आई. आर. 1969 एस. सी. 101)] ।

40. पक्षकार की अनवधानता अथवा अन्तर्वलित विधिक विवाद्यक को समझने में उसकी असमर्थता अथवा प्लीडर की गलत सलाह अथवा प्लीडर की उपेक्षा अथवा वह पक्षकार दस्तावेज की महत्ता को महसूस नहीं करता था, से इस नियम के अर्थान्तर्गत 'सारवान् हेतुक' गठित नहीं होता है । मात्र यह तथ्य की कतिपय साक्ष्य महत्वपूर्ण हैं, यह स्वयं में अपील में उस साक्ष्य को स्वीकार करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है ।

41. शब्द 'किसी अन्य सारवान् हेतुक के लिए' को वाक्य के आरम्भ में शब्द 'अपेक्षित' के साथ पढ़ना चाहिए ताकि मात्र वहां जहां 'किसी अन्य सारवान् हेतुक के लिए' अपील न्यायालय अतिरिक्त साक्ष्य की अपेक्षा करता है वहां यह नियम लागू होगा अर्थात् जब निचले न्यायालय द्वारा लिया गया साक्ष्य इतना त्रुटिपूर्ण था कि अपील न्यायालय उसके आधार पर समाधानप्रद निर्णय पारित नहीं कर सकता है ।

42. जब कभी अपील न्यायालय अतिरिक्त साक्ष्य स्वीकार करता

है तो उसे ऐसा करने के लिए अपने कारणों को अभिलिखित करना चाहिए (उप-नियम 2) । यह एक हितकारी उपबंध है जो मुकदमेबाजी के विलम्बित प्रक्रम पर साक्ष्य के आसानी से प्राप्ति के विरुद्ध नियंत्रण के रूप में प्रवर्तित किया जा सके और कारणों के कथन में विश्वास और निष्क्रिय आक्षेप प्रकट होने चाहिएं । इस अपेक्षा का एक अन्य कारण यह है कि जहां विनिश्चय के विरुद्ध आगे अपील की जाती है, कारणों का अभिलेख, आगे अपील में न्यायालय के लिए इसे देखना लाभदायक और आवश्यक होगा, यदि इस नियम के अधीन विवेकाधिकार का निचले न्यायालय द्वारा समुचित तौर पर प्रयोग किया गया है । इसलिए, कारणों के अभिलेख में लोप करना एक गंभीर त्रुटि मानी जाएगी किन्तु यह उपबंध मात्र निदेशात्मक है न कि आज्ञापक, यदि ऐसे साक्ष्य की प्राप्ति को इस नियम के अधीन न्यायोचित ठहरा दिया जाता है ।

43. कारणों को पृथक् आदेश में अभिलिखित करने की आवश्यकता नहीं होती है परन्तु उन्हें अपील न्यायालय के निर्णय में ही समाहित होना चाहिए । मामले की विशिष्ट परिस्थितियों के प्रति मात्र निर्देश या मात्र कथन कि साक्ष्य निर्णय सुनाने के लिए आवश्यक है अथवा यह कि अतिरिक्त साक्ष्य न्याय के हित में स्वीकार किया जाना अपेक्षित है अथवा यह कि अतिरिक्त साक्ष्य की स्वीकृति के लिए की गई प्रार्थना को नामंजूर करने के लिए कोई कारण नहीं है, से कारणों को अभिलिखित करने की अपेक्षा का पर्याप्त अनुपालन नहीं होता है ।

44. यह सुस्थिर विधिक प्रतिपादना है कि न केवल प्रशासनिक आदेश अपितु न्यायिक आदेश भी इसे अभिलिखित करने में कारणों द्वारा समर्थित होना चाहिए । इस प्रकार, विवाद्यक को विनिश्चित करते समय न्यायालय अपने निष्कर्ष के लिए कारणों को देने के लिए आबद्ध है । न्यायालय का मामले का निपटारा करते समय, कारणों को अभिलिखित करने का कर्तव्य और बाध्यता है । न्यायिक फोरम द्वारा प्रमाणिक आदेश देते समय और न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करते समय, स्वयं द्वारा अपने कारणों को प्रकट करते हुए, और स्वच्छ न्यायिक प्रशासन के लिए कारण देते हुए, स्वच्छ व्यवस्था कायम रखने के लिए विनिश्चय को समुचित बनाना चाहिए और न्यायालय के समक्ष विवाद्यक को ध्यान में रखते हुए सम्यक् विवेक लागू करना

चाहिए और आवश्यक अपेक्षित नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का भी पालन करना चाहिए । कारण, प्रत्येक निष्कर्ष की धड़कन होती है । इससे आदेश में स्पष्टता आती है और इसके बिना आदेश निस्तेज हो जाता है । कारण, उद्देश्यपरक के साथ व्यक्तिपरक हो सकते हैं । कारणों के अभाव में, आदेश असमर्थनीय/अनुपयुक्त हो सकते हैं विशिष्टतया तब जब आदेश को आगे उच्चतर फोरम के समक्ष चुनौती दी जाती है । कारणों को अभिलिखित करना, नैसर्गिक न्याय का सिद्धांत है और प्रत्येक न्यायिक आदेश को लिखित में अभिलिखित कारणों द्वारा समर्थित होना चाहिए । यह विनिश्चय करने में पारदर्शिता और ऋजुता को सुनिश्चित करता है । व्यक्ति, जो प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है उसे यह जानकारी होनी चाहिए कि उसका आवेदन क्यों नामंजूर किया गया {देखें – उड़ीसा राज्य **बनाम** धनी राम लुहार (ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1794) उत्तरांचल राज्य **बनाम** सुनील कुमार सिंह नेगी [(2008) 11 एस. सी. सी. 205] विक्टोरिया मेमोरियल हाल **बनाम** हावड़ा गणतांत्रिक नागरिक समिति (ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 1285) और संत लाल गुप्ता **बनाम** माडर्न को-आपरेटिव ग्रुप हाउसिंग सोसायटी लिमिटेड [(2010) 13 एस. सी. सी. 336]} ।

45. सिटी इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट बोर्ड **बनाम** एच. नारायंनैय्या (ए. आई. आर. 1976 एस. सी. 2403) वाले मामले में, विवाद्यक पर विचार करते समय इस न्यायालय के 3 न्यायाधीशों के न्यायपीठ ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है –

> '28. हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय को यह दर्शित करने के लिए अपने कारणों को अभिलिखित करना चाहिए कि क्यों वह कुछ सारवान् कारणों के लिए ऐसे साक्ष्य को स्वीकार करना चाहता है और यदि वह इसे स्वीकार करना आवश्यक समझता है तो अपीलार्थी को अन्य साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए, इससे उद्भूत होने वाले किसी निष्कर्ष का खंडन करने के लिए अवसर प्रदान करना चाहिए ।'

इसी प्रकार का मत, इस न्यायालय द्वारा बसय्या आई. माथड **बनाम** रुद्रय्या एस. माथड (2008) 3 एस. सी. सी. 120 वाले मामले में दोहराया गया है ।

46. इस न्यायालय के सांविधानिक न्यायपीठ ने **के. वेंकटरमैय्या**, (उपर्युक्त) वाले मामले में इसी प्रकार के मुददे पर विचार करते हुए निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है –

> '13. यह अत्यधिक बांछनीय होता है कि अपील न्यायालयों को नियम के खंड (2) के उपबंधों की अनदेखी नहीं करनी चाहिए और अतिरिक्त साक्ष्य स्वीकार करने के लिए अपने कारणों को अभिलिखित करना चहिए ....। इसलिए, कारणों को अभिलिखित करने में लोप को एक गंभीर त्रुटि समझा जाना चाहिए । फिर भी हम स्वयं को यह समझने में असमर्थ पाते हैं कि यह उपबंध आज्ञापक है ।'

उक्त मामले में, न्यायालय ने मामले के अभिलेख की परीक्षा करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि अपील की लम्बे समय से सुनवाई हो रही थी और अभिलेख पर अतिरिक्त साक्ष्य लेने के लिए आवेदन अपील की अंतिम सुनवाई के दौरान फाइल किया था । ऐसी तथ्यात्मक परिस्थिति में ऐसे आवेदन को मंजूर करने का आदेश, कारणों की अपेक्षा के लिए दूषित नहीं होता है ।

47. जहां ईप्सित अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने से मामले के संदेह दूर होते हैं और साक्ष्य प्रत्यक्ष है और वाद में मुख्य विवाद्यक के लिए महत्वपूर्ण है और इससे स्पष्टतः न्याय का हित होता है तो यह आज्ञापक हो जाता है कि ऐसे आवेदन को अभिलेख पर रखने की अनुज्ञा दे दी जानी चाहिए ।

48. संक्षेप में, विवाद्यक पर यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि विलम्बित प्रक्रम पर अभिलेख पर अतिरिक्त साक्ष्य लेने के लिए आवेदन, अधिकारपूर्वक फाइल नहीं किया जा सकता है । न्यायालय ऐसे आवेदन पर परिस्थितियों के अनुसार विचार कर सकता है परन्तु इसे स्वयं कानूनी उपबंध में समाविष्ट पूर्व-अपेक्षित शर्तों के अधीन होना चाहिए । न्यायालय द्वारा प्रयोग किया जाने वाला विवेकाधिकार न्यायिक तौर पर मामले में अन्तर्वलित विवाद्यकों को संबंध में दस्तावेज के संगत में होना चाहिए और परिस्थितियों जिनके अधीन निचले न्यायालय में ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया जा सका और यह कि क्या आवेदक ने तत्परतापूर्वक निचले न्यायालय के समक्ष अपने मामले को अभियोजित किया था और यह कि क्या ऐसा साक्ष्य अपील

न्यायालय द्वारा निर्णय सुनाए जाने के लिए अपेक्षित है । यदि न्यायालय यह निष्कर्ष निकालता है कि फाइल आवेदन, कानूनी उपबंधों के पूरी तरह से भीतर है तो साक्ष्य को अभिलेख पर लिया जा सकता है । तथापि, न्यायालय को वह कारण अभिलिखित करना चाहिए कि किस आधार पर ऐसे आवेदन को मंजूर किया गया है । तथापि, आवेदन को विलम्बित प्रक्रम पर फाइल नहीं करना चाहिए ।

विचार का प्रक्रम

49. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन फाइल आवेदन पर गुणागुणों के आधार पर अपील की सुनवाई के समय विचार किया जाना चाहिए, यदि यह पाया जाता है कि क्या प्रस्तुत किए जाने के लिए ईप्सित दस्तावेज/और या साक्ष्य अन्तर्वलित विवाद्यकों के सुसंगत हैं । अतिरिक्त साक्ष्य की ग्राह्यता वर्तमान विवाद्यक की संगतता पर निर्भर नहीं करता है अथवा इस तथ्य पर कि क्या आवेदक को पूर्ववर्ती प्रक्रम पर ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए अवसर दिए गए थे अथवा नहीं, अपितु यह इस बात पर निर्भर करता है कि यह अपील न्यायालय को निर्णय सुनाने के लिए समर्थ बनाने में या अन्य सारवान् हेतुक के लिए समर्थ बनाने में ईप्सित साक्ष्य अपेक्षित है या नहीं । इसलिए, सही परीक्षण यह है कि अपील न्यायालय प्रस्तुत किए जाने वाले ईप्सित अतिरिक्त साक्ष्य पर विचार किए बिना स्वयं के समक्ष सामग्रियों के आधार पर निर्णय सुनाने के लिए समर्थ हैं । ऐसे अवसर मात्र तभी उद्भूत होते हैं यदि साक्ष्य की परीक्षा करने के पश्चात् न्यायालय यह निष्कर्ष निकालता है कि न्यायालय को कुछ अन्तर्निहित कमी या त्रुटि प्रकट होती है [देखें – अर्जन सिंह **बनाम** करतार सिंह और अन्य (ए. आई. आर. 1951 एस. सी. 203) और नाथा सिंह और अन्य **बनाम** वित्त आयुक्त, कर, पंजाब और अन्य (ए. आई. आर. 1976 एस. सी. 1053)] ।"

24. इसमें उपर्युक्त निर्दिष्ट आवेदन में अन्तर्विष्ट पूर्वोक्त प्रकथनों के परिशीलन से यह स्पष्टतः सुझाव मिलता है कि आवेदक/अपीलार्थी ने यह वर्णित करने के लिए उपाबंध ए-1 और उपाबंध ए-2 को अभिलेख पर रखने के लिए प्रार्थना की है कि वादियों ने प्रतिवादी अर्थात् तुलसी राम के पक्ष में अपने अभिधृति का त्यजन कर दिया था । पूर्वोक्त आवेदन के गुणागुणों का उल्लेख करने के पूर्व, हिमाचल प्रदेश भूमि सुधार अधिनियम,

1972 की धारा 31 के प्रति निर्दिष्ट करना समुचित होगा, जो त्यजन के बारे में विचार करता है :–

> "धारा 31. **त्यजन** – अभिधारी द्वारा भूमि स्वामी के पक्ष में अभिधृति का कोई त्यजन नहीं किया जाएगा । तथापि, यदि अभिधारी अपनी अभिधृति भूमि का स्वैच्छिक अभ्यर्पण करना चाहता है तो वह राज्य सरकार के पक्ष में होगा । राज्य सरकार विहित तरीके से त्यक्त भूमि में किसी उपयुक्त अभिधारी या भूमिहीन कृषक श्रमिक को प्रवेश कराने का अधिकार होगा ।"

25. पूर्वोक्त विधि के उपबंधों का मूल परिशीलन करने से यह स्पष्टतः सुझाव मिलता है कि अभिधारी द्वारा भूमि स्वामी के पक्ष में अभिधृति का कोई त्यजन नहीं किया जा सकता है । इस पूर्वोक्त उपबंधों में यह भी उपबंधित है कि यदि अभिधारी अपनी अभिधृति भूमि का स्वैच्छिक अभ्यर्पण करना चाहता है तो वह राज्य सरकार के पक्ष में कर सकता है और इसके पश्चात्, राज्य सरकार को विहित तरीके से त्यक्त भूमि में किसी उपयुक्त अभिधारी या भूमिहीन कृषक श्रमिक को प्रवेश कराने का अधिकार होगा ।

26. पूर्वोक्त विधि के उपबंधों की सूक्ष्म संवीक्षा करने से यह स्पष्टतः सुझाव मिलता है कि अभिधृति, यदि कोई हो, का त्यजन सरकार के पक्ष में ही हो सकता है न कि किसी व्यक्ति के पक्ष में । यद्यपि, पूर्वोक्त विधि के उपबंधों के प्रथमदृष्ट्या परिशीलन से यह सुझाव मिलता है कि अभिधारी द्वारा भूमि स्वामी के पक्ष में अभिधृति का त्यजन नहीं किया जा सकता है किन्तु पूर्वोक्त विधि के उपबंध के द्वितीय भाग के परिशीलन से यह स्पष्ट सुझाव मिलता है कि अभिधृति, यदि कोई हो, का राज्य सरकार के पक्ष में ही अभ्यर्पण किया जा सकता है, इसका अभिप्राय यह है कि अभिधारी द्वारा सह-अभिधारी/संयुक्त अभिधारी के पक्ष में अभिधृति का अभ्यर्पण नहीं किया जा सकता है । यह न्यायालय, इसमें उपर्युक्त रूप में प्रस्तुत, अधिनियम, 1972 की धारा 31 के विधि के पूर्वोक्त उपबंधों का परिशीलन करने के पश्चात् इस बात से पूर्णतया संतुष्ट है कि राज्य सरकार के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में अभिधृति का कोई त्यजन नहीं हो सकता है और इस प्रकार, इस न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए इन समवर्ती निष्कर्षों से असहमत होने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है कि एक अभिधारी द्वारा अन्य अभिधारी के पक्ष में अभिधृति का त्यजन नहीं

किया जा सकता है । उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय को उपाबंध ए-1 और उपाबंध ए-2 को अभिलेख पर रखने के लिए अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए आवेदन मंजूर करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है जिसके द्वारा अभिकथित तौर पर वादियों, जो स्वीकृततः प्रतिवादी के साथ संयुक्त अभिधारी हैं, ने प्रतिवादी तुलसी राम के पक्ष में अपनी अभिधृति का त्यजन किया था ।

27. चूंकि, उपर्युक्त निर्दिष्ट अधिनियम, 1972 की धारा 31 के अधीन विनिर्दिष्ट वर्जन अन्तर्विष्ट है इसलिए, वादी संयुक्त अभिधारी होने के नाते उस प्रतिवादी के पक्ष में अभिधृति का त्यजन नहीं कर सकता है जो वादियों के साथ संयुक्त अभिधारी है और इस प्रकार कोई फायदा, यदि कोई हो, अपने इस दावे को सिद्ध करने के लिए पूर्वोक्त दस्तावेजों को अभिलेख पर रखते हुए, आवेदक/अपीलार्थी द्वारा नहीं उठाया जा सकता है कि अभिधृति का नामांतरण सं. 74 के अनुप्रमाणन के समय पर वादी द्वारा त्यजन कर दिया गया था । चूंकि, इस न्यायालय का यह मत है कि अभिलेख पर प्रस्तुत करने के लिए आशयित दस्तावेजों का, अधिनियम, 1972 की धारा 31 के निबंधनों से कोई सुसंगतता नहीं है, इसलिए, अपीलार्थी/आवेदक के विद्वान् काउंसेल द्वारा इसमें उपर्युक्त निर्दिष्ट निर्णय, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होते हैं । तद्नुसार, वर्तमान आवेदन खारिज किया जाता है ।

28. अब, यह न्यायालय इसमें उपर्युक्त निर्दिष्ट विधि के सारवान् प्रश्नों को विनिश्चित करने की कार्यवाही करेगा ।

29. विधि का सारवान् प्रश्न सं. 1 के परिशीलन, जिसके द्वारा यह न्यायालय यह विनिश्चित करने के लिए आबद्ध है कि "क्या विद्वान् निचले न्यायालयों के निष्कर्ष, तारीख 13 मार्च, 2001 को विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 के अधीन आवेदन मंजूर करने के अनुसरण में प्रस्तुत साक्ष्य पर विचार नहीं करने के कारण दूषित है" से स्पष्टतः यह सुझाव मिलता है कि इस प्रश्न पर और अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है, विनिर्दिष्टया, हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 की धारा 31 को ध्यान में रखते हुए, जो अभिधृति के त्यजन के बारे में विचार करता है । जैसा कि अभिवचनों के साथ ही आक्षेपित निर्णय से यह स्पष्टतः प्रकट होता है कि अपीलार्थी/प्रतिवादी ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 के

अधीन द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करने के आशय से आवेदन फाइल किया यह साबित करने के लिए कि नामांतरण सं. 74 के अनुप्रमाणन के समय पर वादियों ने अपने अभिधृति अधिकारों को प्रतिवादी श्री तुलसी राम के पक्ष में त्यक्त कर दिया था । यद्यपि, विद्वान् विचारण न्यायालय ने पूर्वोक्त आवेदन को मंजूर करने के पश्चात् द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करना मंजूर कर लिया था किन्तु अभिलेख पर प्रस्तुत द्वितीयक साक्ष्य से संतुष्ट नहीं होने के नाते और विश्वसनीय नहीं मानते हुए, प्रतिवादी द्वारा उद्भूत अभिधृति के त्यजन के अभिवाक् को नामंजूर कर दिया था । किन्तु, अब इस न्यायालय को अधिनियम, 1972 की धारा 31, जिस पर अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए आवेदन पर विचार करते समय इस न्यायालय ने विस्तारपूर्वक विचार किया है, का परिशीलन करने के पश्चात् यह पूर्णतः विश्वास हो गया है कि वादी का संयुक्त अभिधारी होने के नाते राज्य सरकार के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में अभिधृति का त्यजन/अभ्यर्पण करने का कोई अधिकार, जो भी हो, नहीं था । वर्तमान मामले में, चूंकि प्रतिवादी का भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 के अधीन द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करने का मात्र आशय नामांतरण सं. 74 के अनुप्रमाणन को साबित करने का था, यह वर्णित करते हुए कि वादी ने प्रतिवादी के पक्ष में अभिधृति का त्यजन कर दिया था, विद्वान् दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत द्वितीयक साक्ष्य, विनिर्दिष्टतः अधिनियम, 1972 की धारा 31, जिसमें अभिधारी द्वारा अभिधृति का त्यजन, यदि कोई हो, का राज्य सरकार के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में पूर्णतः वर्जित है, को ध्यान में रखते हुए, पर विचार करते समय पारित निर्णयों में कोई अवैधता और कमी, यदि कोई हो, नहीं हो सकती है । तद्नुसार, सारवान् प्रश्न सं. 1 का उत्तर दिया जाता है ।

30. इसी प्रकार, विधि का सारवान् प्रश्न सं. 2 पर भी विद्वान् निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष इस प्रश्न से संबंधित है कि प्रत्यर्थी-वादी द्वारा प्रतिवादी-अपीलार्थी के पक्ष में किए गए त्यजन का कोई मूल्य नहीं है क्योंकि इसे हिमाचल प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1954 की धारा 38 के उपबंधों की अवहेलना करते हुए, रजिस्ट्रीकृत नहीं हुआ था । इसमें उपर्युक्त, अधिनियम, 1972 की धारा 31 के निबंधनों में अभिधारी द्वारा त्यजन, यदि कोई हो, के बारे में सविस्तार चर्चा को ध्यान में रखते हुए, पूर्वोक्त प्रश्न पर और अधिक चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है, विनिर्दिष्टतया, जब इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि

अभिधारी/संयुक्त अभिधारी को राज्य सरकार के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में अभिधृति का त्यजन करने की कोई शक्ति नहीं है । अतएव, अधिनियम, 1972 की धारा 31 को ध्यान में रखते हुए, प्रतिवादी-अपीलार्थी के पक्ष में प्रत्यर्थी-वादी द्वारा किए गए रजिस्ट्रीकरण और त्यजन के बारे में, निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों, यदि कोई हो, की सत्यता की जांच करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

31. अब, प्रश्न जो विनिश्चय करने के लिए शेष रह जाता है वह प्रश्न वाद ग्रहण करने की सिविल न्यायालय की अधिकारिता के बारे में है । स्वीकृततः, वादियों ने वर्तमान वाद के माध्यम से घोषणा और स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश तथा वैकल्पिक रूप में, इसमें उपर्युक्त दिए गए वर्णन के अनुसार, 7.11 बीघा भूमि प्रतिवादी के साथ संयुक्त अभिधारी के रूप में स्वयमेव दावा करने की ईप्सा की है । पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत अभिवचनों के साथ ही साक्ष्यों के मूल परिशीलन से कहीं भी यह सुझाव नहीं मिलता है कि भूमि स्वामी और अभिधारी के बीच विवाद्यक, यदि कोई हो, भूमि सुधार अधिनियम, 1972 की धारा 100 के अधीन साम्पत्तिक अधिकारों के कब्जे या प्रदत्त करने के बारे में रहा है, बजाय इसके, अभिलेख पर प्रस्तुत अभिलेखों के साथ ही साक्ष्यों के ध्यानपूर्वक परिशीलन से यह सुझाव मिलता है कि वादियों ने यह घोषणा करने की डिक्री की ईप्सा की है कि वे प्रतिवादी के साथ अभिधारी के रूप में वाद भूमि के संयुक्त कब्जे में हैं और राजस्व प्रविष्टियां, जो प्रतिवादी को अभिधृति में भूमि के बारे में, एकमात्र अभिधारी के रूप में दर्शित करती हैं, को अकृत और शून्य घोषित किया जा सकता है और इस प्रकार, यह न्यायालय पूर्वोक्त इस दलील को स्वीकार करने में कठिनाई महसूस करता है कि सिविल न्यायालय को कोई अधिकारिता नहीं थी । अभिलेखों से यह प्रकट होता है कि अपीलार्थी/प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल ने अधिकारिता का अभिवाक् उद्भूत करते समय हमारा ध्यान, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा 1988 की नियमित द्वितीय अपील सं. 338, चुनिया देवी बनाम जिन्दू राम वाले मामले में, पारित निर्णय की ओर दिलाया है किन्तु, यह वर्तमान मामले में लागू नहीं हो सकता है क्योंकि इस मामले में भूमि स्वामी और अभिधारी के बीच साम्पत्तिक अधिकारों को प्रदत्त करने के बारे में कोई विवाद्यक नहीं है, जैसा कि उपर्युक्त मत व्यक्त किया गया है, इसके बजाय वादियों ने प्रतिवादी के साथ संयुक्त अभिधृति होने का स्वयं दावा करते हुए घोषणा करने और अभिधृति के अधीन भूमि के संयुक्त कब्जे में जमाबंदियों में उन्हें निरन्तर दर्शित करते हुए विश्वसनीय साक्ष्य अभिलेख पर रखने के लिए वाद

फाइल किया है । वर्तमान वाद के माध्यम से, वादी ने मात्र उस राजस्व अभिलेख में सुधार की ईप्सा की है जिसे अभिकथित तौर पर प्रतिवादी ने राजस्व कर्मचारियों की सहायता से परिवर्तित कर दिया था जिसके द्वारा राजस्व प्राधिकारियों ने प्रतिवादियों के नाम को हटाते हुए प्रतिवादी सं. 1 को अभिधृति भूमि में एकमात्र अनन्य अभिधारी के रूप में प्रविष्ट कर लिया था । इसके अतिरिक्त, प्रतिवादी ने लिखित कथन फाइल करने के साथ ही सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए आवेदन फाइल करते हुए यह वर्णित करने का प्रयास किया है कि उसने हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 की धारा 4 के निबंधनों में साम्पत्तिक अधिकारों को प्रदत्त करने के माध्यम से वाद भूमि के बारे में स्वामी की प्रास्थिति अर्जित कर ली है । किन्तु, आश्चर्यजनक तौर पर, पक्षकारों में से किसी भी पक्षकार द्वारा अभिलेख पर ऐसा कोई मौखिक या प्रत्यक्ष साक्ष्य यह साबित करने के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया है कि प्रश्नगत वाद भूमि, साम्पत्तिक अधिकारों को प्रदत्त करने के माध्यम से उनमें निहित हो गई है, इसका अभिप्राय यह है कि वाद फाइल करने के समय पर पक्षकारों की प्रास्थिति वाद भूमि के ऊपर मात्र अभिधारी के रूप में थी और इस प्रकार, इस न्यायालय को अपीलार्थी/प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई इस दलील में कोई बल नहीं मिलता है कि हिमाचल प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1954 के अधीन सिविल न्यायालय को कोई वाद ग्रहण करने से विनिर्दिष्टतया वर्जित किया गया है ।

32. इस न्यायालय को निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों में कोई अनियमितता और कमी, यदि कोई हो, नहीं दिखाई देती है बजाय इसके ये अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के सही मूल्यांकन पर आधारित हैं । इस न्यायालय का यह पूर्णतया समाधान है कि दोनों निचले न्यायालयों ने मामले के प्रत्येक पहलू पर अतिसावधानीपूर्वक विचार किया है और वर्तमान मामले में, हस्तक्षेप, जो भी हो, करने का कारण नहीं बनता है । चूंकि, दोनों निचले न्यायालयों ने समवर्ती निष्कर्ष निकाले हैं, जो अन्यथा भी साक्ष्यों के समुचित मूल्यांकन पर आधारित प्रतीत होते हैं, इसलिए, इस न्यायालय को मामले में हस्तक्षेप करने का अति सीमित अधिकारिता/क्षेत्र है । इस संबंध में, **लक्ष्मीदेवम्मा और अन्य** बनाम **रंगनाथ और अन्य**[1] वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के सुसंगत

---

[1] (2015) 4 एस. सी. सी. 264.

भाग को यहां नीचे प्रस्तुत करना उपर्युक्त होगा, जो इस प्रकार है :–

> "16. दोनों निचले न्यायालयों ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों पर आधारित तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष अभिलिखित किए हैं कि वादियों ने अनुसूचित संपत्ति 'ए' में अपने अधिकारों को सिद्ध कर दिया है । तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों के प्रकाश में, उच्च न्यायालय ने विधि का कोई सारवान् प्रश्न उद्भूत नहीं होता है और साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने के लिए कोई सारवान् आधार नहीं है । ऐसा होने पर उच्च न्यायालय यह मत व्यक्त करने के लिए अग्रसर होता है कि प्रथम वादी ने सड़क के लिए अनुसूचित संपत्ति 'ए' चिह्नित कर दी है और उसका पूर्ण अधिकार नहीं हो सकता है और उस परिसर के लिए यह अभिनिर्धारित करने की ओर अग्रसर होता हूं कि वादियों के अधिकार की घोषणा मंजूर नहीं की जा सकती है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय द्वारा तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों को उलटा नहीं जा सकता है जब तक कि ऐसे अभिलिखित निष्कर्ष अनुचित दर्शित नहीं होते हैं । हमारे सुविचारित मत में, उच्च न्यायालय को यह ध्यान में नहीं रखना चाहिए कि निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित समवर्ती निष्कर्ष मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों पर आधारित हैं और उच्च न्यायालय के निर्णय कायम नहीं रखे जा सकते हैं ।"

33. परिणामतः, इसमें उपर्युक्त की गई चर्चा को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का यह मत है कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय, अभिलेख पर प्रस्तुत प्रत्यक्ष या दस्तावेजी साक्ष्यों के सही मूल्यांकन पर आधारित हैं और इस प्रकार, वर्तमान अपील असफल होती है और तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है ।

अन्तरिम निर्देश, यदि कोई हो, वातिल किए जाते हैं । सभी प्रकीर्ण आवेदन भी निपटाए जाते हैं ।

अपील खारिज की गई ।

क.

गतांक से आगे ....

अध्याय 10

सीमित दायित्व भागीदारी का संपरिवर्तन

55. फर्म से सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तन – कोई फर्म, इस अध्याय और दूसरी अनुसूची के उपबंधों के अनुसार सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तित हो सकेगी ।

56. प्राइवेट कंपनी से सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तन – कोई प्राइवेट कंपनी इस अध्याय और तीसरी अनुसूची के उपबंधों के अनुसार सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तित हो सकेगी ।

57. असूचीबद्ध पब्लिक कंपनी से सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तन – कोई असूचीबद्ध पब्लिक कंपनी इस अध्याय और चौथी अनुसूची के उपबंधों के अनुसार सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तित हो सकेगी ।

58. रजिस्ट्रीकरण और संपरिवर्तन का प्रभाव – (1) रजिस्ट्रार, यह समाधान हो जाने पर कि, यथास्थिति, किसी फर्म, प्राइवेट कंपनी या असूचीबद्ध पब्लिक कंपनी ने दूसरी अनुसूची, तीसरी अनुसूची या चौथी अनुसूची के उपबंधों का अनुपालन किया है, इस अधिनियम के उपबंधों और उसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन रहते हुए, ऐसी अनुसूची के अधीन प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों को रजिस्टर करेगा और यह कथन करते हुए कि सीमित दायित्व भागीदारी प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट तारीख से ही इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत की गई है, ऐसे प्ररूप में, जो रजिस्ट्रार अवधारित करे, रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र जारी करेगा :

परंतु सीमित दायित्व भागीदारी, रजिस्ट्रीकरण की तारीख से पंद्रह दिन के भीतर, यथास्थिति, संबंधित फर्म रजिस्ट्रार या कंपनी रजिस्ट्रार को, जिसके पास वह, यथास्थिति, भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 (1932 का 9) या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) के उपबंधों के अधीन रजिस्ट्रीकृत थी, सीमित दायित्व भागीदारी के संपरिवर्तन और उसकी विशिष्टियों के बारे में ऐसी रीति और प्ररूप में सूचना देगी, जो केंद्रीय सरकार विहित करे ।

(2) ऐसे संपरिवर्तन पर, फर्म के भागीदार, यथास्थिति, प्राइवेट कंपनी या असूचीबद्ध पब्लिक कंपनी के शेयरधारक वह सीमित दायित्व भागीदारी जिसमें ऐसी फर्म या ऐसी कंपनी संपरिवर्तित की गई है और सीमित

दायित्व भागीदारी के भागीदार, यथास्थिति, दूसरी अनुसूची, तीसरी अनुसूची या चौथी अनुसूची के उन उपबंधों से आबद्ध होंगे जो उन्हें लागू हों ।

(3) ऐसे संपरिवर्तन पर, रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र की तारीख से ही संपरिवर्तन के प्रभाव ऐसे होंगे, जो, यथास्थिति, दूसरी अनुसूची, तीसरी अनुसूची या चौथी अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं ।

(4) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, यथास्थिति, दूसरी अनुसूची, तीसरी अनुसूची या चौथी अनुसूची के अधीन जारी रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट तारीख से ही,–

(क) रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट नाम से इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत सीमित दायित्व भागीदारी होगी ;

(ख) यथास्थिति, फर्म या कंपनी में निहित सभी मूर्त (जंगम या स्थावर) और अमूर्त संपत्ति, यथास्थिति, फर्म या कंपनी से संबंधित सभी आस्तियां, हित, अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व, बाध्यताएं और, यथास्थिति, फर्म या कंपनी के संपूर्ण उपक्रम किसी और आश्वासन, कार्रवाई या विलेख के बिना सीमित दायित्व भागीदारी में अंतरित हो जाएंगे और उसमें निहित हो जाएंगे ; और

(ग) यथास्थिति, फर्म या कंपनी विघटित हुई और, यथास्थिति, फर्म रजिस्ट्रार या कंपनी रजिस्ट्रार के अभिलेख से हटा दी गई समझी जाएगी ।

अध्याय 11

विदेशी सीमित दायित्व भागीदारी

59. विदेशी सीमित दायित्व भागीदारी – केंद्रीय सरकार, कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) के उपबंधों को ऐसे उपांतरणों सहित, जो समुचित प्रतीत हों, या ऐसी संरचना वाले ऐसे विनियामक तंत्र को, जो विहित किया जाए, लागू या सम्मिलित करके भारत में विदेशी सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा कारबार के स्थान की स्थापना करने और उनमें अपने कारबार करने के संबंध में उपबंध करने के लिए नियम बना सकेगी ।

अध्याय 12

सीमित दायित्व भागीदारी का समझौता, ठहराव या पुनर्निर्माण

60. सीमित दायित्व भागीदारी का समझौता या ठहराव – (1) जहां,–

(क) किसी सीमित दायित्व भागीदारी और उसके लेनदारों के बीच ; या

(ख) सीमित दायित्व भागीदारी और उसके भागीदारों के बीच,

समझौता या ठहराव का प्रस्ताव है, वहां अधिकरण, सीमित दायित्व भागीदारी या सीमित दायित्व भागीदारी के किसी लेनदार या भागीदार के या ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी की दशा में, जिसका परिसमापन किया जा रहा है, समापक के आवेदन पर ऐसी रीति में, जो विहित की जाए या अधिकरण निदेश दे, यथास्थिति, लेनदारों या भागीदारों का अधिवेशन बुलाए जाने, आयोजित और संचालित किए जाने का आदेश कर सकेगा ।

(2) यदि अधिवेशन में, यथास्थिति, लेनदारों या भागीदारों के मूल्य में तीन-चौथाई का प्रतिनिधित्व करने वाला बहुमत किसी समझौते या ठहराव के लिए सहमत हो जाता है तो समझौता या ठहराव, यदि अधिकरण द्वारा मंजूर किया गया हो, आदेश द्वारा, यथास्थिति, सभी लेनदारों या भागीदारों पर और सीमित दायित्व भागीदारी या ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी की दशा में, जिसका परिसमापन किया जा रहा है, समापक पर और सीमित दायित्व भागीदारी के अभिदायकर्ताओं पर भी आबद्धकर होगा :

परंतु अधिकरण द्वारा किसी समझौते या ठहराव को मंजूरी देने वाला कोई आदेश तभी किया जाएगा जब अधिकरण का यह समाधान हो जाता है कि सीमित दायित्व भागीदारी या ऐसे किसी अन्य व्यक्ति ने, जिसके द्वारा उपधारा (1) के अधीन आवेदन किया गया है, शपथपत्र द्वारा या अन्यथा अधिकरण को सीमित दायित्व भागीदारी से संबंधित सभी तात्विक तथ्यों को, जिनके अंतर्गत सीमित दायित्व भागीदारी की नवीनतम वित्तीय स्थिति और सीमित दायित्व भागीदारी के संबंध में लंबित कोई अन्वेषण कार्यवाहियां भी हैं, प्रकट कर दिया है ।

(3) उपधारा (2) के अधीन अधिकरण द्वारा किया गया आदेश सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा, ऐसा आदेश किए जाने के पश्चात् तीस दिन के भीतर रजिस्ट्रार के पास फाइल किया जाएगा और वह इस प्रकार फाइल किए जाने के पश्चात् ही प्रभावी होगा ।

(4) यदि उपधारा (3) का अनुपालन करने में व्यतिक्रम किया जाता है, सीमित दायित्व भागीदारी और सीमित दायित्व भागीदारी का प्रत्येक अभिहित भागीदार, जुर्माने से, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा,

दंडनीय होगा ।

(5) अधिकरण, इस धारा के अधीन उसे आवेदन किए जाने के पश्चात्, किसी समय, सीमित दायित्व भागीदारी के विरुद्ध किसी वाद या कार्यवाही के आरंभ किए जाने या जारी रखे जाने को, ऐसे निबंधनों पर, जो अधिकरण ठीक समझे, आवेदन को अंतिम रूप से निपटाए जाने तक रोक सकेगा ।

61. समझौता या ठहराव लागू करने की अधिकरण की शक्ति – (1) जहां अधिकरण, धारा 60 के अधीन सीमित दायित्व भागीदारी की बाबत समझौता या ठहराव को मंजूर करने वाला कोई आदेश करता है, वहां,–

(क) उसे समझौते या ठहराव के क्रियान्वयन का अधीक्षण करने की शक्ति होगी ; और

(ख) वह ऐसा आदेश किए जाने के समय या उसके पश्चात् किसी भी समय, किसी विषय के संबंध में ऐसे निदेश दे सकेगा या समझौते या ठहराव में ऐसे उपांतरण कर सकेगा, जो वह समझौते या ठहराव के समुचित कार्यकरण के लिए आवश्यक समझे ।

(2) यदि पूर्वोक्त अधिकरण का यह समाधान हो जाता है कि धारा 60 के अधीन मंजूर किया गया कोई समझौता या ठहराव उपांतरणों सहित या उसके बिना समाधानप्रद रूप में कार्यान्वित नहीं किया जा सकता है तो वह, स्वप्रेरणा से या सीमित दायित्व भागीदारी के कामकाज में हितबद्ध किसी व्यक्ति के आवेदन पर, सीमित दायित्व भागीदारी के परिसमापन के लिए आदेश कर सकेगा और ऐसा आदेश इस अधिनियम की धारा 64 के अधीन किया गया आदेश समझा जाएगा ।

62. सीमित दायित्व भागीदारी के पुनर्निर्माण या समामेलन को सुकर बनाने के लिए उपबंध – (1) जहां किसी सीमित दायित्व भागीदारी और किन्हीं ऐसे व्यक्तियों के बीच, जो उस धारा में वर्णित हैं, प्रस्तावित समझौते या ठहराव की मंजूरी के लिए धारा 60 के अधीन कोई आवेदन अधिकरण को किया जाता है और अधिकरण को यह दर्शित किया जाता है कि–

(क) समझौता या ठहराव किसी सीमित दायित्व भागीदारी या सीमित दायित्व भागीदारियों के पुनर्निर्माण या किन्हीं दो या अधिक सीमित दायित्व भागीदारियों के समामेलन की स्कीम के प्रयोजनों या

उसके संबंध में प्रस्तावित किया गया है ; और

(ख) स्कीम के अधीन संबंधित किसी सीमित दायित्व भागीदारी का (जिसे इस धारा में "अंतरक सीमित दायित्व भागीदारी" कहा गया है) संपूर्ण उपक्रम, संपत्ति या दायित्व या उसका कोई भाग किसी दूसरी सीमित दायित्व भागीदारी में (जिसे इस धारा में "अंतरिती सीमित दायित्व भागीदारी" कहा गया है) अंतरित किया जाना है,

वहां अधिकरण, समझौते या ठहराव की मंजूरी देने वाले आदेश द्वारा या पश्चात्वर्ती आदेश द्वारा निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध कर सकेगा, अर्थात् :—

(i) किसी अंतरक सीमित दायित्व भागीदारी के संपूर्ण उपक्रम, संपत्ति या दायित्वों या उसके किसी भाग का अंतरिती सीमित दायित्व भागीदारी में अंतरण ;

(ii) किसी अंतरक सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा या उसके विरुद्ध लंबित किन्हीं विधिक कार्यवाहियों का अंतरिती सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा या उसके विरुद्ध जारी रखा जाना ;

(iii) किसी अंतरक सीमित दायित्व भागीदारी का परिसमापन के बिना विघटन ;

(iv) ऐसे किसी व्यक्ति के संबंध में किए जाने वाले उपबंध, जो ऐसे समय के भीतर और ऐसी रीति में, जो अधिकरण निदेश दे, समझौते या ठहराव से विसम्मति रखता है ; और

(v) ऐसे आनुषंगिक, पारिणामिक और अनुपूरक विषय, जो यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हों कि पुनर्निर्माण या समामेलन पूर्णतः और प्रभावी रूप से किया जाएगा :

परंतु किसी सीमित दायित्व भागीदारी के, जिसका परिसमापन किया जा रहा है, किसी अन्य सीमित दायित्व भागीदारी या सीमित दायित्व भागीदारियों से समामेलन की किसी स्कीम के प्रयोजनों के लिए या उसके संबंध में प्रस्तावित किसी समझौते या ठहराव को अधिकरण द्वारा तभी मंजूरी दी जाएगी, जब अधिकरण को रजिस्ट्रार से यह रिपोर्ट प्राप्त हो गई हो कि सीमित दायित्व भागीदारी के कामकाज ऐसी रीति में नहीं किए गए हैं, जिससे उसके भागीदारों के हितों या लोकहित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो :

परंतु यह और कि खंड (iii) के अधीन किसी अंतरक सीमित दायित्व भागीदारी के विघटन का कोई आदेश अधिकरण द्वारा तभी किया जाएगा जब शासकीय समापक ने सीमित दायित्व भागीदारी की बहियों और कागजपत्रों की संवीक्षा करने पर अधिकरण को यह रिपोर्ट दे दी हो कि सीमित दायित्व भागीदारी के कामकाज ऐसी रीति में नहीं किए गए हैं, जिससे उसके भागीदारों के हितों या लोकहित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो ।

(2) जहां इस धारा के अधीन कोई आदेश किसी संपत्ति या दायित्वों के अंतरण के लिए उपबंध करता है वहां उस आदेश के आधार पर वह संपत्ति अंतरिती सीमित दायित्व भागीदारी को अंतरित होगी और उसमें निहित हो जाएगी और ऐसे दायित्व उसमें अंतरित होंगे और उसके दायित्व बन जाएंगे ; तथा किसी संपत्ति की दशा में, यदि आदेश ऐसा निदेश करे, ऐसे किसी प्रभार से मुक्त होगी, जो समझौते या ठहराव के कारण, प्रभाव में नहीं रहा है ।

(3) इस धारा के अधीन कोई आदेश किए जाने के पश्चात् तीस दिन के भीतर, ऐसी प्रत्येक सीमित दायित्व भागीदारी, जिसके संबंध में आदेश किया गया है, उसकी प्रमाणित प्रति रजिस्ट्रीकरण के लिए रजिस्ट्रार के पास फाइल कराएगी ।

(4) यदि उपधारा (3) के उपबंधों का अनुपालन करने में व्यतिक्रम किया जाता है तो सीमित दायित्व भागीदारी, सीमित दायित्व भागीदारी का प्रत्येक अभिहित भागीदार, जुर्माने से, जो पचास हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा में, "संपत्ति" के अंतर्गत प्रत्येक प्रकार की संपत्ति, अधिकार और शक्तियां भी हैं ; और "दायित्वों" के अंतर्गत प्रत्येक प्रकार के कर्तव्य भी हैं ।

अध्याय 13

परिसमापन और विघटन

63. परिसमापन और विघटन – सीमित दायित्व भागीदारी का परिसमापन या तो स्वेच्छा से या अधिकरण द्वारा किया जा सकेगा और इस प्रकार परिसमापित सीमित दायित्व भागीदारी विघटित हो सकेगी ।

64. वे परिस्थितियां, जिनमें सीमित दायित्व भागीदारी का अधिकरण द्वारा परिसमापन किया जा सकेगा – सीमित दायित्व भागीदारी का अधिकरण द्वारा परिसमापन किया जा सकेगा–

(क) यदि सीमित दायित्व भागीदारी यह विनिश्चय करती है कि सीमित दायित्व भागीदारी का अधिकरण द्वारा परिसमापन किया जाए ;

(ख) यदि छह मास से अधिक की अवधि के लिए, सीमित दायित्व भागीदारी के भागीदारों की संख्या दो से कम रहती है ;

(ग) यदि सीमित दायित्व भागीदारी अपने ऋणों का संदाय करने में असमर्थ है ;

(घ) यदि सीमित दायित्व भागीदारी ने भारत की संप्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा या लोक व्यवस्था के हितों के विरुद्ध कार्य किया है ;

(ङ) यदि सीमित दायित्व भागीदारी ने लगातार किन्हीं पांच वित्तीय वर्षों के संबंध में लेखा और शोधनक्षमता का विवरण या वार्षिक विवरणी रजिस्ट्रार के पास फाइल करने में व्यतिक्रम किया है ; या

(च) यदि अधिकरण की यह राय है कि यह न्यायोचित और साम्यापूर्ण है कि सीमित दायित्व भागीदारी का परिसमापन कर दिया जाए ।

65. परिसमापन और विघटन के लिए नियम – केंद्रीय सरकार, सीमित दायित्व भागीदारी के परिसमापन और विघटन से संबंधित उपबंधों के लिए नियम बना सकेगी ।

अध्याय 14

प्रकीर्ण

66. सीमित दायित्व भागीदारी के साथ भागीदार के कारबार संव्यवहार – कोई भागीदारी सीमित भागीदारी को धन उधार दे सकेगा और उसके साथ अन्य कारबार कर सकेगा और ऋण या अन्य संव्यवहारों के संबंध में उसके वही अधिकार और बाध्यताएं होंगी जो ऐसे व्यक्ति के हैं, जो भागीदार नहीं है ।

67. कंपनी अधिनियम के उपबंधों का लागू होना – (1) केंद्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, यह निदेश दे सकेगी कि अधिसूचना में विनिर्दिष्ट कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) का कोई उपबंध,–

(क) किसी सीमित दायित्व भागीदार को लागू होगा ; या

(ख) किसी सीमित दायित्व भागीदारी को ऐसे अपवाद, उपांतरण और अनुकूलन के साथ लागू होगा, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किए जाएं ।

(2) उपधारा (1) के अधीन जारी किए जाने के लिए प्रस्तावित प्रत्येक अधिसूचना की प्रति संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखी जाएगी । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस अधिसूचना को जारी किए जाने का अनुमोदन न करने के लिए सहमत हो जाएं तो वह अधिसूचना, यथास्थिति, जारी नहीं की जाएगी या दोनों सदन उस अधिसूचना में कोई उपांतरण करने के लिए सहमत हो जाते हैं तो वह उस उपांतरित रूप में ही जारी की जाएगी, जिस पर दोनों सदन सहमत हों ।

68. दस्तावेजों का इलेक्ट्रानिक रूप में फाइल किया जाना – (1) इस अधिनियम के अधीन फाइल, अभिलिखित या रजिस्ट्रीकृत किए जाने के लिए अपेक्षित किसी दस्तावेज को ऐसी रीति में और ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जो विहित की जाएं, फाइल, अभिलिखित या रजिस्ट्रीकृत किया जा सकेगा ।

(2) रजिस्ट्रार के पास इलेक्ट्रानिक रूप में फाइल किए गए या उसको प्रस्तुत किए गए किसी दस्तावेज की कोई प्रति या उससे कोई उद्धरण, जो रजिस्ट्रार द्वारा प्रदाय या जारी किया जाता है और जिसे ऐसे दस्तावेज की सत्यप्रति या उद्धरण के रूप में सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 (2000 का 21) के अनुसार अंकीय चिह्नक के माध्यम से प्रमाणित किया गया है, किन्हीं कार्यवाहियों में मूल दस्तावेज के समान विधिमान्यता के रूप में साक्ष्य में ग्राह्य होगा ।

(3) रजिस्ट्रार द्वारा प्रदाय की गई कोई सूचना जो रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रार के पास फाइल किए गए या उसको प्रस्तुत किए गए किसी

दस्तावेज के सत्य उद्धरण के रूप में अंकीय चिह्नक के माध्यम से रजिस्ट्रार द्वारा प्रमाणित किया गया है, किन्हीं कार्यवाहियों में साक्ष्य में ग्राह्य होगी और यह उपधारणा की जाएगी कि वह जब तक उसके विरुद्ध कोई साक्ष्य प्रस्तुत न किया जाए, ऐसे दस्तावेज से सत्य उद्धरण है ।

69. अतिरिक्त फीस का संदाय – इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रार के पास फाइल या रजिस्ट्रीकृत किए जाने के लिए अपेक्षित कोई दस्तावेज या विवरणी यदि उसमें उपबंधित समय में फाइल या रजिस्ट्रीकृत नहीं की जाती है तो उस समय के पश्चात् उस तारीख से, जिस तक उसे फाइल किया जाना चाहिए, तीन सौ दिन की अवधि तक, ऐसी किसी फीस के अतिरिक्त, जो ऐसे दस्तावेज या विवरणी को फाइल करने के लिए संदेय हों, ऐसे विलंब के प्रत्येक दिन के लिए एक सौ रुपए की अतिरिक्त फीस के संदाय पर फाइल या रजिस्ट्रीकृत की जा सकेगी :

परंतु ऐसा दस्तावेज या विवरणी, इस अधिनियम के अधीन किसी अन्य कार्रवाई या दायित्व पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, इस धारा में विनिर्दिष्ट फीस और अतिरिक्त फीस के संदाय पर तीन सौ दिन की ऐसी अवधि के पश्चात् भी फाइल की जा सकेगी ।

70. वर्धित दंड – यदि कोई सीमित दायित्व भागीदारी या ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी का कोई भागीदार या अभिहित भागीदार कोई अपराध करता है तो सीमित दायित्व भागीदारी या कोई भागीदार या अभिहित भागीदार दूसरे या पश्चात्वर्ती अपराध के लिए यथाउपबंधित कारावास से दंडनीय होगा, किंतु ऐसे अपराधों की दशा में, जिसके लिए कारावास के साथ या उसे छोड़कर जुर्माना विहित किया गया है, जुर्माने से, जो ऐसे अपराध के लिए जुर्माने की रकम का दुगुना होगा, दंडनीय होगा ।

71. अन्य विधियों के लागू होने का वर्जित न होना – इस अधिनियम के उपबंध तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंधों के अतिरिक्त होंगे, न कि उनके अल्पीकरण में ।

72. अधिकरण और अपील अधिकरण की अधिकारिता – (1) अधिकरण ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का पालन करेगा जो इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के द्वारा या उसके अधीन उसे प्रदत्त किए जाएं ।

(2) अधिकरण के किसी आदेश या विनिश्चय से व्यथित कोई व्यक्ति अपील अधिकरण को अपील कर सकेगा और कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 10चथ, धारा 10चयक, धारा 10छ, धारा 10छघ, धारा 10छङ और धारा 10छच के उपबंध ऐसी अपील के संबंध में लागू होंगे ।

73. अधिकरण द्वारा पारित किसी आदेश के अननुपालन के संबंध में शास्ति – जो कोई इस अधिनियम के किसी उपबंध के अधीन अधिकरण द्वारा किए गए किसी आदेश का पालन करने में असफल रहता है तो वह कारावास से, जो छह मास तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा और जुर्माने का भी, जो पचास हजार रुपए से कम का नहीं होगा, दायी होगा ।

74. साधारण शास्तियां – कोई व्यक्ति, जो इस अधिनियम के अधीन किसी ऐसे अपराध का दोषी है जिसके लिए स्पष्ट रूप से कोई दंड उपबंधित नहीं किया गया है, जुर्माने का जो पांच लाख रुपए तक का हो सकेगा, किंतु जो पांच हजार रुपए से कम का नहीं होगा दायी होगा और अतिरिक्त जुर्माने का, जो उस प्रथम दिन के, जिसके पश्चात् व्यतिक्रम जारी रहता है, पश्चात् के प्रत्येक दिन के लिए पचास रुपए तक का हो सकेगा, दायी होगा ।

75. रजिस्टर से निष्क्रिय सीमित दायित्व भागीदारी का नाम काटने की रजिस्ट्रार की शक्ति – जहां रजिस्ट्रार के पास यह विश्वास करने का युक्तियुक्त कारण है कि सीमित दायित्व भागीदारी इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार कारबार नहीं चला रही है या अपना प्रचालन नहीं कर रही है, वहां सीमित दायित्व भागीदारी का नाम ऐसी रीति में, जो विहित की जाए, सीमित दायित्व भागीदारी के रजिस्टर से काट दिया जाएगा :

परंतु रजिस्ट्रार, इस धारा के अधीन किसी सीमित दायित्व भागीदारी का नाम काटने से पूर्व ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी को सुने जाने का युक्तियुक्त अवसर देगा ।

76. सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा अपराध – जहां सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा इस अधिनियम के अधीन किया गया कोई अपराध,–

(क) सीमित दायित्व भागीदारी के किसी भागीदार या भागीदारों या अभिहित भागीदार या अभिहित भागीदारों की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया ; या

(ख) उस सीमित भागीदारी के भागीदार या भागीदारों या अभिहित भागीदार या अभिहित भागीदारों की ओर से किसी उपेक्षा के कारण हुआ,

साबित होता है, वहां यथास्थिति, सीमित दायित्व भागीदार का भागीदार या उसके भागीदार या उसका अभिहित भागीदार या उसके अभिहित भागीदार और वह सीमित दायित्व भागीदार उस अपराध के दोषी होंगे और तदनुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने तथा दंडित किए जाने के लिए दायी होंगे ।

77. न्यायालय की अधिकारिता – तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियम में किसी प्रतिकूल उपबंध के होते हुए भी, यथास्थिति, प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर मजिस्ट्रेट को इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का विचारण करने की अधिकारिता होगी और उक्त अपराध की बाबत दंड अधिरोपित करने की शक्ति होगी ।

78. अनुसूचियों में परिवर्तन करने की शक्ति – (1) केंद्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम की किसी अनुसूची में अंतर्विष्ट उपबंधों में से किसी उपबंध को परिवर्तित कर सकेगी ।

(2) उपधारा (1) के अधीन अधिसूचित कोई परिवर्तन इस प्रकार प्रभावी होगा मानो वह अधिनियम में अधिनियमित किया गया हो और वह, जब तक अधिसूचना में अन्यथा निदेश न हो, अधिसूचना की तारीख को प्रवृत्त होगा ।

(3) उपधारा (1) के अधीन केंद्रीय सरकार द्वारा किया गया प्रत्येक परिवर्तन, किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस परिवर्तन में कोई उपांतरण करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे उपांतरित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किंतु परिवर्तन के ऐसे उपांतरण या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

79. नियम बनाने की शक्ति – (1) केंद्रीय सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध कर सकेंगे, अर्थात् :–

(क) धारा 7 की उपधारा (3) के अधीन अभिहित भागीदार द्वारा दी जाने वाली पूर्व सहमति का प्ररूप और रीति ;

(ख) धारा 7 की उपधारा (4) के अधीन सीमित दायित्व भागीदारी के अभिहित भागीदार के रूप में कार्य करने के लिए सहमत होने वाले प्रत्येक व्यष्टि की विशिष्टियों का प्ररूप और रीति ;

(ग) धारा 7 की उपधारा (5) के अधीन अभिहित भागीदार बनने के लिए किसी व्यष्टि की पात्रता से संबंधित शर्तें और अपेक्षाएं ;

(घ) धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन निगमन दस्तावेज फाइल करने की रीति और उसके लिए संदेय फीस का संदाय ;

(ङ) धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ग) के अधीन फाइल की जाने वाली विवरणी का प्ररूप ;

(च) धारा 11 की उपधारा (2) के खंड (क) के अधीन निगमन दस्तावेज का प्ररूप ;

(छ) धारा 11 की उपधारा (2) के खंड (छ) के अधीन प्रस्तावित सीमित दायित्व भागीदारी से संबंधित निगमन दस्तावेज में अंतर्विष्ट की जाने वाली जानकारी ;

(ज) धारा 13 की उपधारा (2) के अधीन सीमित दायित्व भागीदारी या किसी भागीदार या अभिहित भागीदार पर दस्तावेजों की तामील करने की रीति और वह प्ररूप और रीति, जिसमें सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा कोई अन्य पता घोषित किया जा सकेगा ;

(झ) धारा 13 की उपधारा (3) के अधीन रजिस्ट्रार को सूचना देने का प्ररूप और रीति और रजिस्ट्रीकृत कार्यालय के परिवर्तन के संबंध में शर्तें ;

(ञ) धारा 16 की उपधारा (1) के अधीन रजिस्ट्रार को आवेदन करने की रीति और संदेय फीस की रकम ;

(ट) वह रीति जिसमें धारा 16 की उपधारा (2) के अधीन रजिस्ट्रार द्वारा नाम आरक्षित किए जाएंगे ;

(ठ) वह रीति जिसमें धारा 18 की उपधारा (1) के अधीन किसी अस्तित्व द्वारा आवेदन किया जा सकेगा ;

(ड) धारा 19 के अधीन सीमित दायित्व भागीदारी के नाम-परिवर्तन की सूचना का प्ररूप और रीति तथा संदेय फीस की रकम;

(ढ) धारा 23 की उपधारा (2) के अधीन सीमित दायित्व भागीदारी करार और उसमें किए गए परिवर्तन का प्ररूप और रीति और संदेय फीस की रकम ;

(ण) धारा 25 की उपधारा (3) के खंड (क), खंड (ख) और खंड (ग) के अधीन सूचना का प्ररूप, संदेय फीस की रकम और विवरण के अधिप्रमाणन की रीति ;

(त) धारा 32 की उपधारा (2) के अधीन किसी भागीदार के अभिदाय के धनीय मूल्य का लेखा रखने और प्रकटन की रीति ;

(थ) धारा 34 की उपधारा (1) के अधीन लेखा बहियां और उनके रखे जाने की अवधि ;

(द) धारा 34 की उपधारा (2) के अधीन लेखा और शोधनक्षमता के विवरण का प्ररूप और रीति ;

(ध) धारा 34 की उपधारा (3) के अधीन लेखा और शोधनक्षमता का विवरण फाइल करने का प्ररूप, रीति, फीस और समय ;

(न) धारा 34 की उपधारा (4) के अधीन सीमित दायित्व भागीदारी के लेखाओं की संपरीक्षा ;

(प) धारा 35 की उपधारा (1) के अधीन वार्षिक विवरणी का प्ररूप और रीति और उसके लिए संदेय फीस ;

(फ) धारा 36 के अधीन निगमन दस्तावेज, भागीदारों के नाम और उसमें किए गए परिवर्तनों, लेखा और शोधनक्षमता विवरण और वार्षिक विवरणी के निरीक्षण की रीति और उसके लिए संदेय फीस

की रकम ;

(ब) धारा 40 के अधीन रजिस्ट्रार द्वारा दस्तावेजों का किसी रूप में नष्ट किया जाना ;

(भ) धारा 43 की उपधारा (3) के खंड (क) के अधीन प्रतिभूति के रूप में अपेक्षित रकम ;

(म) धारा 44 के अधीन दी जाने वाली प्रतिभूति की रकम ;

(य) धारा 49 की उपधारा (2) के खंड (ख) के अधीन, प्रति देने के लिए संदेय फीस ;

(यक) धारा 54 के अधीन निरीक्षक की रिपोर्ट के अधिप्रमाणन की रीति ;

(यख) धारा 58 की उपधारा (1) के परंतुक के अधीन संपरिवर्तन के बारे में विशिष्टियों का प्ररूप और रीति ;

(यग) धारा 59 के अधीन विदेशी सीमित दायित्व भागीदारियों द्वारा भारत में कारबार के स्थान की स्थापना करने और कारबार करने और विनियामक तंत्र तथा उसकी संरचना के संबंध में ;

(यघ) धारा 60 की उपधारा (1) के अधीन अधिवेशन बुलाने, आयोजित और संचालित करने की रीति ;

(यङ) धारा 65 के अधीन सीमित दायित्व भागीदारियों के परिसमापन और विघटन के संबंध में ;

(यच) धारा 68 की उपधारा (1) के अधीन इलेक्ट्रानिक रूप में दस्तावेज फाइल करने की रीति और शर्तें ;

(यछ) धारा 75 के अधीन रजिस्टर से सीमित दायित्व भागीदारियों के नाम काटने की रीति ;

(यज) दूसरी अनुसूची के पैरा 4 के उपपैरा (क) के अधीन विशिष्टियों वाले विवरण का प्ररूप और रीति तथा फीस की रकम ;

(यझ) दूसरी अनुसूची के पैरा 5 के परंतुक के अधीन संपरिवर्तन के बारे में विशिष्टियों की रीति और प्ररूप ;

(यञ) तीसरी अनुसूची के पैरा 3 के उपपैरा (क) के अधीन विवरण का प्ररूप और रीति तथा संदेय फीस की रकम ;

(यट) तीसरी अनुसूची के पैरा 4 के परंतुक के अधीन संपरिवर्तन के बारे में विशिष्टियों का प्ररूप और रीति ;

(यठ) चौथी अनुसूची के पैरा 4 के उपपैरा (क) के अधीन विवरण का प्ररूप और रीति तथा संदेय फीस की रकम ; और

(यड) चौथी अनुसूची के पैरा 5 के परंतुक के अधीन संपरिवर्तन के बारे में विशिष्टियों की रीति और प्ररूप ।

(3) इस अधिनियम के अधीन केंद्रीय सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किंतु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

80. कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केंद्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा ऐसे उपबंध कर सकेगी जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों, और जो उसे कठिनाई को दूर करने के लिए आवश्यक प्रतीत हों :

परंतु इस धारा के अधीन ऐसा कोई आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से दो वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, उसके किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

81. संक्रमणकालीन उपबंध – जब तक कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) के उपबंधों के अधीन अधिकरण और अपील अधिकरण गठित नहीं किए जाते हैं तब तक इस अधिनियम के उपबंध निम्नलिखित उपांतरणों के अधीन रहते हुए इस प्रकार प्रभावी होंगे, मानो–

(क) धारा 41 की उपधारा (1) के खंड (ख), धारा 43 की उपधारा (1) के खंड (क), और धारा 44 में आने वाले "अधिकरण" शब्द के स्थान पर, "कंपनी विधि बोर्ड" शब्द रखे गए हों ;

(ख) धारा 51 और धारा 60 से धारा 64 में आने वाले "अधिकरण" शब्द के स्थान पर, "उच्च न्यायालय" शब्द रखे गए हों ;

(ग) धारा 72 की उपधारा (2) में आने वाले "अपील अधिकरण" शब्दों के स्थान पर, "उच्च न्यायालय" शब्द रखे गए हों ।

पहली अनुसूची

[धारा 23(4) देखिए]

भागीदारों और सीमित दायित्व भागीदारी तथा उसके भागीदारों के पारस्परिक अधिकारों और कर्तव्यों से संबंधित विषयों के संबंध में, ऐसे विषयों पर किसी करार के न होने की दशा में लागू होने वाले उपबंध

1. भागीदारों के पारस्परिक अधिकार और कर्तव्य और सीमित दायित्व भागीदारी तथा उसके भागीदारों के पारस्परिक अधिकार और कर्तव्य किसी सीमित दायित्व भागीदारी के निबंधनों के अधीन रहते हुए या किसी विषय पर ऐसे किसी करार के अभाव में, इस अनुसूची के उपबंधों द्वारा अवधारित किए जाएंगे ।

2. सीमित दायित्व भागीदारी के सभी भागीदार सीमित दायित्व भागीदारी की पूंजी, लाभों और हानियों में समान रूप से हिस्सा बंटाने के लिए हकदार हैं ।

3. सीमित दायित्व भागीदारी प्रत्येक भागीदार को उसके द्वारा–

(क) सीमित दायित्व भागीदारी के कारबार के सामान्य और समुचित संचालन में ; या

(ख) सीमित दायित्व भागीदारी के कारबार या संपत्ति के परिरक्षण के लिए आवश्यक रूप से की गई किसी बात में या उसके बारे में,

किए गए संदायों और उपगत वैयक्तिक दायित्वों के संबंध में क्षतिपूर्ति

करेगी ।

4. प्रत्येक भागीदार सीमित दायित्व भागीदारी के कारबार के संचालन में उसके कपट से उसको हुई किसी हानि के लिए सीमित दायित्व भागीदारी को क्षतिपूरित करेगा ।

5. प्रत्येक भागीदार सीमित दायित्व भागीदारी के प्रबंध में भाग ले सकेगा ।

6. कोई भी भागीदार सीमित दायित्व भागीदारी के कारबार या प्रबंध में कार्य करने के लिए पारिश्रमिक का हकदार नहीं होगा ।

7. विद्यमान भागीदारों की सहमति के बिना किसी व्यक्ति को भागीदार के रूप में सम्मिलित नहीं किया जाएगा ।

8. सीमित दायित्व भागीदारी से संबंधित कोई विषय या मुद्दा भागीदारों की संख्या में बहुमत द्वारा पारित संकल्प द्वारा विनिश्चित किया जाएगा और इस प्रयोजन के लिए प्रत्येक भागीदार का एक मत होगा । तथापि, सभी भागीदारों की सहमति के बिना सीमित दायित्व भागीदारी के कारबार की प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकेगा ।

9. प्रत्येक सीमित दायित्व भागीदारी यह सुनिश्चित करेगी कि उसके द्वारा किए गए विनिश्चय, ऐसे विनिश्चय किए जाने के बीस दिन के भीतर कार्यवृत्त में लेखबद्ध किए जाएं और सीमित दायित्व भागीदारी के रजिस्ट्रीकृत कार्यालय में रखे और अनुरक्षित किए जाएं ।

10. प्रत्येक भागीदार सीमित दायित्व भागीदारी को प्रभावित करने वाली बातों के बारे में वास्तविक लेखा और पूरी जानकारी किसी भागीदार या उसके विधिक प्रतिनिधियों को देगा ।

11. यदि कोई भागीदार, सीमित दायित्व भागीदारी की सहमति के बिना, उसी प्रकृति का कोई कारबार करता है जो सीमित दायित्व भागीदारी का है और उससे प्रतियोगिता करता है तो वह उस कारबार में उसे हुए सभी लाभों का, सीमित दायित्व भागीदारी को हिसाब देगा और उनका उसे संदाय करने के लिए दायी होगा ।

12. प्रत्येक भागीदार, सीमित दायित्व भागीदारी की सहमति के बिना, सीमित दायित्व भागीदारी से संबंधित किसी संव्यवहार से या सीमित दायित्व भागीदारी की संपत्ति, नाम या किसी कारबारी संपर्क से उसके द्वारा व्युत्पन्न

किसी फायदे का सीमित दायित्व भागीदारी को हिसाब देगा ।

13. भागीदारों का कोई बहुमत किसी भागीदार को तभी निष्कासित कर सकता है जब भागीदारों के बीच स्पष्ट करार द्वारा ऐसा करने के लिए कोई शक्ति प्रदान की गई हो ।

14. भागीदारों के बीच सीमित दायित्व भागीदारी करार से उद्‌भूत ऐसे सभी विवाद, जिनका निपटान ऐसे करार के निबंधनानुसार नहीं किया जा सकता है, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) के उपबंधों के अनुसार माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट किए जाएंगे ।

दूसरी अनुसूची

(धारा 55 देखिए)

फर्म से सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तन

1. निर्वचन – इस अनुसूची में, जब तक संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,–

(क) "फर्म" से भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 (1932 का 9) की धारा 4 में यथापरिभाषित फर्म अभिप्रेत है ;

(ख) किसी सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तित होने वाली फर्म के संबंध में, "संपरिवर्तन" से फर्म की संपत्ति, आस्तियों, हितों, अधिकारों, विशेषाधिकारों, दायित्वों, बाध्यताओं और उपक्रम का इस अनुसूची के अनुसार सीमित दायित्व भागीदारी में अंतरण अभिप्रेत है ।

2. फर्म से सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तन – (1) कोई फर्म इस अनुसूची में उपवर्णित संपरिवर्तन की अपेक्षाओं का अनुपालन करके सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तित हो सकेगी ।

(2) ऐसे संपरिवर्तन पर, फर्म के भागीदार इस अनुसूची के उन उपबंधों द्वारा आबद्ध होंगे, जो उनको लागू होते हैं ।

3. संपरिवर्तन के लिए पात्रता – कोई फर्म सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तन के लिए इस अनुसूची के अनुसार आवेदन कर सकेगी यदि और केवल तभी जब सीमित दायित्व भागीदारी के भागीदारों में, जिसमें फर्म का संपरिवर्तन किया जाना है, उस फर्म के सभी भागीदार सम्मिलित हैं न कि कोई और ।

4. फाइल किए जाने वाला विवरण – कोई फर्म किसी सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तन के लिए रजिस्ट्रार को निम्नलिखित फाइल करते हुए आवेदन कर सकेगी–

(क) उसके सभी भागीदारों द्वारा ऐसे प्ररूप में और ऐसी रीति से तथा ऐसी फीस के साथ जो केंद्रीय सरकार विनिर्दिष्ट करे, निम्नलिखित विशिष्टियां, अंतर्विष्ट करते हुए, विवरण, अर्थात् :–

(i) फर्म का नाम और रजिस्ट्रीकरण संख्या यदि लागू हों ; और

(ii) वह तारीख जिसको फर्म भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 (1932 का 9) या किसी अन्य विधि यदि लागू हो के अधीन रजिस्ट्रीकृत की गई थी ; या

(ख) धारा 11 में निर्दिष्ट निगमन दस्तावेज और विवरण ।

5. संपरिवर्तन का रजिस्ट्रीकरण – पैरा 4 में निर्दिष्ट दस्तावेजों को प्राप्त होने पर, रजिस्ट्रार, इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, दस्तावेजों को रजिस्टर करेगा और ऐसे प्ररूप में जो रजिस्ट्रार अवधारित करे, यह कथन करते हुए रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र जारी करेगा कि सीमित दायित्व भागीदारी प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट तारीख से ही इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत है :

परंतु सीमित दायित्व भागीदारी, रजिस्ट्रीकरण की तारीख से पंद्रह दिन के भीतर, संबंधित उस फर्म रजिस्ट्रार को, जिसके पास वह भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 (1932 का 9) के उपबंधों के अधीन रजिस्ट्रीकृत थी, संपरिवर्तन के बारे में और सीमित दायित्व भागीदारी की विशिष्टियों की ऐसे प्ररूप और रीति में सूचना देगी, जो केंद्रीय सरकार विहित करे ।

6. रजिस्ट्रार रजिस्टर करने से इनकार कर सकेगा – (1) इस अनुसूची की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि यदि इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन प्रस्तुत की गई विशिष्टियों या अन्य जानकारी से उसका समाधान नहीं होता है तो वह रजिस्ट्रार से, किसी सीमित दायित्व भागीदारी को रजिस्टर करने की अपेक्षा करती है :

परंतु रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकरण से इनकार की दशा में अधिकरण के समक्ष अपील की जा सकेगी ।

(2) रजिस्ट्रार, किसी विशिष्ट मामले में, पैरा 4 में विनिर्दिष्ट दस्तावेजों को ऐसी रीति में सत्यापित कराने की अपेक्षा कर सकेगा, जो वह ठीक समझे ।

7. रजिस्ट्रीकरण का प्रभाव – पैरा 5 के अधीन जारी रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट रजिस्ट्रीकरण की तारीख से ही,–

(क) रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट नाम से इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत सीमित दायित्व भागीदारी होगी ;

(ख) फर्म में निहित सभी मूर्त संपत्ति (जंगम और स्थावर) और अमूर्त संपत्ति और फर्म से संबंधित सभी आस्तियां, हित, अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व, बाध्यताएं और फर्म का संपूर्ण उपक्रम किसी और आश्वासन, कृत्य या विलेख के बिना सीमित दायित्व भागीदारी को अंतरित हो जाएंगे और उसमें निहित हो जाएंगे ; और

(ग) फर्म विघटित समझी जाएगी और यदि वह भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 (1932 का 9) के अधीन पहले से रजिस्ट्रीकृत है तो उस अधिनियम के अधीन रखे गए अभिलेखों से हटा दी जाएगी ।

8. संपत्ति के संबंध में रजिस्ट्रीकरण – यदि कोई संपत्ति, जिसको पैरा 7 का उप-पैरा (ख) लागू होता है, किसी प्राधिकारी के पास रजिस्ट्रीकृत है, तो सीमित दायित्व भागीदारी, रजिस्ट्रीकरण की तारीख के पश्चात् यथासाध्य शीघ्र, संपरिवर्तन के प्राधिकार और सीमित दायित्व भागीदारी की विशिष्टियों को ऐसे माध्यम और ऐसे प्ररूप में, अधिसूचित करने के लिए सभी आवश्यक उपाय करेगी जो सुसंगत प्राधिकारी अपेक्षा करे ।

9. लंबित कार्यवाहियां – फर्म द्वारा या उसके विरुद्ध सभी कार्यवाहियां, जो किसी न्यायालय या अधिकरण में या किसी प्राधिकारी के समक्ष रजिस्ट्रीकरण की तारीख को लंबित हैं, सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा या उसके विरुद्ध जारी रखी जा सकेंगी, पूरी की जा सकेंगी और प्रवृत्त की जा सकेंगी ।

10. दोषसिद्धि, विनिर्णय, आदेश या निर्णय का जारी रहना – किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकारी की फर्म के पक्ष में या उसके विरुद्ध कोई दोषसिद्धि, विनिर्णय, आदेश या निर्णय सीमित दायित्व

भागीदारी द्वारा या उसके विरुद्ध प्रवृत्त किया जा सकेगा ।

11. विद्यमान करार – ऐसा प्रत्येक करार, जिसका फर्म रजिस्ट्रीकरण की तारीख से ठीक पूर्व एक पक्षकार थी, चाहे वह ऐसी प्रकृति का था यह कि उसके अधीन अधिकार या दायित्व समनुदेशित किए जा सकें उस दिन से वैसे ही प्रभावी रहेगा, मानो–

(क) फर्म के स्थान पर सीमित दायित्व भागीदारी ऐसे करार की पक्षकार हो ; और

(ख) रजिस्ट्रीकरण की तारीख को या उसके पश्चात् की गई किसी बात की बाबत फर्म के प्रति निर्देश के स्थान पर सीमित दायित्व भागीदारी के प्रति निर्देश रखा गया हो ।

12. विद्यमान संविदाएं आदि – रजिस्ट्रीकरण की तारीख से ठीक पूर्व विद्यमान ऐसे सभी विलेख, संविदाएं, स्कीम, बंधपत्र, करार, आवेदन, लिखत और ठहराव जो फर्म से संबंधित हैं या जिनमें फर्म एक पक्षकार है, उस तारीख को और उसके पश्चात् वैसे ही प्रभावी बने रहेंगे मानो वे सीमित दायित्व भागीदारी से संबंधित हों और सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा या उसके विरुद्ध उसी प्रकार प्रवर्तनीय होंगे मानो सीमित दायित्व भागीदारी उसमें नामित की गई हो या फर्म के स्थान पर वह उसकी पक्षकार हो ।

13. नियोजन का जारी रहना – नियोजन की प्रत्येक संविदा जिसे पैरा 11 या पैरा 12 लागू होते हैं, रजिस्ट्रीकरण की तारीख को या उसके पश्चात् वैसे ही प्रभावी बनी रहेगी मानो फर्म के स्थान पर सीमित दायित्व भागीदारी उसके अधीन नियोजक हो ।

14. विद्यमान नियुक्ति, प्राधिकार या शक्ति – (1) किसी भी भूमिका या हैसियत में फर्म की प्रत्येक नियुक्ति जो रजिस्ट्रीकरण की तारीख से ठीक पूर्व प्रवृत्त है उस तारीख से वैसे ही प्रभावी और प्रवर्तित होगी मानो सीमित दायित्व भागीदारी नियुक्त की गई हो ।

(2) फर्म को प्रदत्त कोई प्राधिकार या शक्ति जो रजिस्ट्रीकरण की तारीख से ठीक पूर्व प्रवर्तन में है, उस तारीख से वैसे ही प्रभावी और प्रवर्तित होगी मानो वह सीमित दायित्व भागीदारी को प्रदत्त की गई हो ।

15. पैरा 7 से पैरा 14 का लागू होना – पैरा 7 से पैरा 14 (जिसमें दोनों सम्मिलित हैं) के उपबंध ऐसे किसी अन्य अधिनियम के अधीन, जो

सीमित दायित्व भागीदारी के रजिस्ट्रीकरण की तारीख से ठीक पूर्व प्रवर्तन में है, फर्म को जारी किए गए किसी अनुमोदन, अनुज्ञापत्र या अनुज्ञप्ति को, ऐसे अन्य अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए लागू होंगे, जिसके अधीन ऐसा अनुमोदन, अनुज्ञापत्र या अनुज्ञप्ति जारी की गई है ।

16. भागीदार का संपरिवर्तन से पूर्व फर्म के दायित्वों और बाध्यताओं के लिए दायी होना – (1) पैरा 7 से पैरा 14 (जिसमें दोनों सम्मिलित हैं) में किसी बात के होते हुए भी, किसी ऐसी फर्म का, जो सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तित हो गई है, प्रत्येक भागीदार फर्म के ऐसे दायित्वों और बाध्यताओं के लिए व्यक्तिगत रूप से (सीमित दायित्व भागीदारी के साथ संयुक्त रूप से और पृथक् रूप से) दायी बनी रहेगी, जो संपरिवर्तन के पूर्व उपगत हुई हों या जो संपरिवर्तन के पूर्व किसी संविदा से उद्भूत हुई हों ।

(2) यदि ऐसा कोई भागीदार पैरा (1) में निर्दिष्ट किसी दायित्व या बाध्यता का निर्वहन करता है तो वह ऐसे दायित्व या बाध्यता के संबंध में (सीमित दायित्व भागीदारी के साथ किसी करार के अधीन रहते हुए) सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा पूर्ण रूप से क्षतिपूर्ति किए जाने का हकदार होगा ।

17. पत्राचार में संपरिवर्तन की सूचना – (1) सीमित दायित्व भागीदारी यह सुनिश्चित करेगी कि रजिस्ट्रीकरण की तारीख के पश्चात् चौदह दिन के अपश्चात् प्रारंभ होने वाली बारह मास की अवधि के लिए सीमित दायित्व भागीदारी के प्रत्येक शासकीय पत्राचार में निम्नलिखित समाविष्ट होंगे :–

(क) यह विवरण कि फर्म रजिस्ट्रीकरण की तारीख से सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तित हो गई थी ;

(ख) उस फर्म का नाम और रजिस्ट्रीकरण संख्यांक (यदि लागू हो) जिससे वह संपरिवर्तित हुई थी ।

(2) कोई सीमित दायित्व भागीदारी, जो उप-पैरा (1) के उपबंधों का उल्लंघन करती है, जुर्माने से जो दस हजार रुपए से कम का नहीं होगा किंतु जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा और अतिरिक्त जुर्माने से जो पहले दिन के पश्चात् जिसको व्यतिक्रम जारी रहता है प्रत्येक दिन के लिए पचास रुपए से कम का नहीं होगा किंतु जो पांच सौ रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगी ।

तीसरी अनुसूची

(धारा 56 देखिए)

प्राइवेट कंपनी से सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तन

1. निर्वचन – इस अनुसूची में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,–

(क) "कंपनी" से कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 3 की उपधारा (1) के खंड (iii) में यथापरिभाषित प्राइवेट कंपनी अभिप्रेत है;

(ख) सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तित होने वाली प्राइवेट कंपनी के संबंध में "संपरिवर्तन" से कंपनी की संपत्ति, आस्तियों, हितों, अधिकारों, विशेषाधिकारों, बाध्यताओं और उपक्रम का इस अनुसूची के उपबंधों के अनुसार सीमित दायित्व भागीदारी में अंतरण अभिप्रेत है ।

2. प्राइवेट कंपनियों की सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तन के लिए पात्रता – (1) कोई कंपनी इस अनुसूची में उपवर्णित संपरिवर्तन की अपेक्षाओं का अनुपालन करके सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तित हो सकेगी ।

(2) कोई कंपनी इस अनुसूची के अनुसार किसी सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तन के लिए केवल तभी आवेदन कर सकेगी यदि –

(क) आवेदन के समय आस्तियों में कोई प्रतिभूति हित विद्यमान या प्रवृत्त नहीं है, और

(ख) उस सीमित दायित्व भागीदारी के, जिसमें वह संपरिवर्तित होती है भागीदारों में कंपनी के सभी शेयरधारक सम्मिलित हैं, न कि कोई और ।

(3) ऐसे संपरिवर्तन पर, कंपनी, उसके शेयरधारक, सीमित दायित्व भागीदारी, जिसमें कंपनी संपरिवर्तित हो गई है और उस सीमित दायित्व भागीदारी के भागीदार इस अनुसूची के उन उपबंधों से आबद्ध होंगे, जो उन्हें लागू होते हैं ।

3. फाइल किए जाने वाला विवरण – कंपनी किसी सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तन के लिए रजिस्ट्रार को निम्नलिखित फाइल करते

हुए आवेदन कर सकेगी —

(क) उसके सभी शेयरधारकों द्वारा ऐसे प्ररूप और ऐसी रीति में तथा ऐसी फीस के साथ जो केंद्रीय सरकार विनिर्दिष्ट करे, निम्नलिखित विशिष्टियां अंतर्विष्ट करते हुए, विवरण, अर्थात् :—

(i) कंपनी का नाम और रजिस्ट्रीकरण संख्या ;

(ii) वह तारीख जिसको कंपनी निगमित की गई थी ; और

(ख) धारा 11 में निर्दिष्ट निगमन दस्तावेज और विवरण ।

4. संपरिवर्तन का रजिस्ट्रीकरण — पैरा 3 में निर्दिष्ट दस्तावेजों के प्राप्त होने पर रजिस्ट्रार इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अधीन रहते हुए दस्तावेजों को रजिस्टर करेगा और ऐसे प्ररूप में जो रजिस्ट्रार अवधारित करे, यह कथन करते हुए रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र जारी करेगा कि सीमित दायित्व भागीदारी प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट तारीख से ही इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत है :

परंतु सीमित दायित्व भागीदारी, रजिस्ट्रीकरण की तारीख से पंद्रह दिन के भीतर संबंधित कंपनी रजिस्ट्रार को, जिसके पास वह कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) के उपबंधों के अधीन रजिस्ट्रीकृत थी, संपरिवर्तन के बारे में और सीमित दायित्व भागीदारी की विशिष्टियों की ऐसे प्ररूप और रीति में सूचना देगी, जो केंद्रीय सरकार विहित करे ।

5. रजिस्ट्रार रजिस्टर करने से इनकार कर सकेगा — (1) इस अनुसूची की किसी बात की यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा यदि इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन प्रस्तुत की गई विशिष्टियों या अन्य जानकारी से उसका समाधान नहीं होता है तो वह रजिस्ट्रार से, सीमित दायित्व भागीदारी को रजिस्टर करने की अपेक्षा करती है :

परंतु रजिस्टार द्वारा रजिस्ट्रीकरण से इनकार की दशा में अधिकरण के समक्ष अपील की जा सकेगी ।

(2) रजिस्ट्रार किसी विशिष्ट मामले में, पैरा 3 में निर्दिष्ट दस्तावेजों को ऐसी रीति में सत्यापित कराए जाने की अपेक्षा कर सकेगा, जो वह ठीक समझे ।

6. रजिस्ट्रीकरण का प्रभाव — पैरा 4 के अधीन जारी रजिस्ट्रीकरण

प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट रजिस्ट्रीकरण की तारीख से ही,–

(क) रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट नाम से इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत एक सीमित दायित्व भागीदारी होगी ;

(ख) कंपनी में निहित सभी मूर्त संपत्ति (जंगम और स्थावर) और अमूर्त संपत्ति, कंपनी से संबंधित सभी आस्तियां, हित, अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व, बाध्यताएं और कंपनी का संपूर्ण उपक्रम किसी और आश्वासन, कृत्य या विलेख के बिना सीमित दायित्व भागीदारी को अंतरित हो जाएंगे और उसमें निहित हो जाएंगे ; और

(ग) कंपनी विघटित समझी जाएगी और उसे कंपनी रजिस्ट्रार के अभिलेखों से हटा दिया जाएगा ।

7. संपत्ति के संबंध में रजिस्ट्रीकरण – यदि कोई संपत्ति जिसको पैरा 6 का उपपैरा (ख) लागू होता है, किसी प्राधिकारी के पास रजिस्ट्रीकृत है, तो सीमित दायित्व भागीदारी, यथासाध्य शीघ्र, रजिस्ट्रीकरण की तारीख के पश्चात् संपरिवर्तन के प्राधिकार और सीमित दायित्व भागीदारी की विशिष्टियों को ऐसे प्ररूप और रीति में, जो प्राधिकारी अवधारित करे, अधिसूचित करने के लिए सभी आवश्यक उपाय करेगी जो सुसंगत प्राधिकारी अपेक्षा करे ।

8. लंबित कार्यवाहियां – कंपनी द्वारा या कंपनी के विरुद्ध सभी कार्यवाहियां जो किसी न्यायालय या अधिकरण में या किसी अन्य प्राधिकारी के समक्ष रजिस्ट्रीकरण की तारीख को लंबित हैं, सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा या उसके विरुद्ध जारी रखी जा सकेंगी, पूरी की जा सकेंगी और प्रवृत्त की जा सकेंगी ।

9. दोषसिद्धि, विनिर्णय, आदेश या निर्णय का जारी रहना – किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकारी की कंपनी के पक्ष में या उसके विरुद्ध कोई दोषसिद्धि, विनिर्णय, आदेश या निर्णय सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा या उसके विरुद्ध प्रवृत्त किया जा सकेगा ।

10. विद्यमान करार – ऐसा प्रत्येक करार जिसका कंपनी रजिस्ट्रीकरण की तारीख से ठीक पूर्व कंपनी एक पक्षकार थी, चाहे वह ऐसी प्रकृति का था या नहीं कि उसके अधीन अधिकार या दायित्व समनुदेशित किए जा सकें, उस दिन से वैसे ही प्रभावी रहेगा, मानो :–

(क) कंपनी के स्थान पर सीमित दायित्व भागीदारी उस करार

की पक्षकार हो ; और

(ख) रजिस्ट्रीकरण की तारीख को या उसके पश्चात् की गई किसी बात की बाबत कंपनी के प्रतिनिर्देश के स्थान पर सीमित दायित्व भागीदारी के प्रतिनिर्देश रखा गया हो ।

11. विद्यमान संविदाएं, आदि – रजिस्ट्रीकरण की तारीख से ठीक पूर्व विद्यमान ऐसे सभी विलेख, संविदाएं, स्कीमें, बंधपत्र, करार, आवेदन, लिखित और ठहराव जो कंपनी से संबंधित हैं या जिनमें कंपनी एक पक्षकार है उस तारीख को और उसके पश्चात् वैसे ही प्रभावी बने रहेंगे मानो वे सीमित दायित्व भागीदारी से संबंधित हों और सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा या उसके विरुद्ध प्रवर्तनीय होंगे मानो सीमित दायित्व भागीदारी उसमें नामित की गई हो या वह कंपनी के स्थान पर उसकी पक्षकार हो ।

12. नियोजन का जारी रहना – नियोजन की प्रत्येक संविदा जिसे पैरा 10 या पैरा 11 लागू होते हैं, रजिस्ट्रीकरण की तारीख को या उसके पश्चात् वैसे ही प्रभावी बनी रहेगी मानो सीमित दायित्व भागीदारी कंपनी के स्थान पर उसके अधीन नियोजक थी ।

13. विद्यमान नियुक्ति, प्राधिकार या शक्ति – (1) किसी भूमिका या हैसियत में कंपनी की प्रत्येक नियुक्ति जो रजिस्ट्रीकरण की तारीख से ठीक पूर्व प्रवृत्त हैं उस तारीख से वैसे ही प्रभावी और प्रवर्तित होगी मानो सीमित दायित्व भागीदारी नियुक्त की गई हो ।

(2) कंपनी को प्रदत्त कोई प्राधिकार या शक्ति जो रजिस्ट्रीकरण की तारीख से ठीक पूर्व प्रवर्तन में है, उस तारीख से वैसे ही प्रभावी और प्रवर्तित होगी मानो वह सीमित दायित्व भागीदारी को प्रदत्त की गई हो ।

14. पैरा 6 से पैरा 13 का लागू होना – पैरा 6 से पैरा 13 (जिसमें दोनों सम्मिलित हैं) के उपबंध ऐसे किसी अन्य अधिनियम के अधीन, जो सीमित दायित्व भागीदारी के रजिस्ट्रीकरण की तारीख से ठीक पूर्व प्रवर्तन में है, कंपनी को जारी किए गए किसी अनुमोदन, अनुज्ञापत्र या अनुज्ञप्ति को, ऐसे अन्य अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए लागू होंगे, जिसके अधीन ऐसा अनुमोदन, अनुज्ञापत्र या अनुज्ञप्ति जारी की गई है ।

15. पत्राचार में संपरिवर्तन की सूचना – (1) सीमित दायित्व भागीदारी यह सुनिश्चित करेगी कि रजिस्ट्रीकरण की तारीख के पश्चात्

चौदह दिन के अपश्चात् प्रारंभ होने वाली बारह मास की अवधि के लिए सीमित दायित्व भागीदारी के प्रत्येक शासकीय पत्राचार में निम्नलिखित समाविष्ट होंगे, अर्थात् :–

(क) यह विवरण कि कंपनी रजिस्ट्रीकरण की तारीख से सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तित हो गई थी ;

(ख) कंपनी का नाम और रजिस्ट्रीकरण जिससे वह संपरिवर्तित हुई थी ।

(2) कोई सीमित दायित्व भागीदारी जो उपपैरा (1) के उपबंधों का उल्लंघन करती है, जुर्माने से, जो दस हजार रुपए से कम का नहीं होगा किंतु जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा और अतिरिक्त जुर्माने से, जो पहले दिन के पश्चात् प्रत्येक दिन के लिए जिसको व्यतिक्रम जारी रहता है, पचास रुपए से कम का नहीं होगा किंतु जो पांच सौ रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

चौथी अनुसूची

(धारा 57 देखिए)

असूचीबद्ध पब्लिक कंपनी से सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तन

1. निर्वचन – इस अनुसूची में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,–

(क) "कंपनी" से असूचीबद्ध पब्लिक कंपनी अभिप्रेत है ;

(ख) सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तित होने वाली कंपनी के संबंध में "संपरिवर्तन" से कंपनी की संपत्ति, आस्तियों, हितों, अधिकारों, विशेषाधिकारों, बाध्यताओं और उपक्रम का इस अनुसूची के उपबंधों के अनुसार सीमित दायित्व भागीदारी में अंतरण अभिप्रेत है ;

(ग) "सूचीबद्ध कंपनी" से भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड अधिनियम, 1992 (1992 का 15) की धारा 11 के अधीन भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड द्वारा जारी भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (प्रकटन और विनिधानकर्ता संरक्षण) मार्गनिर्देश, 2000 में यथा परिभाषित सूचीबद्ध कंपनी अभिप्रेत है ;

(घ) "असूचीबद्ध पब्लिक कंपनी" से ऐसी कंपनी अभिप्रेत है जो

सूचीबद्ध कंपनी नहीं है ।

2. कंपनी का सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तन – (1) कोई कंपनी इस अनुसूची में उपवर्णित संपरिवर्तन की अपेक्षाओं का अनुपालन करके सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तित हो सकेगी ।

(2) ऐसे संपरिवर्तन पर कंपनी, उसके शेयरधारक, सीमित दायित्व भागीदारी, जिसमें कंपनी संपरिवर्तित हो गई है और उस सीमित दायित्व भागीदारी के भागीदार इस अनुसूची के उन उपबंधों से आबद्ध होंगे, जो उन्हें लागू होते हैं ।

3. संपरिवर्तन के लिए पात्रता – कोई कंपनी इस अनुसूची के उपबंधों के अनुसार किसी सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तन के लिए आवेदन कर सकेगी यदि –

(क) आवेदन के समय आस्तियों में कोई प्रतिभूति हित विद्यमान या प्रवृत्त नहीं है ; और

(ख) उस सीमित दायित्व भागीदारी के, जिसमें यह संपरिवर्तित होती है, भागीदारों में कंपनी के सभी शेयरधारक सम्मिलित हैं, न कि कोई और ।

4. विवरण का फाइल किया जाना – कोई कंपनी किसी सीमित दायित्व भागीदारी में संपरिवर्तन के लिए रजिस्ट्रार को निम्नलिखित फाइल करते हुए आवेदन कर सकेगी –

(क) उसके सभी शेयरधारकों द्वारा ऐसे प्ररूप और रीति में तथा ऐसी फीस के साथ जो केंद्रीय सरकार विनिर्दिष्ट करे, निम्नलिखित विशिष्टियां अंतर्विष्ट करते हुए, विवरण, अर्थात् :–

(i) कंपनी का नाम और रजिस्ट्रीकरण संख्या ; और

(ii) वह तारीख जिसको कंपनी निगमित की गई थी ; और

(ख) धारा 11 में निर्दिष्ट निगमन दस्तावेज और विवरण ।

5. संपरिवर्तन का रजिस्ट्रीकरण – पैरा 4 में निर्दिष्ट दस्तावेजों के प्राप्त होने पर, रजिस्ट्रार इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अधीन रहते हुए, दस्तावेजों को रजिस्टर करेगा और ऐसे प्ररूप में जो रजिस्ट्रार अवधारित करे रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र यह कथन

करते हुए जारी करेगा कि सीमित दायित्व भागीदारी प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट तारीख से ही इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत है :

परंतु सीमित दायित्व भागीदारी, रजिस्ट्रीकरण की तारीख से पंद्रह दिन के भीतर संबंधित कंपनी रजिस्ट्रार को, जिसके पास वह कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) के उपबंधों के अधीन रजिस्ट्रीकृत थी, संपरिवर्तन के बारे में और सीमित दायित्व भागीदारी की विशिष्टियों की ऐसे प्ररूप और रीति में सूचना देगी, जो केंद्रीय सरकार विहित करे ।

6. रजिस्ट्रार रजिस्टर करने से इनकार कर सकेगा – (1) इस अनुसूची की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि यदि इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन प्रस्तुत की गई विशिष्टियों या अन्य जानकारी से उसका समाधान नहीं होता है तो वह रजिस्ट्रार से सीमित दायित्व भागीदारी को रजिस्टर करने की अपेक्षा करती है :

परंतु रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकरण से इनकार की दशा में अधिकरण के समक्ष अपील की जा सकेगी ।

(2) रजिस्ट्रार किसी विशिष्ट मामले में पैरा 4 में निर्दिष्ट दस्तावेजों को ऐसी रीति में सत्यापित कराए जाने की अपेक्षा कर सकेगा, जो वह ठीक समझे ।

7. रजिस्ट्रीकरण का प्रभाव – पैरा 5 के अधीन जारी रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट रजिस्ट्रीकरण की तारीख से ही,–

(क) रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट नाम से इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत एक सीमित दायित्व भागीदारी होगी ;

(ख) कंपनी में निहित सभी मूर्त संपत्ति (जंगम और स्थावर) और अमूर्त संपत्ति, कंपनी से संबंधित सभी आस्तियां, हित, अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व, बाध्यताएं और कंपनी का संपूर्ण उपक्रम किसी और आश्वासन, कृत्य या विलेख के बिना सीमित दायित्व भागीदारी में अंतरित हो जाएंगे और उनमें निहित हो जाएंगे ; और

(ग) कंपनी विघटित समझी जाएगी और उसे कंपनी रजिस्ट्रार के अभिलेखों से हटा दिया जाएगा ।

8. संपत्ति के संबंध में रजिस्ट्रीकरण – यदि कोई संपत्ति जिसको पैरा 7 का खंड (ख) लागू होता है, किसी प्राधिकारी के पास रजिस्ट्रीकृत है, तो

सीमित दायित्व भागीदारी यथाशीघ्र रजिस्ट्रीकरण की तारीख के पश्चात् यथा अपेक्षित संपरिवर्तन के प्राधिकार और सीमित दायित्व भागीदारी की विशिष्टियों को, ऐसे प्ररूप और रीति में जो प्राधिकारी अवधारित करे, अधिसूचित करने के लिए सभी आवश्यक उपाय करेगी जो सुसंगत प्राधिकारी अपेक्षा करे ।

9. लंबित कार्यवाहियां – कंपनी द्वारा या कंपनी के विरुद्ध सभी कार्यवाहियां जो किसी न्यायालय या अधिकरण में या किसी प्राधिकारी के समक्ष रजिस्ट्रीकरण की तारीख को लंबित हैं, सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा या उसके विरुद्ध जारी रखी जा सकेंगी, पूरी की जा सकेंगी और प्रवृत्त की जा सकेंगी ।

10. दोषसिद्धि, विनिर्णय, आदेश या निर्णय का जारी रहना – किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकारी का कंपनी के पक्ष में या उसके विरुद्ध कोई दोषसिद्धि, विनिर्णय, आदेश या निर्णय सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा या उसके विरुद्ध प्रवृत्त किया जा सकेगा ।

11. विद्यमान करार – ऐसा प्रत्येक करार, जिसकी कंपनी रजिस्ट्रीकरण की तारीख से ठीक पूर्व एक पक्षकार थी, चाहे ऐसी प्रकृति का था या नहीं कि तद्धीन अधिकार या दायित्व समनुदेशित किए जा सकें, उस दिन से वैसे ही प्रभावी रहेगा, मानो –

(क) कंपनी के स्थान पर सीमित दायित्व भागीदारी ऐसे करार की पक्षकार थी ; और

(ख) रजिस्ट्रीकरण की तारीख को या उसके पश्चात् की गई किसी बात की बाबत कंपनी के प्रतिनिर्देश के स्थान पर सीमित दायित्व भागीदारी के प्रतिनिर्देश रखा गया हो ।

12. विद्यमान संविदाएं आदि – रजिस्ट्रीकरण की तारीख से ठीक पूर्व विद्यमान ऐसे सभी विलेख, संविदाएं, स्कीम, बंधपत्र, करार, आवेदन, लिखत और ठहराव जो कंपनी से संबंधित हैं या जिनमें कंपनी एक पक्षकार है उस तारीख को और उसके पश्चात् वैसे ही जारी रहेंगे मानो वे सीमित दायित्व भागीदारी से संबंधित हों, और सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा या उसके विरुद्ध प्रवर्तनीय होंगे मानो सीमित दायित्व भागीदारी उसमें नामित की गई हो या वह कंपनी के स्थान पर उसकी पक्षकार हो ।

13. नियोजन का जारी रहना – नियोजन की प्रत्येक संविदा जिसे पैरा 11 या पैरा 12 लागू होते हैं, रजिस्ट्रीकरण की तारीख को या उसके

पश्चात् वैसे ही प्रभावी बनी रहेगी मानो सीमित दायित्व भागीदारी कंपनी के स्थान पर उसके अधीन नियोजक थी ।

14. विद्यमान नियुक्ति प्राधिकार या शक्ति – (1) किसी भूमिका या हैसियत में कंपनी की प्रत्येक नियुक्ति जो रजिस्ट्रीकरण की तारीख से पूर्व प्रवृत्त है, उस तारीख से वैसे ही प्रभावी और प्रवर्तित होगी मानो सीमित दायित्व भागीदारी नियुक्त की गई हो ।

(2) कंपनी को प्रदत्त कोई प्राधिकार या शक्ति जो रजिस्ट्रीकरण की तारीख से ठीक पूर्व प्रवर्तन में है उस तारीख से वैसे ही प्रभावी और प्रवर्तित होगी मानो वह सीमित दायित्व भागीदारी को प्रदत्त की गई हो ।

15. पैरा 7 से पैरा 14 का लागू होना – पैरा 7 से पैरा 14 (जिसमें दोनों सम्मिलित हैं) के उपबंध ऐसे किसी अन्य अधिनियम के अधीन, जो सीमित दायित्व भागीदारी के रजिस्ट्रीकरण की तारीख से ठीक पूर्व प्रवर्तन में है, कंपनी को जारी किए गए किसी अनुमोदन, अनुज्ञापत्र या अनुज्ञप्ति को, ऐसे अन्य अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए लागू होंगे, जिसके अधीन ऐसा अनुमोदन, अनुज्ञापत्र या अनुज्ञप्ति जारी की गई है ।

16. पत्राचार में संपरिवर्तन की सूचना – (1) सीमित दायित्व भागीदारी यह सुनिश्चित करेगी कि रजिस्ट्रीकरण की तारीख के पश्चात् चौदह दिन के अपश्चात् प्रारंभ होने वाली बारह मास की अवधि के लिए सीमित दायित्व भागीदारी के प्रत्येक शासकीय पत्राचार में निम्नलिखित समाविष्ट होंगे, अर्थात् :–

(क) यह विवरण कि कंपनी रजिस्ट्रीकरण की तारीख से सीमित दायित्व भागीदारी में परिवर्तित हो गई थी ;

(ख) कंपनी का नाम और रजिस्ट्रीकरण जिससे यह संपरिवर्तित हुई थी ।

(2) कोई सीमित दायित्व भागीदारी जो उपपैरा (1) के उपबंधों का उल्लंघन करती है, जुर्माने से जो दस हजार रुपए से कम का नहीं होगा किंतु जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, और अतिरिक्त जुर्माने से जो पहले दिन के पश्चात् प्रत्येक दिन के लिए जिसको व्यतिक्रम जारी रहता है पचास रुपए से कम होगा किंतु जो पांच सौ रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में)	7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)
1.	भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989	30	—	—	8
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. वी. परांजपे - 1990	40	—	—	10
3.	वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993	108	—	—	27
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993	40	—	—	10
5.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996	115	—	—	29
6.	श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996	452	—	—	113
7.	संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998	275	—	—	69
8.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख - 1999	293	—	—	74
9.	आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000	429	—	—	108
10.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000	225	—	—	57
11.	हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ - 2001	425	—	—	106
12.	भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद - 2001	165	—	—	41
13.	प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001	200	—	—	50
14.	भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002	741	—	—	185
15.	विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002	311	—	—	78
16.	विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005	580	—	290	—
17.	मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006	120	—	60	—

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105